SWASTHYA

1957 G. K. U.

स्वास्थ्यदर्शक सचित्र मननीय मासिक पत्र

[...ङ्क १] राष्ट्रीय मिति १० भाद्रपद शक संवत १८७९ [सितम्बर १९५

लोक सभा में प्रथम बार

देशी दवाइयों का समर्थन

सरकार का भारतीय चिकित्सा प्रणाली से कोई विरोध नहीं, वह देशी दवाइयों का भी प्रयोग करने को तत्पर है। वास्तविक बात यह है कि पीड़ितों को आराम होना चाहिए। फिर चाहे वह कोई भी दवाई क्यों न हो।

लोक सभा भवन,
नई दिल्ली

श्री डी० पी० करमरकर
(भारत के स्वास्थ्य मन्त्री)

मूल्य वार्षिक ३) रु० विदेश में ६ शिलिंग. एक प्रति ६ आना अथवा ३७ पैसा।

...: कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन • कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

❀ परामर्श—मंडल ❀

(सम्पादक और प्रबंध सम्पादक के अतिरिक्त)

विषय-सूची

रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

— प्रथम भाग —

संशोधित और परिवर्द्धित अष्टम संस्करण

आयुर्वेद जगत के सुविख्यात आयुर्वेद साहित्य सेवी पूज्य स्वामी जी श्री कृष्णानन्दजी महाराज ने अथक परिश्रम के द्वारा इस ग्रन्थ का निर्माण कर आयुर्वेद साहित्यके एक बड़े अभावकी पूर्ति की है। इसका भारतवर्षमें सर्वत्र ही आदर हुआ है एवं हिन्दू विश्वविद्यालय, इण्डियन मेडिसन बोर्ड, अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, झांसी, आयुर्वेद विश्वविद्यालय आदि मान्य संस्थाओं ने इसे अपनाकर इसकी विशेषता को बढ़ाया है।

इस ग्रन्थ में भस्म, कूपीपक्व, रसायन, गुटिका, आसव-अरिष्ट, अवलेह, मलहम, अंजन, घृत, तैल आदि सब प्रकार के सहस्रशः अनुभूत प्रयोग हैं। इस ग्रन्थ को सर्वोपयोगी और सुन्दर बनाने में पूर्ण लक्ष्य रक्खा है अनेक प्रतिष्ठित आयुर्वेद के विद्वानों ने इस ग्रन्थ की उत्तमता और उपादेयता विषयक अति संतोषप्रद सम्मतियां प्रदर्शित की हैं।

इस ग्रन्थमें उन प्रयोग रत्नों को स्थान दिया गया है जिन्होंने अपने अलौकिक व चमत्कारिक गुणों के कारण आतुरों व उनके परिचारकों के दांतों के नीचे अंगुलियाँ दबवादी हैं। उन उन प्रयोगों ने असाध्य और भूमिस्थ मरण प्रायः रोगियों को स्वस्थ और सबल बना दिया है।

पृष्ठ संख्या ९६० हो जाने पर भी मूल्य अजिल्द का ९) रु० तथा पूरे कपड़े की जिल्द का ११) रु० पैकिंग पोस्टेज पृथक् करीब २) रु०।

रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

— द्वितीय भाग —

संशोधित परिवर्द्धित गुजराती अनुवाद

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह हिन्दी तृतीय संस्करण, जो अभी प्रकाशित हुआ है उसके समान यह गुजराती संस्करण बनाया है।

इस द्वितीय भाग में रसतन्त्रसार प्रथमभाग के समान ही सिद्ध औषधियों के सरल प्रयोग देकर सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया है जिससे सर्व साधारण जनता भी इस पुस्तक के द्वारा लाभ ले सकती है। इस में वर्णित प्रयोगों में से कितनेक प्रयोग हमारी रसायन शाला में तैयार कर यहाँ केआतुरालय और चिकित्सालय में सहस्रशः रोगियों पर अनुभव कर के ही इस ग्रन्थ में उन्हें स्थान दिया है अतः इस खण्ड में भी प्रथम खण्ड के समान पठन, पाठन व अनुभव प्राप्त करने की अत्यधिक सामग्री हो गई है। अतः इस खण्ड का भी एक एक पत्र उपादेय है।

प्रथम भाग में शास्त्रीय प्रयोग अधिक है। द्वितीय भाग में शास्त्रीय प्रयोगों की अपेक्षा वृद्ध परम्परा प्राप्त और नूतन चिकित्सकों के अनुभूत नव्य प्रयोगों को विशेषतर परिमाण में स्थान दिया गया है। ग्रन्थारम्भ में प्रयोग सूची तथा ग्रन्थ के अन्त भाग में प्रथम खण्ड के समान ही रोगानुसार सूची दी गई है जिसमें दोष भेद, लक्षण भेद और उपद्रव भेद से चिकित्सा पृथक् दर्शायी है।

पृष्ठ संख्या ७२०। १८×"२३" अठपेजी उत्तम चिकने कागज और सुन्दर छपाई सजिल्द का मूल्य ८) रुपया है। पोस्टेज २) रु. पृथक्।

चिकित्सातत्त्वप्रदीप

— प्रथम भाग —

(संशोधित परिवर्द्धित तृतीय संस्करण)

इस ग्रन्थमें ८ प्रकरण हैं। १ आयुर्वेदीय विधि विधान, २ आयुर्वेदके मूलद्रव्य त्रिदोष, ३ द्रव्या-द्रव्य चिकित्सा, ४ रोग संप्राप्ति और यान्त्रिक विकृति, ५ शरीर शुद्धि, ६ चिकित्सा सहायक, ७ ज्वर प्रकरण, ८ पचनेन्द्रिय संस्थान व्याधि प्रकरण।

प्रथम प्रकरणमें रोग विनिर्णयार्थ निदान पञ्चक एवं रोग विज्ञानार्थ महत्त्वके विचार, दूसरे प्रकरणमें आयुर्वेद के आधार भूत त्रिदोष सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन, तीसरे प्रकरण में लंघन-बृंहण चिकित्सा, चौथे में विभिन्न संस्थानों का सम्यक्तया विवेचन, पांचवें में आयुर्वेदोक्त वमन, विरेचन, नस्य, बस्ति आदि शोधन विधियाँ तथा एलौपैथिक बस्ति विधियाँ आदि हैं तथा छटे प्रकरण में सिरावेधन, रक्त मोक्ष विधि, जलौका विधि, अग्नि कर्म विधि, क्षारपाक आदि बाहरी चिकित्सा और प्राकृतिक चिकित्सा, आदि चिकित्सा सहायक सभी बातों का संग्रह किया है।

सप्तम प्रकरण में सभी प्रकार के ज्वर रोगों के आयुर्वेदिक और एलोपैथिक निदान तथा चिकित्साका वैज्ञानिक शैलीसे विवेचन और अन्तिम प्रकरण में पचनेन्द्रिय संस्थान के रोग अतिसार, प्रवाहिका आदि का वर्णन किया है। स्थान स्थानपर शारीरिक अवयवोंके एवं रोग निर्णायक अनेक चित्र भी दिये हैं।

पृष्ठ संख्या ८१० साइज १८×२३ अठ पेजी उत्तम चिकने कागज और सुन्दर छपाई होनेपर भी अजिल्द का मूल्य मात्र ९) तथा सजिल्द का मूल्य ११) पैकिंग पोस्टेज पृथक् लगभग २) रु०।

चिकित्सातत्त्वप्रदीप

(द्वितीय खण्ड)

(संशोधित परिवर्द्धित, द्वितीय संस्करण)

इस ग्रन्थ में चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड के समान आयुर्वेदिक और एलोपैथिक रोग निदान, रोग सम्प्राप्ति, लक्षण, अवस्था, उपद्रव, चिकित्सोपयोगी सूचना, आयुर्वेदिक चिकित्सा, आवश्यकता अनुसार एलोपैथिक प्रयोग और पथ्यापथ्य का वर्णन किया गया है। अभी तक आयुर्वेदिक ग्रन्थों में चिकित्सोपयोगी सूचना लिखने का प्रायः रिवाज नहीं था। किन्तु इस ग्रन्थ में सामान्य बोध वाले चिकित्सक विद्यार्थियों की सुविधा के लिये प्रत्येक रोग के साथ चिकित्सोपयोगी सूचना दी गई है। ग्रन्थारम्भ में रोगों की विस्तृत सूची दी है। दुर्बोध विषयों को सरल भाषा में समझाने का हो सके उतना अधिक प्रयत्न किया गया है। इनके अतिरिक्त अवयव और रोग निदान में उपयोगी चित्र भी साथ में दिये हैं। १२ चित्र आर्ट पेपर पर एक रंग के और दो रंगों के हैं और २४ चित्र लेख के साथ दिये हैं। संक्षेप में ग्रन्थ को अधिक उपयोगी बनाने के लिये पूरा प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ की उत्तमता और उपादेयता के सम्बन्ध में विद्वान् चिकित्सक और एलोपैथिक डाक्टरों में भी अति संतोषप्रद अभिप्राय मिला है।

मूल्य-डिमाई अठपेजी ग्लेज कागज पृष्ठ संख्या ८०८ सजिल्द का मूल्य ९॥) और अजिल्द ८)। पैकिंग पोस्टेज १॥।–) अलग।

गावों में औषध रत्न

यह ग्रन्थ ३ खण्डों में विभक्त किया गया है। तीनों भागों की लेखन शैली और औषध विवेचन समान है। एवं वनस्पति की पहिचान, उत्पत्ति स्थान, रस, गुण, वीर्य, विपाक, अनेक भाषाओं के नाम, गुण धर्म, आवश्यक अनुभूत प्रयोग और साथ साथ आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं। यह पुस्तक आयुर्वेद के अध्यापक वर्ग व चिकित्सक एवं छात्रों के लिए तथा गाँवों में रहने वाले सामान्य चिकित्सक परोपकारी सज्जन और जनता के स्वास्थ्य की चाहना वाले समाज सेवक आदि सब के लिए उपयोगी है।

प्रथम खण्ड में अफीम, आक, कपूर, कालीमिर्च, केसर, कुचिला, गिलोय, थूहर, धतूरा, नागरबेल, पीपल आदि गाँवों में सरलता से मिलने वाली सुपरिचित ८८ औषधियोंका विवेचन किया गया है।

द्वितीय खण्ड में पारिभाषिक शब्द के स्पष्टीकरणार्थ वनस्पति शास्त्र का परिचय प्रारम्भ के ५६ पृष्ठों में दर्शाया है। इसके अनन्तर गाँवों में प्राप्त होने वाली १२८ औषधियों का सचित्र अकारादि क्रम से वर्णन तथा तृतीय खण्ड में गाँवों में प्राप्त होने वाली १४० औषधियों का सुविस्तृत विशद वर्णन किया है।

प्रथम भाग १८ × २३ अठपेजी-पृष्ठ संख्या ३१२ मूल्य अजिल्द २)।

द्वितीय भाग १८ × २३ अठपेजी पृष्ठ संख्या ४२५ मूल्य अजिल्द ३॥) सजिल्द ५)।

तृतीय भाग १८ × २३ अठपेजी पृष्ठ संख्या ५०० मूल्य अजिल्द ४॥) सजिल्द ६)।

सूचना—तीनों भाग साथ में लेने पर अजिल्द का मूल्य ९) पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

औषध-गुण-धर्म विवेचन

संशोधित परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण

आयुर्वेद के हिंदी पाठकों के लिये यह एक अपूर्व और अत्युपयोगी पुस्तक है। इस पुस्तक में आयुर्वेद प्रयोजन, पित्तदोषघ्न विवेचन, कफदोषघ्न विवेचन, पुरीषवर्धकारक विवेचन, संशोधन, शिरोविरेचन, छर्दिनिग्रहण, स्वेदन, अपक्षयरोधक, कीटाणुनाशक, विषघ्नरक्तप्रसादन, व्रणपाचन, शोधन, आर्तवजनन, पाचन, दीपन, ग्राही, वीर्यस्तम्भन, शुक्रशोधन आदि १०१ गुणों का वर्णन किया है।

संक्षेप में इस पुस्तक में चिकित्सा सहायक बातों का युक्तिपूर्वक वैज्ञानिक शैली से शास्त्र मर्यादा के अनुकूल ही विचार किया है। अतः यह पुस्तक आयुर्वेद के विद्यार्थीवर्ग के लिये शिक्षाप्रद, नव्य चिकित्सकों के लिये ज्ञानवर्धक और रोगियों के आरोग्य प्राप्ति की कुञ्जी रूप है। अनेक विद्वान् चिकित्सकों ने इस पुस्तक की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में इस शैली का एक भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ।

मूल्य—साइज १८×२३ अठपेजी, पृष्ठ संख्या ३०० साधारण कागज ३) रु० विशेष कागज सजिल्द ४॥) डाकखर्च आदि १।=) अलग।

— संक्षिप्त औषध परिचय —

इस पुस्तक में रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह में वर्णित भस्म रसायन आदि औषधियोंका गुणधर्म संक्षेप में समझाया गया है। जिससे चिकित्सक को इस छोटीसी पुस्तक से बहुत सहायता मिल जाती है।

साइज २०×३० सोलह पेजी पृष्ठ संख्या १२० मूल्य ।=) आने पोस्टेज आदि ।॥) अलग।

❁ नेत्र रोग विज्ञान ❁

इस ग्रन्थ के लेखक स्व० डा० जादवजी हन्सराज D. O. M. S. (London) हैं। जिन्होंने अपना ४० वर्षका अनुभव दर्शाया है। इस ग्रन्थ के पहले प्रकरण में नेत्र और उसके उपांगों की रचना दूसरे प्रकरण में नेत्र और उसके उपांगों का कतव्य, तीसरे प्रकरण में दृक्शास्त्र के नियम, चौथे प्रकरण में नेत्र परीचा, पांचवें प्रकरण में नेत्र रोग चिकित्सा, छठवें प्रकरण में नेत्ररोग संप्राप्ति विज्ञान, सातवें प्रकरण में नेत्रनिदान, ८ से २७ प्रकरण तक रोगों की औषधि चिकित्सा आदि, अठाईसवें प्रकरण में नेत्र और उपांगों की शस्त्रचिकित्सा तथा इकतीसवें प्रकरण में नेत्र के स्वास्थ्य की रक्षा सरल भाषा में वर्णित है। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, आदि किसी भारतीय भाषा में इस प्रकार की पुस्तक आज तक प्रकाशित नहीं हुई है।

मूल्य—साइज १८×२३ अठपेजी, पृष्ठ संख्या ९५०। चित्र संख्या २४२। सजिल्द १५) रु० डाक-खर्च आदि २) रु० पृथक्।

माधवनिदान (मूलमात्र)

"निदाने माधवः श्रेष्ठः" इस उक्ति से ही इस ग्रन्थ की उपयोगिता का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। इस छोटे से ग्रन्थ में आचार्य कथित मूल ७३ रोगों का व उनके अन्तर्गत कई उपद्रव भूत से गौण रोगोंका निदान, हेतु, पूर्वरूप, लक्षण आदिका सम्यक्तया वर्णन है। यह वैद्य विद्यार्थियों को पढ़नेमें अति उपयोगी है। इस ग्रन्थ के अन्त के ६० पृष्ठोंमें रोगों के नाम आयुर्वैदिक और एलोपैथिक भी दिये हैं। जो विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है।

आयुर्वेद का अध्ययन करने में सबसे प्रथम माधवनिदान का पढ़ना अनिवार्य ही है। जो भी विद्यार्थी वैद्यक में प्रवेश करेगा, उसे श्लोक कण्ठाग्र करना पड़ता है। इसके लिये मूलमात्र प्रकाशित किया है ताकि विद्यार्थी जेबमें रखकर इस पुस्तक का उपयोग कर सके।

उत्तम कागज १८×२३=१८ पौण्ड १२ पेजी २९६ पृष्ठ होनेपर भी मूल्य १।।) रुपया मात्र रक्खा है। पोस्टेज १।।) रुपया पृथक्। पोस्टेज अधिक होने से अधिक प्रति साथ मंगवावें।

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन
कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

'स्वास्थ्य' के 'वातश्लेष्मिक ज्वर अंक' पर आयुर्वेद के महारथियों की : शुभ सम्मतियां :

राजस्थान आयुर्वैदिक विभाग के संचालक राजवैद्य श्री प्रेमशंकरजी शर्मा भिषगाचार्य की शुभ सम्मति

मुझे प्रसन्नता है कि श्रीकृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा ने 'स्वास्थ्य' वातश्लैष्मिक ज्वर विशेषांक निकाल कर जनता की काफी सेवा की है। भविष्य में ऐसे अंक प्रकाशन के पूर्व राजस्थान की व देश की सारी प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त कर ली जावेगी तो अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

—वैद्य प्रेमशंकर शर्मा

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष कविराज माधवप्रसाद शास्त्री आयुर्वेद बृहस्पति का प्रोत्साहन

'स्वास्थ्य' मासिक का वातश्लेष्मिक ज्वरांक मिला। सामग्री का चयन विद्वान् लेखकों की योग्यता का प्रदर्शक होने के साथ ही अनुभवी सम्पादक की कुशलता का भी परिचायक है। जिस समय वातश्लेष्मिक ज्वर ने संक्रामक रूप धारण कर लिया हो, उस समय आपके विशेषाङ्कका निकलना उपयोगिता तो रखता ही है, आयुर्वेद के उत्कर्ष को भी प्रकाश में लाने में अग्रणी बना है।

आशा है आप पत्रकारिता के क्षेत्र में इस प्रकार की उपयोगी सामग्री द्वारा शीघ्र ही 'स्वास्थ्य' को मूर्धन्य स्थान दिलाने में अग्रणी बनेंगे।

—कविराज माधव प्रसाद

आयुर्वेद के वृद्धपितामह वैद्यराज श्री घनानन्द पन्त आयुर्वेद बृहस्पति का सन्देश

"स्वास्थ्य" का वातश्लेष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा) अंक देखा। अङ्क समय पर बहुत उत्तम निकला है, यह सम्पादकीय स्फूर्ति का फल है। अधिक चिकित्सकों ने इस को वातश्लेष्मिक ज्वर माना है। कुछ दुष्ट प्रतिश्याय ज्वर, कण्ठ कुब्ज सन्निपात तथा कुछ विचारक इसको वातश्लेष्मिक जनपदोध्वंसक सन्निपात कहते हैं। क्योंकि इसका ज्वर अहोरात्र में किसी समय भी नहीं छोड़ता है। अस्तु! जो लोग अपनी चिकित्सा की सराहना करते हैं, उनसे निवेदन है कि उक्त रोग के रोगी जिन्होंने कोई भी चिकित्सा नहीं की, वे भी स्वयं हजारों की संख्या में अच्छे हो गये। रोग ही ऐसा है कि समय पर अच्छा हो जाता है।

हां, इसके उपद्रवों की अवश्य चिकित्सा करनी चाहिए। इस अवसर पर वैद्यक संसार के अग्रगण्य लोग एक छोटी सी परिषद् कर इस रोग का भविष्य के लिए निश्चय कर दें, तो विशेष लाभ हो। कम से कम इस अंक लेखों में से उपयुक्त अंश छांटकर एक निबन्ध बन जाय तो तब भी ठीक हो।

—घनानन्द पन्त

आयुर्वेद सेवा मंडल के प्रधान मंत्री वैद्यराज विरंचीलाल शर्मा आयुर्वेद वाचस्पति की बधाई
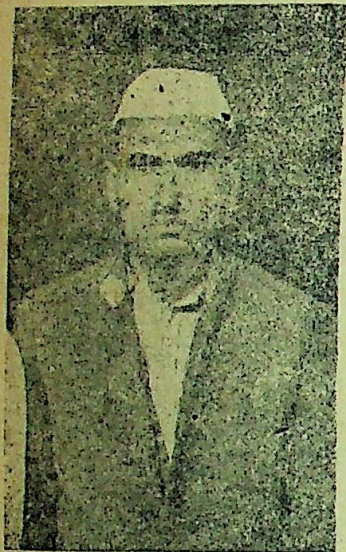
'स्वास्थ्य' का वातश्लेष्मिक ज्वराङ्क यथा समय मिला। यद्यपि यह अंक बड़ी शीघ्रता में निकला है, फिर भी सामग्री का चयन सुन्दर हुआ है। कई प्रयोग अमूल्य हैं, मेरा विश्वास है कि आगे के लघु विशेषांक भी इसी प्रकार उच्चकोटि के प्रकाशित होंगे। ऐसे उपयोगी प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई।

विरंचीलाल शर्मा

झुंझनूं जिला वैद्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री वैद्यराज मन्नालाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य की सम्मति

श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन से प्रकाशित 'स्वास्थ्य' हिन्दी मासिक पत्र का आयुर्वेद जगत में निराला स्थान है। यह पत्र नाम मात्र के मूल्य पर महत्त्व पूर्ण सेवा कर रहा है। इन्फ्लुएञ्जा अंक को देखकर मेरी धारणा की पुष्टि होती है। भगवान् धन्वन्तरि से प्रार्थना है कि "स्वास्थ्य" इसी प्रकार भारतीय राष्ट्र की स्वास्थ्य समस्या के हल में अपूर्व भाग लें।

वैद्य मन्नालाल शर्मा

राजवैद्य सीताराम मिश्र आयुर्वेदाचार्य (विद्यापीठ मंत्री नि. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन) की शुभ कामना

"स्वास्थ्य" का वातश्लेष्मिक ज्वर अंक पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आचार्य जी के सम्पादकत्त्व में "स्वास्थ्य" दिनों-दिन उन्नति शील बने, यह मेरी इच्छा है।

वैद्य सीताराम मिश्र

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री वैद्यराज श्री परमानन्द शर्मा शास्त्री का मन्तव्य

राजस्थान के प्रगति शील मासिक पत्र 'स्वास्थ्य' का वातश्लेष्मिक ज्वर पर प्रकाशित अगस्त मास वाला अंक देखा। समस्त भारतवर्ष में इस रोग पर निकलने वाला यह प्रथम अंक है। प्रथम प्रयास में मान्य सम्पादक जी की तथा स्वास्थ्य परिवार को अच्छी सफलता मिली है।

इस अंक में विद्वान् लेखकों ने पर्याप्त परिश्रम किया है। जिसमें सभाकान्त झा तथा डा. रामरक्षपाल शुक्ल ने अधिक श्रम किया है।

मैं सम्पादक जी के विचारों से पूर्णतः सहमत हूँ कि वैद्यों की परिषद् बुलाई जाय। ऐसा एक प्रयत्न प्रतापगढ़ आदि वासी स्वास्थ्य सम्मेलन में कमिश्नरी वैद्य सभा उदयपुर ने किया था। वातश्लेष्मिक ज्वर पर १९-६-५६ को एक चिकित्सा गोष्ठी की गई। जिसमें राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के सभापति महोदय कविराज माधव प्रसाद जी शास्त्री के सभापतित्व में राजस्थान के माने हुए विद्वान् नित्यानन्द जी शर्मा वैद्य वाचस्पति पं० प्रेमशंकर जी भिषगाचार्य तथा भवानी शंकर जी आयुर्वेदाचार्य, संचालक आयुर्वेद विभाग सुखराम दास जी A. M. S. जयपुर वालों ने भाग लिया। वातश्लेष्मिक ज्वर पर मिलकर अपूर्व निर्णय किये गये।

अन्त में आचार्य नित्यानन्दजी सम्पादक 'स्वास्थ्य' का व सम्बन्धित सभी सज्जनों का धन्यवाद करता हूँ उन्होंने जिस परिश्रम से इस अंक को निकाला है उस से राजस्थान के पत्रों का गौरव बढ़ा है। मैं हृदय से चाहता हूँ कि 'स्वास्थ्य' अहर्निश फूलता फलता रहे।

सचित्र आयुर्वेद के सहायक सम्पादक श्री सभाकान्तजी झा का सन्देश

"आपके द्वारा प्रेषित स्वास्थ्य सन्देश का इन्फ्लुएञ्जा अंक प्राप्त कर प्रसन्नता हुई इन्फ्लुएञ्जा के विषय में जो कुछ छोटे मोटे लेख प्रकाशित हुए हैं पठनीय एवं मननीय है, एक इस ग्रंथ के पास में रखने से नव्य प्राचीन आयुर्वेदीय चिकित्सकों को इन्फ्लुएञ्जा रोग की चिकित्सा में बहुत सहायता मिलेगी।

श्रीधन्वन्तरयेनमः

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

संपादकः—
आचार्य नित्यानन्द
भू० पू० उपाध्यक्ष, निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ
भू० पू० अध्यक्ष, राजस्थान निदान सम्भाषा परिषद्
भू० पू० सहमन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन,
अध्यक्ष, बिरला आयुर्वेद संग्रहालय पिलानी (राजस्थान)

प्रबन्ध संपादकः—
वैद्यराज पं० रमेशचन्द्र व्यास
भिषगाचार्य धन्वन्तरि अजमेर
वैद्यराज पं० रामगोपाल शास्त्री
आयुर्वेदाचार्य
कालेड़ा-कृष्ण गोपाल (अजमेर)

वर्ष ५. अङ्क १] कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर) [सितम्बर १९५७

ऋतुचर्या

(हिन्दी पद्य व्याख्या)

— वर्षा में हितकर —

वायु कि वर्षा में प्रबल, करिए उसको शान्त ।
खट्टे, खारी, तीक्ष्ण, कटु द्रव्य कि अहो प्रशान्त ॥
उष्ण द्रव्य गेहूँ प्रभृति, कूप कि झरना-वारि ।
शालि धान्य आदिक करें, 'मधुमय' नित व्यवहार ॥

– वर्षा में अहितकर –

दिवस-शयन मैथुन-अधिक, रूक्ष द्रव्य सब और ।
वर्षा में हितकर नहीं, करें विज्ञ-जन गौर ॥(क्रमशः)

—सरयूप्रसाद भट्ट 'मधुमय' विशारद

श्री धन्वन्तरि-विनय

[रचयिता—श्री मुरारीलाल गौतम]

भारत की जनता त्राहि त्राहि पुकारे, आजा धन्वन्तरि प्यारे ॥

सागर से जब तू प्रगटा था।
अमृत घट कर में देखा था ॥
अमृत को पिलाके देव अमर किये सारे ॥ १ ॥ आजा० ॥

रोगों से पीड़ित हम सब हैं।
एलोपैथिक ही चिकित्सा है ॥
इससे कुछ लाभ नहीं है होता हमारे ॥ २ ॥ आजा० ॥

संजीवनी बूंटी कहां गई।
क्या रसविद्या भी नष्ट हुई ॥
अब रोग विनिश्चय ग्रन्थ पढ़ाजा सारे ॥ ३ ॥ आजा० ॥

आपत्ति बादल मंडराये।
सरकार ध्यान कुछ नहीं लाये ॥
वैद्यों में देखो बजते ईर्ष्या नगारे ॥ ४ ॥ आजा० ॥
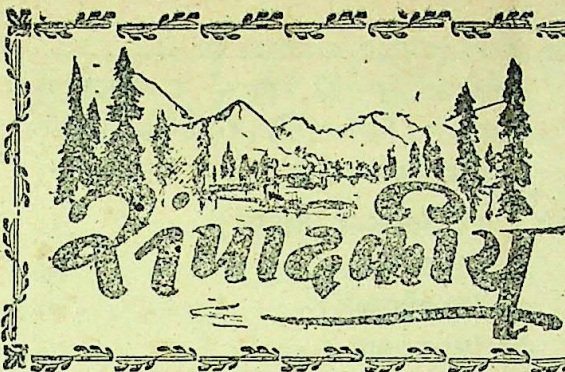
आयुर्वेद बोर्डों में परिष्कार वांछनीय

प्रान्तीय सरकारों ने कुछ प्रान्तों में देशी चिकित्सा प्रणालियों की उन्नति के दृष्टिकोण से इण्डियन मेडिसन बोर्डों का गठन किया है। जिन अधिनियमों के द्वारा इस प्रकार के बोर्ड प्रकाश में आये हैं, उनमें बहुत खामियां रह गई हैं। फल स्वरूप इतने अर्से में इन बोर्डों द्वारा देशी चिकित्सा प्रणालियों की जो उन्नति अभीष्ट थी, वह नहीं हो सकी। इसके मूल में अधिनियमों की त्रुटिपूर्णता है। प्रत्येक प्रान्त के धारा सभाइयों का कर्तव्य है कि वे वैद्यों से इन त्रुटियों की जानकारी कर अधिनियम में संशोधन करायें। जागृत वैद्यों को भी चाहिए कि वे व्यक्तिगत रूप से और प्रान्तीय संगठन द्वारा विधान सभा के सदस्यों को अधिनियम की संशोधनापेक्ष धाराओं से परिचित करा दें। बोर्डों के अधिनियम में वांछनीय परिवर्तन की रूप रेखा के लिए राजस्थान इण्डियन मेडिसन बोर्ड के सम्बन्ध में अपने विचार अभिव्यक्त कर रहे हैं।

राजस्थान इण्डियन मेडिसन बोर्ड में कुल ११ सदस्य हैं, जिनमें से विधान के अनुसार केवल ६ सदस्यों को ही चुना जा सकता है। बाकी के सदस्य सरकार द्वारा घोषित किये जाते हैं। आज के जनतान्त्रिक युग में यह घोषणा आयुर्वेद पर कुठाराघात के सदृश है। वास्तव में सभी सदस्य पंजीकृत वैद्यों द्वारा ही चुने जाने आवश्यक हैं। बोर्ड में सरकारी दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक समझा जाये तो केवल एक सदस्य को सरकार भी मनोनीत कर सके, ऐसी व्यवस्था ही इस अधिनियम में होनी चाहिये। अभी तो सभापति भी शासन द्वारा ही बोर्ड पर थोपा जाता है। सभापति के अनेक अधिकार हैं, अतः निर्वाचित सदस्यों की प्रगतिशील आयुर्वेदोन्न[ति] योजनाएं कागजों में ही दबी रह सकती हैं।

अधिनियम के अनुसार पंजीकरण की दो श्रेणि[यां] हैं। तीसरी श्रेणि में चिकित्साधिकार प्राप्त वैद्यों क[ो] समझिये। इस प्रकार वैद्योंको तीन भागों में बांट दिय[ा] गया है। इस वर्गीकरण के ठोस आधार नहीं है[।] प्रतीत ऐसा होता है कि वैद्य लोग इन श्रेणियों के भू[ल] भूलैया में पड़े रहे और संगठित होकर अपनी मां[गें] प्रस्तुत न कर सकें, एतदर्थ ही यह श्रेणि विभा[जन] किया गया है। वास्तव में पाश्चात्य चिकित्सक[ों] की तरह एक ही श्रेणि में सभी वैद्यों का पंजीकर[ण] वांछनीय है।

बोर्ड के सदस्य चुने जाने के बारे में भी ए[क] अजीब नियम हैं। इसके अनुसार तीसरे श्रेणि क[े] वैद्य सदस्य निर्वाचन में मतदान के अधिकारी न[हीं] हैं। जब सरकार इन सदस्यों को चिकित्सा करने क[ा] अर्थात् रोगी को जिलाने या मारने का अधिकार देत[ी] है, तब उन्हें मतदान से वञ्चित रखनेका क्या अभिप्रा[य] है समझ में नहीं आता। इस प्रकार का भेदभा[व] वर्तमान युग के अनुकूल नहीं है। हमारे दृष्टिकोण स[े] चिकित्साधिकार प्राप्त वैद्यों को भी बोर्ड के निर्वाच[न] में मतदाता माना जाना चाहिये।

निर्वाचन के लिए सारे राजस्थान को कई क्षेत्र[ों] में बांटा जाना चाहिए। इसके बिना राजस्थान के सभ[ी] भागों का प्रतिनिधित्व सम्भव नहीं है। सारे राजस्था[न] को एक ही क्षेत्र मानकर चुनाव कराने से सभी भाग[ों] के वैद्यों की मांग बोर्ड में उचित रूप से नहीं रख[ी] जा सकती।

इसी प्रकार की अनेक छोटी मोटी बातें हैं, जिन के संशोधन से आयुर्वेद की उन्नति उचित गति से हो सकती है। प्रान्तीय वैद्य संगठनों को चाहिए कि वे अपने यहां के इण्डियन मेडिसिन बोर्ड अधिनियम को सूक्ष्मता से देखें और त्रुटियों तथा उनके निराकरण के उपायों को प्रकाश में लावें।

सम्पादकीय टिप्पणियां

पंचम वर्ष की ओर

'स्वास्थ्य' भगवान् धन्वन्तरि की असीम अनुकम्पा से अपने महत्त्वपूर्ण चार वर्ष के बाद इस अंक से पञ्चम वर्ष में प्रवेश कर रहा है। 'स्वास्थ्य' अपने जन्म से ही आयुर्वेदोन्नति की लगन के साथ भारतीय राष्ट्र की स्वास्थ्य समस्या का हल पेश करने में तत्पर रहा है। इस प्रयत्न में हमें जो सफलता मिली है, वह आप लोगों से छिपी नहीं है। कहना न होगा कि हमने कुत्सित समाचार लम्बी चौड़ी प्रशंसावाले नुस्खे और अभद्र विज्ञापनों के द्वारा 'स्वास्थ्य' को अर्थोपार्जन का साधन कभी नहीं बनाया। सुयोग्य विद्वानों द्वारा स्वस्थ साहित्य ही अपने पाठकों को भेंट करना प्रारंभ से ही हमारा उद्देश्य रहा है। हमारे लेखकों ने 'स्वास्थ्य' के माध्यम से राष्ट्र की जो सेवा की है, उसका मूल्यांकन आयुर्वेद के भावी इतिहासकार ही कर सकेंगे। आशा है, इस वर्ष भी उनका पूरा सहयोग हमें मिलता रहेगा। 'स्वास्थ्य' के हितैषियों की संख्या भी बहुत बड़ी तादाद में है, और इसी प्रकार पुष्कल संख्या में हमारे पाठक भी हैं। आशा है, सभी 'स्वास्थ्य' के पोषण में विगत वर्षों की भांति पूरा सहयोग देंगे। यही हमारा सम्बल है।

लघु विशेषांक योजना

गत अंक 'वातश्लेष्मिक ज्वर' के लघु विशेषांक के रूप में छपा था। इसे कुछ लोगों ने बहुत पसन्द किया है। इस वर्ष से 'स्वास्थ्य' में लघुविशेषांक योजना चालू कर रहे हैं। तदनुसार इस बर्ष में विभिन्न विषयों पर ६ छोटे छोटे विशेषांक 'स्वास्थ्य' के वर्तमान मूल्य में ही प्रकाशित किये जायेंगे। इस वर्ष निम्न विषयों पर लघु विशेषांक प्रकाशित करने का विचार है—

(१) विषमज्वर (मलेरिया)
(२) श्वास।
(३) प्रतिश्याय।
(४) व्यायाम।
(५) स्नान।
(६) आहार।

यदि स्वास्थ्य-परिवार ने इस योजना को पसन्द किया तो आगामी वर्षों में भी इसी प्रणाली को प्रचलित रखेंगे।

संसद् सदस्यों से

भारतीय संसद् के सदस्यों ने गत वर्ष अनेक बार स्वास्थ्य-मंत्रालय सम्बन्धी बहस के अवसर पर देशी चिकित्सा पद्धतियों के पक्ष का पोषण किया है। इस बार भी उनकी आवाज लोक सभा में आयुर्वेद को न्यायोचित स्थान देने के लिए गूंजी है। इसके लिए आयुर्वेद संसार उनका ऋणी है। हमें आशा है, भविष्य में भी वे आयुर्वेद को उसका न्यायसंगत आसन दिलाने में सचेष्ट रहेंगे।

वैद्यों द्वारा अपूर्व सेवा

इस वर्ष देश के अनेक भागों में फैले हुए 'वातश्लेष्मिकज्वर' की चिकित्सा में वैद्यों ने जनता की जो सेवा की है, उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। गत वर्ष दिल्ली में पांडुरोग उग्र रूप में सामने आया था तब वैद्यों ने जनता की सेवा जिस तत्परता से की थी, वही दृश्य इस बार भी देखने को मिला। आयुर्वेद की साधारण और सस्ती औषधियों ने इन्फ्लुएञ्जा के अधिकांश रोगियों की सहानुभूति प्राप्त की। यदि हमारे कर्णधार देश के स्वास्थ्य को वास्तव में ही सुरक्षित रखना एवं उन्नत करना चाहते हैं तो उन्हें आयुर्वेद की सेवायें निर्विवाद रूप से स्वीकार करनी चाहिये।

राजयक्ष्मा का प्रतिरोध

(लेखक—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास)

मनुष्यों के सब से बड़ा शत्रु सम्भवतः रोग ही है, चरकजी ने भी लिखा है कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ के लिये आरोग्य ही उत्तम मूल है, रोग केवल आरोग्य का ही नाश नहीं करते किन्तु सबसे श्रेयस्कर जीवितावस्था को भी समाप्त कर देते हैं; यद्यपि सबही रोग दुःखदायी हैं फिर भी राजयक्ष्मा रोग सब से अधिक दुःखदायी है इसलिये इसको राजयक्ष्मा कहते हैं। वैदिक काल से लेकर संहिता काल तक रोग के लिये यक्ष्मा शब्दका प्रयोग होता रहा, जैसा पथ के राजा को राजपथ कहते हैं, ऐसा यक्ष्मा (रोग) के राजा को राजयक्ष्मा कहते हैं, राजयक्ष्मा के लिये रोगराट् रोगानीक समूहराट् आदि नाम भी इसी अर्थ को सूचित करते हैं। दुर्भाग्य से जिस घर में इस रोग राज का प्रवेश होता है उस घर के एक एक सदस्यको विशेषतः नव युवक नव युवती को अपने सेवक (शिकार) बनाकर घर का नाश कर देता है। उस घर में और कोई आकर रहने लगे तो उसको भी नहीं छोड़ता है, इस रोग से केवल आरोग्य और प्राण की ही समाप्ति नहीं होती किन्तु धन की भी समाप्ति होजाती है। इस रोग से प्रतिवर्ष भारत के पचास लाख मनुष्य मरते हैं। अगर कोई वैदेशिक शत्रु एक वर्ष में भारत के इतने मनुष्यों को मारना चाहे तो उस शत्रु को समाप्त करने के लिये भारत के केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार ही नहीं भारतीय जनता भी सारी शक्ति लगा देती। इसलिये सरकार की ओर से यक्ष्मा निरोध के लिये जो कुछ चेष्टायें हो रही हैं वह स्वागत योग्य है किन्तु खेद के साथ कहना पड़ेगा कि वह अपर्याप्त ही है। अपर्याप्तता के कारण को भी यहां व्यक्त करना पड़ेगा।

किसी रोग का प्रतिरोध करने के लिये उसके सब कारणों (निदानों) को दूर करना पड़ेगा, साधारण बुद्धिवाला भी समझता है कि किसी रोग के कारणों का सेवन जब तक चालू रहेगा तब तक उस रोग का प्रति रोध करना सम्भव नहीं हो सकता है। राजयक्ष्मा के कारण क्या हैं? इस प्रश्न का उत्तर जिस नव्य विज्ञान वेत्ता से सरकार जानना चाहती है वे अपने सिद्धान्त के अनुसार यक्ष्म कीट को ही कारण बताते हैं अतः सरकार भी यक्ष्म कीट को मारने के लिये और उनके प्रसार को रोकने के लिये यथा शक्ति चेष्टा कर रही है, किन्तु सत्य यह है कि जब तक राजयक्ष्मा के सब कारणों को मिटाने का प्रयत्न नहीं किया जावेगा तब तक केवल कीटाणु मारने का प्रयास कभी सफल नहीं हो सकेगा।

आयुर्वेद में राजयक्ष्मा के चार कारण माने गये हैं उनके ऊपर विचार किया जाता है।

(१) वेग रोध विशेष कर मल-मूत्र और अधो वायु के वेग को बार बार रोकने से राजयक्ष्मा हो सकता है, कारण यह है कि इन चीजों को शरीर जब अपने लिये अनुपयोगी ही नहीं किन्तु हानिकारक समझता है तब इनको बाहर फेंकने के लिये अपान वायु को प्रेरित करता है जिससे मलादि वेग उत्पन्न होते हैं उस समय यदि उस वेग को किसी कार्य वश रोका जावे तो उन हानिकारक मलादि के विघटन से नानाविध दूषित वायु उत्पन्न होकर वात संस्थान को विकृत करता है, अपान वायुके कार्य को इच्छा शक्ति द्वारा रोकने से अपान वायु भी विकृत होता है इस प्रकार शरीर के समस्त वातसंस्थान विशेष करके परिपाक सम्बन्धी अङ्गोपाङ्गों को सञ्चालित करने वाली वातनाड़ियां विकृत होती हैं परिपाक क्रिया में विकृति आने पर धातुओं का पोषण ठीक ठीक नहीं होता और कुछ हानिकारक वस्तु उत्पन्न होकर क्रमशः राजयक्ष्मा उत्पन्न करती है (रोग के निदान पर ही विचार करना है अतः रोगोत्पत्तिका क्रम लिखना अप्रासङ्गिक है) नागरिक जीवन में मनुष्य

वेगरोध के लिये बाध्य हो जाते हैं कारण एक मकान में जितने मनुष्य रहते हैं उनके लिये पर्याप्त शौचालय न होने से प्रातः काल शौचार्थिओंको लाइन लगाना पड़ता है मातृ जाति लाईन लगाने में शरमाती हैं अतः उनके लिये और भी परेशानी है। सरकारी शौचालय में जिनको जाना पड़ता है उनकी परेशानी और भी अधिक है फिर इन शौचालयों को नरक कहना भी अतिशयोक्ति नहीं है किसी को विश्वास न हो तो राजधानी के न्यायालयों के समीपस्थ शौचालय को देखकर भ्रम मिटा सकता है। रेल की तृतीय श्रेणी के एक कमरे में जितनी सवारी बैठती है उनके लिये एक शौचालय सर्वथा अपर्याप्त है मोटर में चलने वालों के लिये तो कुछ भी प्रबन्ध नहीं है, बाजार में बैठने वाले और चलने वाले के लिये भी पर्याप्त शौचालय नहीं है, इन कारणों से नागरिकों को बाध्य होकर प्रायः वेग को रोकना पड़ता है विशेषतः मातृजाति को अतएव नागरिक उनमें भी स्त्री जाति इस रोग से अधिक पीड़ित होती हैं अतएव राजयक्ष्मा के प्रतिरोध के लिये ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी जिससे किसी को वेगरोध के लिये बाध्य होना न पड़े साथ ही ऐसा प्रचार भी करना है जिससे मनुष्य वेगराध को छोड़ने के अभ्यासी हो जावे।

(२) क्षय से राजयक्ष्मा होता है। राजयक्ष्मा को भी क्षय कहते हैं किन्तु यहां क्षय शब्द का अभिप्राय जिस धातु क्षय से राजयक्ष्मा उत्पन्न होता है वह क्षय दो प्रकार के हैं अनुलोम और प्रतिलोम। अनुलोम क्षय भी दो प्रकार के हैं। जीवितशरीर के प्रत्येक वस्तु का कुछ अंश प्रतिक्षण विनष्ट होता है और पोषक द्रव्य से प्रत्येक की पुष्टि भी होती रहती है यदि क्षय से पुष्टि अधिक हो तो शरीर का उपचय होता है। यदि पुष्टि से क्षय अधिक हो तो शरीर का अपचय होता है। जो मनुष्य जितना अधिक परिश्रम करता है उसके शरीर का उतना अधिक क्षय होता है इसलिये उनको अधिक पोषक भोज्य चाहिये किन्तु भारत की सामाजिक परिस्थिति ऐसी है कि सम्पन्न मनुष्य शारीरिक परिश्रम कम करते हैं अथ च पोषक अन्न अधिक खाते हैं परिणाम स्वरूप अग्निमान्द्य अजीर्ण ग्रहणी अथवा मधुमेह से पीड़ित होते हैं जो लोग अत्यधिक परिश्रम करते हैं उनको आवश्यक पोषक भोजन नहीं मिलता है विशेष करके "बाबू" सम्प्रदाय के आय (आमदनी) अल्प है किन्तु "बाबू" बनने के लिये वस्त्रादि क खर्चा अत्यधिक है अतः दूध के बदले दुग्ध चूर्ण युक्त चाय घी के वदले वनस्पति तो चलता ही है बहुतों को तो केवल चाय से ही कभी-कभी क्षुधा की ज्वाला को शान्त करना पड़ता है अतएव भोज्य की कमी से रस की कमी, रस की कमी से रक्त की कमी क्रमशः मांस की, मेद की, अस्थि की, मज्जा की, और शुक्र की कमी होती रहती है धातुक्षीण होने से रोग क्षमता कम हो जाती है इस परिस्थितिमें यक्ष्म कीट शरीर में प्रविष्ट हुआ कि राजयक्ष्मा रोग होजाता है। चिन्ता शोकादि से भी क्षय होता है दूसरे प्रकार का अनुलोमक्षय तब होता है, जब कफ प्रधान दोष से शरीराणुओंमें रस प्रवेश मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तब उनके अन्दर पोषक रस का प्रवेश नहीं होने से शरीराणुओं (सेल्) अत्यधिक मात्रा में मरते हैं इससे भी शरीर का क्षय होकर राजयक्ष्मा होता है। स्वाधीनता के बाद भारत की उन्नति हो रही है इस बात को सब ही कहेंगे किन्तु खेद के साथ कहना पड़ेगा कि गिने चुने कुछ भारत वासियों को छोड़कर बाकी सब के लिये पुष्टिकर भोज्य मिलना असम्भव सा हो रहा है। घी का मूल्य देकर भी वनस्पति घी तथा दूध के नाम से दुग्ध चूर्ण इतना ही नहीं आटा, तैल, मसाला आदि कुछ भी शुद्ध मिलना साधारण मनुष्यों के लिये असम्भव सा हो रहा है भारतीय और सब विषयों में तो गरीब हो सकते हैं किन्तु भोज्यवस्तु और औषधादि में मिलावट के मामले में और सब से उन्नत हैं? अतएव राजयक्ष्मा रोगी की संख्या में भी भारत सब देश से उन्नत ही है, राज्याधिकारी वर्ग जब तक पौष्टिक परिशुद्ध अन्न की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे जब तक यक्ष्मावरोध के कुछ भी उपाय सफल नहीं हो सकेगा। राज्याधिकारिओं से हमारी

प्रार्थना है कि द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में भोज्यादि में मिलावट बन्द कराने के सफल प्रयत्न करें इसके लिये कठोर से कठोर कानून बनाने की आवश्यकता हो तो उसपर भी ध्यान देने की कृपा करें।

प्रतिलोमक्षय-स्वाभाविक या अस्वाभाविक प्रकार से अथवा स्वप्नदोषादि कारण से अत्यधिक शुक्र क्षय से क्रमशः मज्जादि धातुओं के क्षय होकर राजयक्ष्मा होता है। ध्यान रखना चाहिये कि अत्यधिक शुक्र-क्षय से प्रायशः नपुंसकता होती है। किन्तु शुक्रक्षीण होने पर भी यदि मानसिक उत्तेजना की कमी न हो तो राजयक्ष्मा भी होती है। प्राचीन भारत में गुरुगृह में ब्रह्मचारी रहकर विद्याशिक्षा होती थी अब छात्रावासमें रहना शृङ्गार रस प्रधान साहित्यों का अध्ययन चल चित्रों का दर्शन तो है ही किन्तु विज्ञापन बाजी करने वालों ने तो नग्न चित्र दिखलाने का ठेका ही ले रखे हैं इस सभ्यता में यदि नवयुवक गलती करे तो क्या ताज्जुब है। इस गलती का परिणाम कितना भयावह है यह तो अभिज्ञ व्यक्तियों से मालुम ही है यदि भारतीयों के स्वास्थ्य और नैतिक चरित्र उन्नत करना ही है तो ब्रह्मचर्य के महत्व को समझकर उसका आदर करना पड़ेगा चरक ने स्पष्टलिखा है कि—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद् रक्ष्यमात्मनः।
क्षयोह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति ॥

यदि वास्तव में भारतीयों के जीवन स्तर उन्नत करना है तो भारतीयों को स्वस्थ और सबल बनाना पड़ेगा किन्तु ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करके स्वस्थ और सबल होना असम्भव है। जिस देश में ब्रह्मचर्य की कमी है वहां भी स्वस्थ और सबल मनुष्य होते हैं किन्तु खबर लेने से पता लगेगा कि वास्तविक स्वस्थ और सबल वही है जो जितेन्द्रिय है। दूसरी बात यह है कि भीष्म पितामह जैसा स्वस्थ और सबल भारतीय तब ही होगा जब भीष्म जैसा ब्रह्मचारी रहेगा, ब्रह्मचर्य को प्रतिष्ठित करना है तो कठिन कार्य; किन्तु सरकार इसपर ध्यान दे तो असम्भव नहीं होगा।

(३) साहस से राजयक्ष्मा होता है। अधिक और से अधिक देर तक बोलना, गाना, पानी में तैरना, दौड़ना, कुश्ती लड़ना आदि ऐसा कार्य जिससे फेफड़ों पर अधिक दबाव लगकर कहीं से फट जावे तो उसको उरःक्षत कहते हैं। उस क्षत स्थान से प्रथम रक्तस्राव होता है फिर यदि क्षत में पूय उत्पन्न हो और वहां यक्ष्मकीट प्रविष्ट हो तो शीघ्र ही राजयक्ष्मा उत्पन्न हो जाता है। अब तो उरःक्षत का सबसे बड़ा कारण साईकल पर दीर्घ यात्रा, विशेषकर साईकल पर बोझ लादकर चलाना ही है, सरकार की ओर से अल्प व्यय में यात्रा की सुव्यवस्था जब तक नहीं होगी तब तक इस प्रकार साहस का प्रतिरोध तो सम्भव नहीं है किन्तु मजदूरों से शक्ति से अधिक परिश्रम न कराया जावे इसका प्रबन्ध तो सरकार चाहे तो कर सकती है।

(४) विषमाशन से राजयक्ष्मा होता है। बहु भोजन, अल्प भोजन और अकाल भोजन यह सब विषमाशन कहलाते हैं। आहार विधि की शिक्षा के अभाव से मनुष्य इस प्रकार बुरी आदत में पड़ जाते हैं। जनता की इस विषय की शिक्षा देने के लिये स्कूल के पाठ्य में स्वास्थ्य विषय की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये साथ ही रेडिओ और संवाद पत्र द्वारा भी स्वास्थ्य नियमों का प्रचार की व्यवस्था करनी चाहिये।

उपरोक्त चार कारण मनुष्य शरीर को यक्ष्म कीटाणुओं के अनुकूल बना देते हैं अतएव जब तक इन कारणों के परिहार कराने का प्रबन्ध नहीं कराया जावे तब तक यक्ष्मा का प्रतिरोध असम्भव है। यक्ष्मकीट भी अप्रधान कारण नहीं है किन्तु उन कीटाणुओं को मारने के लिये मनुष्य शरीर में विष औषध के प्रवेश कराना इतना अच्छा नहीं जितना इन कीटाणुओं के संक्रमण को रोकने का प्रबन्ध करना। रोगी जब तक अपने घरमें रहेगा तब तक केवल घरवालों में ही रोग को संक्रामित नहीं करेगा किन्तु वह बाहर थूकेगा, खांसेगा, रेल ट्राम बस आदि में सबके साथ मिलकर बैठेगा, सिनेमा घर के बन्द हवा में बैठकर

(शेष पृष्ठ १४ पर देखें)

प्राचीन चिकित्सा का मावोत्थान

(लेखक—डा० आर० एस० अग्रवाल)

हमें इतिहास से भारतीय संस्कृति एवं आयुर्वेद की प्राक्‌कालीन उन्नति ज्ञात होती है उस समय भारतीयों के ज्ञान का विकास अन्य देशों की तुलना में विशेष था भारतीय लोक विचार व क्रिया में इतने महान् क्यों माने गये ?

मानव कल्याण के लिये जिन महापुरुषों ने जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया, एवं अपने ज्ञान के द्वारा बहुत से अनुसंधान किये, वे हमारे ऋषि महर्षि विचारक बुद्धिवादी व क्रियाशील महात्मा थे, उनका उद्देश संसार की प्रेरणाकर बुद्धि को परम विकसित कर ईश्वर-सेवा और जन सेवा करना था।

आज कल आयुर्वेद की स्थिति दयनीय है, क्यों कि आयुर्वेद के अनुयायी गण (वैद्य वर्ग) मानसिक आदर्श वाद और प्रेरणात्मक बुद्धि भूल गये हैं और आजकल भौतिक वाद के प्रभाव से ग्रस्त हो रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि भारतीयों की बुद्धि निर्बल होती गई साथ में रचनात्मक शक्ति भी समाप्त हो गई आयुर्वेद सिद्धान्तों का सत्य बोध और क्रियात्मक ज्ञान के अभाव से ही आयुर्वेद का ह्रास हुआ और सम्पूर्ण सनातन रूप सरल आयुर्वेद आधुनिक जनों के लिये रहस्य सा बनाया है।

भूतकालीन ज्ञान प्रगति के लिये बाहक एवं प्रेरणाप्रद है। भूतकाल वर्त्तमान को बनाता है। और इसका यह अंश भविष्य को भी बनाता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र प्राचीन चिकित्सा शास्त्र का विकास है। ऐलोपैथी और आयुर्वेद एक ही पद्धति से कार्य कर रहे हैं। आयुर्वेद ने यह चिकित्सा शास्त्र की सामान्य भूमिका प्रदान की है। तब ही आधुनिक विकसित चिकित्सा शास्त्र ने सर्वोच्च बुद्धि वादियों की सहायता से संपूर्ण विस्तृत वर्णन किया।

हमें भविष्य में एलोपैथी के उच्चसंशोधन द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर आयुर्वेद की न्यूनता को दूर करना है। यद्यपि आधुनिक डाक्टर किञ्चित् सरल और फलप्रद ज्ञान आयुर्वेद से प्राप्त करेंगे और रोगी के लिये चिकित्सोपयोगी कुछ रहस्य आयुर्वेद से प्राप्त कर आश्चर्य मुग्ध होगें।

आधुनिक वैज्ञानिक और दोनों पद्धतियों के चिकित्सक बुद्धि मर्यादा से दोनों शास्त्रों का मंथन कर आयुर्वेद को पूर्ण विकसित कर सकेंगे। मैं एलोपैथी का चिकित्सक हूँ फिर भी मैंने आयुर्वेद साहित्य का अभ्यास किया है। हालां कि मेरा आयुर्वेद सम्बधित ज्ञान मर्यादित है। आयुर्वेद सम्बन्ध में जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया है वह बहुत करके स्वतः या ईश्वर कृपा से ही प्राप्त किया है जब-जब अवसर आया और मेरे सामने समस्या उपस्थित हुई तब मेरे सामने शास्त्र-शोधन करना अनिवार्य हुआ जैसे एक समय डाक्टर वालिंग नागपुर ने नेत्रशास्त्र में "समन्वयात्मक" संशोधन इस विषय पर लेख लिखने के लिये मुझ से अनुरोध किया था।

दूसरी बार जनरल आफ आयुर्वेद के सम्पादक महोदय ने मुझे लेख लिखने के लिये प्रोत्साहित किया था उनके आग्रह से मैंने त्रिदोष बाद के सम्बन्ध में कुछ लिखने का निश्चय किया पुनः उनकी ओर से दो वर्ष बाद प्राचीन द्रव्य गुण निश्चय करने की संशोधन पद्धति पर लिखने के लिये कहा गया किन्तु समय थोड़ा होने से यह कार्य मैं विस्तार से न कर सका यदि आयुर्वेद को समुचित विकसित करना हो तो आयुर्वेद का पुनर्जीवन और पुनर्निर्माणार्थ ये दोनों कार्य आरम्भ करने पड़ेंगे। त्रिदोष सिद्धान्त जिसपर आयुर्वेद का सर्वस्व निर्भर है। उस त्रिदोष सिद्धान्तमें पुनः संशोधन एवं विश्लेषण करना पड़ेगा, जिसमें अर्वाचीन मानस को प्रभावित कर सके और उनके सिद्धान्तानुसार उनकी चिकित्सा पद्धति की सुधारणा कर सकें एवं उनकी प्रयोजन रीति में भी शुद्धि कर सकें।

दीर्घ जीवन कैसे प्राप्त करें ?

(लेखक—श्रीनानकचन्द्र वैद्य शास्त्री)

जो जीव संसार में उत्पन्न हुआ है उसमें प्रायः तीन वासनायें सदा रहती हैं—यथा १. प्राणैषणा २. धनैषणा ३. परलोकैषणा। इन तीनों में प्रधान प्राणैषणा है। यतः प्राणों की विद्यमानता से शेष एषणायें मनुष्य स्वयं प्राप्त कर सकता है अतः इसी एषणा की प्राप्ति के लिये हर एक व्यक्तिको यत्नशील होना परमावश्यक है कहा भी है—

"धीमता तदनुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानुवर्तते" इति।

आयुर्वेद औषध के दो भेद दर्शाये हैं १. स्वस्थ पुरुष को बलकारक २. रोगी को आरोग्यता देने वाली कही है यथा—

"स्वस्थस्यौजस्करं किंचित् किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत्"

जो स्वास्थ्यप्रद बलकारक होती है उसे वृष्य तथा रसायन कहा है। उसी के सेवन करने से दीर्घायु मनुष्य प्राप्त कर सकता है उक्तञ्च चरके—

"दीर्घायुः स्मृति मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रिय बलं परम्।
वाक् सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्॥

जो वाजीकरण (वृष्य) औषध है वह अनेक गुणों को करती है।

रसायन द्रव्यों के प्रयोगार्थ चरकने दो मार्ग वर्णन किये हैं। १. कुटीप्रावेशिक २. वातातपिक इन दोनों विधियों द्वारा रसायन द्रव्य सेवन करने से विशेष लाभ होते हैं। इनका प्रयोग सुयोग्य वैद्य के अधिकारमें किया हुआ विशेष लाभप्रद कहा है। इससे अतिरिक्त अन्य ऐसे योग यहां उद्धृत करते हैं जिनके नित्य प्रति सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु लाभ कर सकता है।

सर्व प्रथम यहां पानीयकरण विधि को वर्णन करते हैं जिसके नित्य प्रति प्रयोग से मनुष्य दीर्घायु तथा नीरोग रह सकता है।

अथोदक कल्प—

न खंपक्ति क्रियायोगो भेषजेषु च विद्यते।
सर्वरोग विनाशाय निशान्ते तु पिबेज्जलम्॥

अर्थात् भेषजों के प्रयोग से उतना लाभ नहीं होता अतः सर्व रोगों के नाशार्थ रात्रि के अन्त में जलपान करना चाहिये। जलपानकी विधि इस प्रकार होती है यथा—

"अम्भसः प्रसृतिरष्टौरवावनुदिते पिबेत्।
वातपित्तकफान् जित्वा जीवेद्वर्ष समाशतम्"॥

अर्थात् जल आठ प्रसृति सूर्योदय से पूर्व नित्य पीने से तीनों दोषों को जीत कर मनुष्य सौ वर्ष तक जीवन लाभ कर सकता है। इसी उषापान को नासा द्वारा पीने का विधान भी कहा है। यथा—

"प्रसृतियुगलमात्रं प्रातरुत्थाय नित्यम्।
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि॥
स भवति मतिपूर्णो श्चक्षुषा तार्क्ष्य तुल्यो।
वलिपलित विहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः"॥
॥ इति स्पष्टम्॥

इस विधि से उषापान करने से अनेक लाभ होते हैं वह अनुभवमें आचुका है। इससे अन्य और भी विशेष उपदेश किया है।

उक्तञ्च चण्डीश्वरी तन्त्रे—

"निशादौ च विषं वारि निशामध्येपयः स्मृतम्।
निशान्ते च पिबेद्वारि मातुः चीर मिवोत्तमम्" इति

अर्थात् रात्रि के आदि में (सायं काल) जल पीया हुआ विष के समान कहा है और रात्रि के मध्यमें जल पान जल के तुल्य ही मानते हैं तथा निशाके अन्त (उषाकाल) में माता के दुग्ध के समान लाभ प्रद कहा है। अधुना कुछ प्रयोग वर्णन करते हैं—

हरीतकी कल्प—

यह हमारा प्राचीन पूर्वजों का अनुभव सिद्ध योग

है वैद्य लाभ उठावें हरीतकी, आमला, विभीतक, हरिद्रा, शालपर्णी, बला, बायविडंग, गिलोय, सोंठ, मुलहठी, पिप्पली, खदिर यह सब द्रव्य समभाग लेकर इनमें धात्री रससे शतभावना भावित आमलक २५ पल मिला कर चतुर्थांश दुग्ध, घृत, मधु, चीनी मिला कर १ तोला की मात्रा बला बल देखकर प्रयोग करने से मनुष्य दिन प्रतिदिन आनन्द तथा स्वास्थ्य को प्राप्त होता है। निरन्तर सेवन करने से अतुल बल, सर्व रोगों से मुक्त होकर दीर्घायु लाभ करता है।

अन्य कल्प—

छोटी इलायची, ब्राह्मी, काकोली, क्षीरकाकोली, मुण्डी, शतावरी, विदारीकन्द, जीवन्ती, पुनर्नवा नागबला, पृष्ठपर्णी, बच, सौंफ, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक, इन सब औषधियों को समभाग लेकर चूर्ण कर ६ माशे नित्य दुग्ध के सेवन करने से दीर्घायु, तरुणावस्था, मेधा, स्मृति आदि गुण होते हैं।

अन्य पुनर्नवा कल्प—

पुनर्नवस्यार्धं पलं नवस्य पिष्टं पिवेद्यः पयसार्धमासम्।
मासद्वयं तत्त्रिगुणं समां वा जीर्णोऽपिभूयः स पुनर्नवस्यात्॥

अर्थात् जो पुरुष नवीन (ताजी) सांठी जो श्वेतमूल की हो उसको चूर्ण कर आधापल वा बला बल देख कर सेवन १५ दिन, दो मास वा वर्षपर्यन्त नित्य दुग्ध के साथ करता है वह वृद्ध व्यक्ति भी पुनः युवावस्थाको प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं।

भृङ्गराज कल्प—

१ शरद् ऋतुमें भांगरे की जड़ को लाकर छाया में सुखालें और सूक्ष्म चूर्ण करलें कांजी में भिगोकर शुभदिन में (पुष्यादि में) सेवन करें १ तोला भर यह सदा हितकर होता है। एक मास भर खाने से सर्वरोग नाश हो जाते हैं। दो मास के प्रयोग से मनुष्य बलवान् हो जाता है।

२ त्रिफला का चूर्ण लेकर उसे भांगरेके रसमें डालकर इसे सेवन ३ पक्ष करने से पलित रोग नष्ट हो जाता है।

३ काकमाची का रस, भांगरे का रस दोनों मिलाकर १३ दिन सेवन करने से देह दृढ़ हो जाती है। परञ्च सेवन करने वाला जितेन्द्रिय रहे। तथा इन कल्पों के सेवन से पूर्व मनुष्य को वमन, विरेचनादि देकर ही इन उक्त औषधियों का सेवन लाभदायक हो सकता इतना ही कल्प सेवन करने वाले व्यक्ति को सदा आस्तिक भाव रखकर गुरुजनों का तथा वैद्य पर श्रद्धा रखने वाला होना आवश्यक होता है। (क्रमशः)

— राजयक्ष्मा का प्रतिरोध —

(पृष्ठ ११ का शेष)

श्वास और कास के द्वारा खूब कीटाणु फैलावेगा, होटल के बर्तनों को भी दूषित करेगा विशेष करके युवा रोगी अपनी स्त्री को भी मारेगा स्वयं भी शीघ्र मरेगा और युवती रोगी अपने पति को भी मारेगी स्वयं भी शीघ्र मरेगी। इसलिये सरकार का कर्तव्य है कि यक्ष्मा रोग का सन्देह होते ही सावधानी से रोग निर्णय कराकर रोगी को घर से हटाकर स्वास्थ्य निवास में रखने की व्यवस्था की जावे। ऐसी व्यवस्था करने के लिये अत्यधिक धन की आवश्यकता है यह तो स्पष्ट है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिये अरबों रुपये खर्च करना भी है फिर इतना प्रचुर धन कहां से आवेगा इस प्रश्न का उत्तर इतना ही है कि वैदेशिक शत्रु से रक्षा के लिये अधिक व्यय भी करना ही पड़ता है ऐसा ही राष्ट्रीय शत्रु राजयक्ष्मा से रक्षा के लिये भी व्यय करना आवश्यक है।

मधुमेह (शर्करा मेह)
Diabetes Mallitis

(लेखक--कविराज डा. विद्यासागर थापड़ वैद्यवाचस्पति M. B. B. S.)
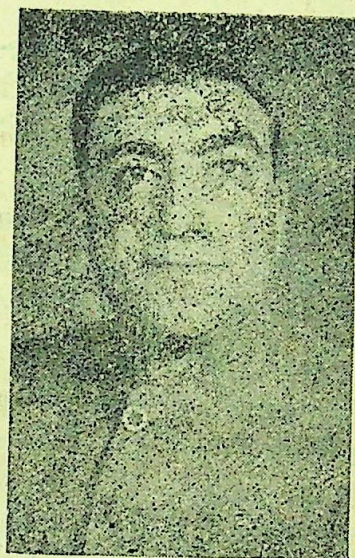
जिस प्रकार राजयक्ष्मा हमारे देश वासियों के स्वास्थ्य को नष्ट करने में विशेष हेतु हैं उसी प्रकार मधुमेह भी मानव जातीय शरीर को घुन की तरह खा जाता है। जो रोगी मधुमेह के शिकार होते हैं उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है वे उत्तरोत्तर निस्तेज होते जाते हैं और उनके शरीर का भार दिन प्रतिदिन कम होता जाता है।

परिचय—इस रोग में कार्बोज जो हम खाते हैं उसके पाचन और निस्सरण में विकार आ जाता है जिससे रक्त में शर्करा की अति वृद्धि हो जाती है और वह मूत्र में आने लगती है इसी लिए इसका नाम शर्करा मेह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

हां इसकी उग्रावस्था के लिए (जिसका हम संप्राप्ति में वर्णन करेंगे। मधुमेह शब्द ही प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

भेद—आजकल मधुमेह दो प्रकार का देखा गया है।

(१) कृशता कारक (Thin type)

(२) स्थूलता कारक (Fat type)

कारण—

कृशता कारक मधुमेह—यह युवावस्था में होता है और गरीब मनुष्यों में प्रायः देखा गया है प्रायः यह सहज होता है अथवा किसी न किसी प्रकार का संक्रमण इसमें कारण हो सकता है। उपदंश भी इसका विशेष कारण है। इसी प्रकार रक्तवाहिनियों के रोग जैसे धमनी काठिन्य आदि रोगियों को भी यह अधिक देखा गया है।

शास्त्र में कहे गए मधुमेह में जो निम्न लिखित कारणों का उल्लेख किया गया है वह ठीक कृशता कारक मधुमेह के ही प्रतीत होते हैं:—

कड़वे, चरपरे, कषैले, रुखे, हल्के और ठण्डे पदार्थों का अधिक सेवन, स्त्री सहवास का अधिक्य शारीरिक और मानसिक परिश्रम, वमन, विरेचन, बस्ति शिरोविरेचन आदि का अति योग, मलमूत्रका रोकना, उपवास, लंघन, चोट लगना, धूप, चिन्ता, शोक किसी भी हेतु से रक्तका अधिक निकलना तथा रात का जागना प्रभृति कारणों से कुपित वायु मधुर स्वभाव ओज को कषैला बना देता है और बस्ति स्थान में लाकर मूत्रमार्गसे निकालता है। इन कारणों से शरीर दुर्बल तथा कृश होकर शीघ्र नाश का कारण बनता है।

स्थूलता कारक मधुमेह—यह यौवनावस्था में अधिकतर ४० से ६० वर्ष की आयु में होता है। प्रायः धनी मनुष्यों में यह अधिक देखा गया है। इसमें भी सहज कारण हो सकता है परन्तु भोजन में कार्बोज तथा वसा के अत्यधिक खाने पर भी व्यायाम न करने से यह प्रायः अधिक होता है। इसमें शरीर मोटा हो जाता है और मेदोवृद्धि हो जाती है।

इसमें भी उपदंश कारण हो सकता है। चुल्लिका ग्रन्थि वृद्धि (Hyper thyroidism), उपवृक्क वृद्धि Hyper adrenalism), पिच्युटरी ग्रन्थि की अति वृद्धि (Hyper pituitrism) भी इस रोग के कारण देखे गए हैं।

शास्त्र में भी लिखा है—नवीन अन्न का भोजन, अधिक सोना, बैठा रहना, चिन्ता रहित रहना, मानसिक तथा शारीरिक परिश्रम न करना, वमन, विरेचन भी न करना, प्रभृति कारणों से कफ, पित्त, मेद तथा मांस, वायु मार्ग को रोक देते हैं तब क्रुद्ध वायु ओज को बस्ति मार्ग में पहुँचा कर मधुमेह करता है।

मधुमेह विकार सारे शरीर में व्यापक दोष और सब धातुओं की विकृति होने पर उत्पन्न होता है। आयुर्वेद की दृष्टि से मधुमेह में वात, पित्त, कफ तीनों दोष और रस, रक्त, मांस, मेदा, वसा, लसीका, मज्जा, शुक्र और ओज यह सब धातुएं दुष्ट हो जाती हैं। इन सब की क्रिया परस्पर एक दूसरे पर होने के पश्चात् मधुमेह उत्पन्न होता है। त्रिदोष में इस रीति की दुष्टी के दो कारण हैं। एक अब्धातु उत्पादक दूसरी अब्धातु शोषक। मधुमेह में पहिले प्रकारकी दुष्टी होती है।

संप्राप्ति—मधुमेह में मूत्र में मिलने वाली या रक्त में संचित होने वाली शर्करा अग्न्याशय (Pancreas) से उत्पन्न अन्तरस्राव (Internel Secretion) अर्थात् इन्सूलिन (Insulin) द्रव्य के अभाव का परिणाम है यह आधुनिक मान्यता है।

इन्सूलिन शर्करा के पचाने में सहायक है अर्थात् इन्सूलिन की पर्य्याप्त मात्रा शरीर में होने से शर्करा की अति वृद्धि नहीं होने पाती और इसीलिए शर्करा की अधिक मात्रा रक्त में नहीं पहुँच सकती।

(१) प्रायः ऐसा विचार किया जाता है कि मधुमेह रोगी का अग्न्याशय (Pancreas) अस्वस्थावस्था में हो क्योंकि शर्करा को पाचन करने वाली इन्सूलिन यहां ही पैदा होती है। विशेष करके अग्न्याशय के आईलेट्स आफ लेंगरहन्स (Islets of Langerhans) के बीटा सेल्स (Beta cells) इन्सूलिन बनाने का अपना कार्य भली प्रकार से नहीं कर पाते हों।

(२) अथवा इन्सूलिन पर्य्याप्त मात्रा में होते हुए भी शरीर के तन्तु किसी अन्य कारणों से (अर्थात् दोष दुष्यों के वैषम्य के कारण से) उसे भली प्रकार प्रयोग में न ला पाते हों।

(३) इसी प्रकार पिच्युटरी ग्रंथि में भी अस्वस्थावस्था हो सकती है जिसके कारण से वह एक ऐसे प्रकार का हारमोन (Hormone) पैदा कर रहे हों जो कि इन्सूलिन के कार्य में बाधा डाल रहा हो।

(४) इसी प्रकार भोजन में कार्बोज यदि अत्यन्त ही कम मात्रा में लिया जाय तो भी इन्सूलिन की उत्पत्ति की कमी रहती है क्योंकि कार्बोज इन्सूलिन पैदा करने में विशेष उत्साहित करता है।

इनमें से किसी एक अथवा सब कारणों से रक्त में शर्करा की मात्रा जो स्वस्थावस्था में १०० सी० सी० में केवल ८० से १०० मीलीग्राम होती है। मधुमेह रोग में दो तीन अथवा चार गुणा हो जाती है। इसी से इस रोग की तीव्रता की पहिचान हो सकती है।

जैसे २०० मीलीग्राम से कम होने से साधारण रोग।
२०० से ३०० मीलीग्राम तक होने से तीव्ररोग।
३०० से ४०० मीलीग्राम तक होने से अतितीव्ररोग।

उग्रावस्था में जब शरीर की सब शर्करा समाप्त हो जाती है तब वसा और प्रोटीन का भी सद्व्यय नहीं होता प्रत्युत उनसे भी शर्करा बनने लगती है। वसा ही के असद्व्यय के कारण एसिटो एसिटिक ऐसिड, बीटा आक्सी ब्युटैरिक एसिड और एसिटोन बनने लगते हैं और रक्त में जाकर मूत्र द्वारा बाहिर निकलते रहते हैं। इन कारणों से रक्त में कई प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं जो सन्यास आदि उपद्रवों को पैदा करने में सहायक होते हैं।

शास्त्र में कही गई निम्न सम्प्राप्ति भी प्रायः इसी अवस्था की द्योतक हैं कफ, पित्त, मेद और मांस

बढ़कर वायु मार्ग को रोक देते हैं इस प्रकार कुपित वायु मधुर स्वभाव वाले ओज को कषैला बना देता है और बस्ति स्थान में लाकर मूत्रमार्ग से निकालता है। इस कारण मूत्र स्वाद में कषैला और मीठा होता है, रंग में पाण्डुर (मट मैला सफेद) होता है तथा इस में रूखापन भी रहता है। यह शर्करा मेह की उग्रावस्था का द्योतक है और मधुमेह के असली स्वरूप सन्यासादि उपद्रवों सहित होने के कारण शास्त्र में असाध्य कहा गया है।

लक्षण—मधुमेह रोगी का प्रथम लक्षण प्रायः निम्नलिखित में से ही प्रारम्भ होता है इसलिए इनको ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

(१) बहुमूत्र (Polyuria)

(२) अत्यधिक थकावट (Extra Exhaustion)

(३) प्रमेहपिड़िका (Carbuncle) अथवा कण्डू आदि अन्य त्वचा रोग।

(४) नेत्र रोग जैसे मोतिया बिन्दु (Cataract) अथवा अन्तः पटल शोथ (Retino cyclitis) आदि।

(५) राजयक्ष्मा।

(६) हृदय अथवा रक्त वाहिनियों के रोग, जैसे रक्तदबाव वृद्धि (Hyper tension), हृदय कार्य अवरोध (Coronary Thrombosis), हृदय अवपीड़न (Angina Pectoris)।

(७) सन्यास (Coma)।

(८) नपुन्सकता (Impotency)।

मधुमेह रोग के दो भेद हम पहिले बता चुके हैं –

(१) कृशता कारक मधुमेह—ही शास्त्र में कहे गए मधुमेह का असली रूप प्रतीत होता है। यह अकस्मात् ही प्रारम्भ होता है, पहिले दिन से ही अत्यधिक तृषा लगने लगती है। ऐसे रोगी युवक ही होते हैं और गरीब मनुष्यों में ही प्रायः यह देखा गया है। शरीर दुर्बल तथा पतला बन कर शीघ्र सन्यास आदि उपद्रवों से युक्त हो जाता है और मृत्यु का कारण बन जाता है। कभी-कभी तो इनका रोग निर्णय भी भली प्रकार नहीं हो पाता। इनमें अग्न्याशय की विकृति अवश्य होती है।

(२) स्थूलता कारक मधुमेह—यह प्रायः गुप्त रूप से ही प्रारम्भ होता है। शनैः शनैः रोगी को थकावट की अधिकता प्रतीत होती जाती है तृषा अधिक लगती है, कण्डू भी साथ में अवश्य ही होता देखा गया है। ऐसे रोगी प्रायः कई वर्ष तक रोग से अनभिज्ञ ही रहते हैं, अकस्मात् मूत्रपरीक्षा से उन्हें अपने रोग का ज्ञान होता है।

रोगी को मूत्र अत्यधिक मात्रा में आता है। दिन भर में १५–२० सेर तक भी आजाता है। इसमें शर्करा अधिक मात्रा में होती है। मूत्र का वर्ण श्वेत होता है इसमें एक विशेष गंध (मूत्र में एसिटोन Acetone) होने के कारण) आती है। आपेक्षिक घनत्व (Specific gravity) बढ़ जाती है। १०३० से १०६० तक होती है।

तृषा अत्यधिक लगती है, भूख बढ़ जाती है और रोगी अपने शरीर की अपेक्षा अत्यधिक भोजन खाता है परन्तु फिर भी दुर्बल होता जाता है। उसे प्रारम्भ से ही प्रायः कोष्ठ बद्धता रहती है। जिह्वा शुष्क और रक्तवर्ण की होती है। शरीर रूक्ष और शुष्क होता है। पुरुषों में शिश्न के इतस्ततः और स्त्रियों के भग के इतस्ततः असह्य कण्डू होती है। क्षीणता बढ़ती जाती है और शरीर भार दिनों दिन कम होता जाता है। रोग की तीव्रतानुसार रक्त में शर्करा की वृद्धि होती है और सम्प्राप्ति में कहे अनुसार कई विषों की उत्पत्ति होकर भिन्न-भिन्न प्रकार के उपद्रव पैदा होते हैं।

रोग मीमांसा—मूत्र परीक्षा से यह रोग स्पष्ट हो जाता है। मधुमेह रोगी के प्रातः के मूत्र में शायद शर्करा न भी हो, इसलिये या तो सारी रात का मूत्र लेना चाहिए अथवा भोजन के तीन घंटे बाद के मूत्र की परीक्षा करनी चाहिए। सर्वोत्तम तो यह है कि २४ घंटे का मूत्र ही लिया जाय क्योंकि उसमें शर्करा अवश्य मिल जायगी।

मूत्र में शर्करा की परीक्षा के लिए बैनिडिक्टस

परीक्षा (Benedicts test) ही सर्वोत्तम है क्योंकि इस परीक्षा द्वारा प्रतिशत शर्करा की मात्रा का कुछ न कुछ ज्ञान साधारण वैद्य को भी हो सकता है।

एक काच नलिका में ५ सी० सी० वैनिडिक्टस बिलयन डालें उसमें एक-एक बिन्दु करके धीरे-धीरे आठ बिन्दु तक मूत्र के डालें और १-२ मिनट उबालते जावें। इस प्रकार करने से यदि शर्करा होगी तो हरा, पीला या लाल रंग का निक्षेप पृथक् हो जायगा। यदि एक बून्द से ही रंग में उपरोक्त परिवर्त्तन हो जाय, विशेष कर यदि लाल रंग हो जाय तो यह समझना चाहिए कि शर्करा की मात्रा अत्यधिक है। इस प्रकार उत्तरोत्तर जितनी मूत्र की अधिक बून्द डालने से रंग में परिवर्त्तन आता जायगा उतना ही मूत्र में शर्करा की मात्रा कम समझनी चाहिए। आठ बून्द डालने से रंग बदलने पर, विशेष करके केवल हरा रंग होनेपर यह समझना चाहिए कि शर्करा की मात्रा केवल १ अथवा ½ प्रतिशत ही है अतः घबराने की कोई बात नहीं है।

कई बार मूत्र में शर्करा न होने पर भी रक्त में शर्करा की अधिकता होती है अतः रक्त में शर्करा की परीक्षा भी अवश्य करवा लेनी चाहिए। इस विषय में सम्प्राप्ति में कुछ चर्चा की गई है।

उपद्रवः-मधुमेह के उपद्रवों की संख्या अत्यधिक है उनमें से कोई अत्यन्त कष्टदायक होते हैं। उपद्रव प्रायः कृशता कारक मधुमेह में ही देखे गए हैं।

(१) वातसंस्थान उपद्रव—
(i) सन्यास (Coma)
(ii) अर्दित (Facial paralysis)
(iii) वातशूल (Neuralgia)
(iv) शिरःशूल (Headache)
(v) उन्माद (Mania & Malancholia)
(vi) पक्षाघात (Hemiplegia)
(vii) अनिद्रा (Insomnia)

(२) नेत्ररोग—
(i) अन्तः पटल शोथ (Retinitis)
(ii) मोतिया बिन्दु (Cataract)
(iii) नेत्रनाड़ी शोथ (Optic Neuritis)
(iv) दृष्टिनाश (Loss of vision)

(३) श्वास संस्थान उपद्रव—
(i) राजयक्ष्मा (Tuberculosis of the lungs)
(ii) श्वसनक सन्निपात (Lobar Pneumonia)
(iii) प्रणालीय फुफ्फुस प्रदाह (Broncho Pneumonia)
(iv) फुफ्फुस कोथ (Gangrene of the Lungs)
(v) फुफ्फुस विद्रधि (Abscess of the Lungs)
(vi) उरःपूय (Empyema)

(४) हृदय संस्थान उपद्रव—
(i) हृदय अवरोध (Coronary Thrombosis)
(ii) हृदय अवपीड़न (Angina Pectoris)
(iii) रक्तभार वृद्धि (High blood pressure)
(iv) धमनी काठिन्य (Arterial Sclerosis)

(५) त्वचा रोग—
(i) स्फोट (Boils)
(ii) प्रमेह पीड़िका (Carbuncle)
(iii) विद्रधि (Abscess)
(iv) कोथ (Gangrene)
(v) कण्डू (Pruritis)
(vi) तीव्रशोथ (Cellulitis)

(६) जननेन्द्रिय रोग—
(i) नपुंसकता (Impotency)
(ii) वंध्यत्व (Sterility)
(iii) गर्भस्राव (Abortion)

(७) वृक्करोग—
(i) वृक्क शोथ (Nephritis)
(ii) मूत्रमें प्रोटीन (एलब्यूमेन) की अति वृद्धि (Albuminuria)

(८) अस्थि रोग—
(i) अस्थिशोथ (Osteomyelitis) इत्यादि

कोष्ठ वात

(लेखक—वैद्य सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य)
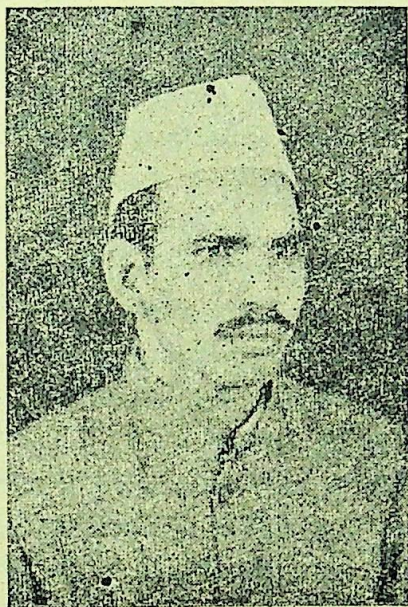
आजकल ये रोग विशेष रूप से लोगों में व्याप्त है। साधारण भाषा में इसे पेट में वायु भरना (गैस की बीमारी) कहते हैं। इस भयंकर बीमारी के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व हमें प्रारम्भिक कुछ विचार करना आवश्यक है।

हमारे शरीर में जितने भी रोग होते हैं उनकी गतियाँ तीन भागों में होती हैं अर्थात् रोगों के तीन मार्ग है।

१ शाखा
२ मर्म, अस्थि, सन्धि,
३ कोष्ठ

इसी विषय को चरक सूत्र स्थान में स्पष्ट कर दिया है कि "त्रयो रोगमार्गा इति शाखा मर्मास्थि संधि कोष्ठश्च। तत्र शाखा रक्तादयो धातवस्त्वक् च स बाह्यो रोग मार्गः"।

मर्माणि पुनर्बस्ति हृदय मूर्धादीनि, अस्थि संधयोऽस्थि संयोगास्तत्रोप निबद्धाश्च स्नायु कण्डराः।

अब हमें कोष्ठ शब्द के विषय में विचार करना है।

"कोष्ठपुनरुच्यते-महास्रोतः शरीर मध्यं महानिम्न-मामपक्काशयश्चेति, पर्याय शब्दै स्तन्त्रे सरोग मार्ग आभ्यन्तरः" कोष्ठशब्द से आमाशय, क्षुद्रांत्र तथा पक्काशय का ग्रहण किया है, कोष्ठ को महास्रोत भी कहा है। सुश्रुत में—

"स्थानान्यामाग्नि पक्कानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुन्डुक फुफ्फुसश्च कोष्ठमित्यभिधीयते" अर्थात् आमाशय, अग्न्याशय, (क्षुद्रांत्र) पक्काशय, मूत्रग्रन्थि गवीनी, मूत्राशय, यकृत् और प्लीहा, हृदय, उन्डुक, फुफ्फुस ये सभी कोष्ठ कहाते हैं।

आधुनिकों के मत से भी उरोगुहा (थोरेक्स) उदर गुहा (एब्डोमन) और श्रोणिगुहा (पेल्विक केविटी) ये तीन गुहायें अवकाश कोष्ठ शब्द से ही अभिहित है।

कोष्ठानुसारी रोग निम्न माने गये हैं—ज्वर, अतिसार, छर्दि, अलसक, विशूचिका, श्वास, कास, हिक्का, आनाह, उदर रोग, प्लीहावृद्धि आदि रोग तथा अन्तर्मार्ग से उत्पन्न होने वाले विसर्प शोथ, गुल्म, अर्श, विद्रधि, आदि रोग होते हैं। ये संक्षेप रूप से बताये गये हैं।

हमारे शरीर में मुख से लेकर गुद तक का ये जो लम्बामार्ग है इसको भी एक कोष्ठ माना है। और हम जो कुछ भी आहार ग्रहण करते हैं, वह मुख से अन्नवह द्वारा आमाशय में और आमाशय से

क्षुद्रान्त्र में और वहाँ से स्थूलांत्र में जाता है। ये सारी ही क्रिया वायु द्वारा ही होती है, क्योंकि पित्त और कफ भी वायु के पीछे ही चलते हैं। कहा भी है–

"पित्तं पंगु कफं पंगु पंगवो मलधातवः,
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्"

इस वायुका स्वरूप—"तत्र रुक्षो लघु शीतः खर-सूक्ष्मश्चलोऽनिल." है। ये वायु जब कोष्ठाश्रित होता है तब--

"तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसो,
बध्नहृद्रोग गुल्मार्श पार्श्वशूलश्च मारुते"

अर्थात् कोष्ठ में दूषित वायु मल-मूत्र का अवरोध, अण्ड वृद्धि, हृद्रोग, गुल्म, अर्श और पार्श्वशूल उत्पन्न कर देता है। लेकिन यह भी जानना आवश्यक है कि कोष्ठमें वायु की उत्पत्ति या वृद्धि क्यों और कैसे होती है?

धातुओं के क्षय से और इनके द्वारा मार्ग के आवृत्त होने पर वायु की वृद्धि होती है।

मोटे रूप से बलवान के साथ युद्ध करने से, अति व्यायाम से, अति मैथुन से, अति अध्ययन, दौड़ना, कोई अङ्ग दब जाना, कूदना, तैरना, जागरण, दिवा-स्वप्न, भारवहन, हाथी-घोड़ा रथ आदि पर या पैदल अधिक यात्रा करने से, अत्यन्त परिश्रम से, मर्म पर प्रहार होने पर, ऊंचे पर से गिरने से, कटु कषाय तिक्त, रुक्ष, लघु शीतवीर्य, कठिन, खर, विशद, और शरीर की घनता को कम करने वाले आहार द्रव्यों का अधिक सेवन से, सूखे शाक, सूखा मांस, उद्दालक, कोदों नीवार, मूंग, मसूर, अरहर, मटर, लोबिया इनका अति सेवन से, तथा उपवास विषम-भोजन और अध्यशन से भी कोष्ठकी वायुकी वृद्धि होती है।

वमन, विरेचन, आस्थापन, बस्ति शिरो विरेचन, रक्तमोक्षण आदि क्रियाओं का अतियोग या हीन योग भी वायुको प्रकुपित करता है।

अधोवायु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, छींक, डकार, अश्रु, क्षुधा, पिपासा आदि के वेग को रोकने से भी वायु की वृद्धि होती है। भय, चिन्ता, शोक, सन्ताप और क्रोध इनसे भी वायु का प्रकोप होता है।

इन कारणों से शरीर के स्रोतों में स्नेह मार्दव आदि गुणों का ह्रास हो जाता है, जिससे दूषित और प्रवृद्ध वायु इन्हें परिपूर्ण कर देता है।

दूसरे दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार करें तो। जो कुछ भी हम आहार ग्रहण करते हैं वो आहार मुख द्वारा, अन्न नलिका में होता हुआ आमाशय में पहुँचता है, वहां पाचन होकर आधे घंटे के पश्चात् क्षुद्रान्त्र में प्रवेश करता है, क्षुद्रान्त्र में इस आहार को घूमने में चार घंटे लगते हैं और फिर स्थूलान्त्रमें १३½ घंटे लगते हैं, लेकिन यदि आमाशय की क्रिया ठीक न हो तो अन्न का पाचन ठीक न होगा। और जो आमाशयिक रस उसको वहां मिलना चाहिये वो प्राप्त न होने पर अपचनावस्था में ही वो आहार क्षुद्रान्त्र को चला जायेगा इस प्रकार की क्रिया से आंतों को भी आमाशय का कार्य करना पड़ता है। जिससे कि स्वाभाविक है कि आंतों में दुर्बलता आये, परिणाम स्वरूप अन्नका सम्यक् पाचन न होना और उस अपक्व मल के द्वारा वायु का निर्माण होना भी पाया जाता है, जिससे आध्मान, पेट में गुड़ गुड़ होना, पेट में दर्द व बेचैनी आदि लक्षण होते हैं।

दूसरा कारण यह भी होता है कि मलके वेगको रोकने से या अन्य किसी कारण से कब्ज होने पर दूषित वायु पक्वाशयशूल, शिरशूल, आध्मान, जांघों में उद्वेष्टन आदि लक्षण होते हैं, इनका कारण यह है कि पुरीष के वेग की उपेक्षा करने से मल का वेग शीघ्र ही लुप्त हो जाता है, और वह मल आंतों में पड़े रहने से जल के अंशको सुखा देता है, जिससे मलकी गांठें बन जाती है। ये मल की गांठें मलको और वायुको रोकती है, इससे वायु की ऊर्ध्वगति हो जाती है, परिणामतः उदरशूल, आध्मान आदि कोष्ठगत

लक्षण होते हैं, इतना ही नहीं अपितु इस प्रकार की दूषित वायु के द्वारा मल के सूख जाने पर आन्त्र, हृदय एवं पार्श्व में भी पीड़ा, धड़कन, घबड़ाहट, वायु के ऊपर-नीचे दांये-बांये फिरने पर होते हैं।

एक और कारण ये भी होता है कि गुरुपदार्थ (जैसे बेसन, उड़द, खीर, मावा के पदार्थ) और वायु कारक पदार्थ, जो जिस व्यक्ति के लिये अपथ्य है वो यदि स्वाद के कारण उन्हीं आहारों का सेवन करे तो भी वायु की उत्पत्ति एवं वृद्धि होती है। ये देखा गया है कि जिस मनुष्य की प्रकृति वातल है उसको किसी भी प्रकार वायु के उत्पन्न होने वाले पदार्थ, शीघ्र ही वायु को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, इस प्रकार वायु के निर्माण होने पर दूसरे भागों पर उसका उपद्रव कारी प्रभाव हुये बिना नहीं रहता। जैसे कि—

आमाशयस्थ वायुके लक्षण—आमाशय में वायु-का प्रकोप होनेपर हृदय, नाभि, पार्श्व, और उदर में वेदना होती है। वमन, प्यास, डकार आना, कास, कण्ठ एवं मुख का शोष, श्वास, मोह, मूर्च्छा, विशूचिका, हृद् ग्रह, जकडाहट, ऊर्ध्व गत रक्त पित आदि अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

पक्वाशयस्थ वायु के लक्षण—पक्वाशय में कुपित वायु आंतों में कूजन, नाभि में शूल, मूत्र और पुरीषका कठिनता से निकलना, पेटका वायु से फूल जाना, कोष्ठबद्धता, पार्श्व-पृष्ठ-कटि-जंघा-पिंडलियों आदि में शूल। मल-मूत्र तथा वात का संग आदि उत्पन्न कर देता है। सैद्धान्तिक दृष्टि कोण के साथ ही यदि व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करें तो जिन व्यक्तियों को वायु की हमेशा शिकायत रहती है उनकी प्रकुपित वायु यदि अधोगामी होगी तो विशेष रूप से वायु का सरल होना, पेट का फूलना, चलने में असमर्थता, पेट में दर्द, आदि लक्षण पाये जाते हैं। और वही प्रकुपित वायु यदि ऊर्ध्वगामी होगी तो किसी के आमाशय, पक्वाशय को प्रभावित करेगी जिसके कि लक्षण ऊपर अभी पढ चुके हैं। किसी के पित्ता-शय पर प्रभाव डालकर पित्त की क्रिया को विकृत कर पित्ताशय में भारीपन सा, या शोथ, पेट वा छाती में जलन और अरुचि, बेचैनी, घबराहट का अनुभव होना आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न होंगे।

और किसी के यदि वही प्रकुपित वायु यकृत् पर प्रभाव डालती है, जिससे यकृत् (जिगर) का भारीपन सूजन, तथा यकृत् की क्रिया की अल्पता होकर, सुस्ती, थकावट, शरीर का सूखता जाना, यकृत् के नीचे के भाग में पीड़ा, आदि अनेक लक्षण दिखाई देते हैं। और किसी व्यक्ति के वायु प्रकुपित होकर यदि हृदय पर प्रभाव डालती है तो घबराहट, बेचैनी, पसीना आना, दुर्बलता, श्वास की रुकावट, साथ हृदय की गति का बढ जाना, नाड़ी की गति बढ जाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

किसी रोगी के ऊर्ध्वगामी वायु का मुख पर, जीभ पर भी यदि विकृत प्रभाव पड़ा हो तो खाने में किसी भी चीज का कडवा लगना, फीका लगना एवं अनिच्छा होना आदि लक्षण पाये जाते हैं।

कई व्यक्तियों के आँखों पर भी उसी दूषित वायु का प्रभाव होने पर, आँखों में मलीनता, जलन, आँखों का मिच जाना, आँखों का खिचावट, भारीपन आदि लक्षण उन्हें मालूम पड़ते हैं।

बहुत से दूषित वायु के रोगियों को देखा है जिन को कि शिर पर उसका प्रभाव पडता है, जिससे शिर में सदैव पीडा या वायु के वृद्धि के समय पीडा, शिर में भारीपन तथा गर्मी अनुभव होना, आदि अनेक लक्षण दिखाई देते हैं।

चिकित्सा:—

इस प्रकार कोष्ठ वात की विकृति में हमने देखा कि जिस जिस संस्थान के ऊपर विकृत वायु का प्रभाव पडता है वह उस उस संस्थान में उत्पन्न उपद्रवों के ऊपर ही हमारा ध्यान तुरन्त जाता है। लेकिन चिकित्सा करते समय मुख्य रूप से कोष्ठ वात की ही

चिकित्सा की जाय तो उपरोक्त विविध उपद्रव स्वयं ही शान्त हो सकेंगे।

साधारणतः वायु की शान्ति के लिये बस्तिका प्रयोग करना बड़ा ही उपयोग माना है लेकिन आस्थापन एवं अनुवासन दोनों ही बस्ति इसमें लाभकारी होती है।

(विविध औषध द्रव्यों से सिद्ध किये तैल आदि स्नेह द्रव्यों से जो बस्ति दी जाती है अनुवासन कहते हैं। तथा विविध औषध द्रव्यों के क्वाथ, दूध, तैल, स्नेह, शहद, मूत्र, आदि द्रव पदार्थों से जो बस्ति दिया जाता है उसे निरुह बस्ति या आस्थापन बस्ति कहते हैं)

बस्ति से वायु के संचय के मूल स्थान पक्वाशय में औषध द्रव के पहुँचाने पर सब विकार को निकाल कर वायु को शुद्ध कर देता है।

दूसरी बात यह है कि वायु रुक्ष, लघु, शीत, होता है इसके विपरीत तैल स्निग्ध, गुरु और उष्ण होता है। इसलिये इसके सेवन से भी वायु की शान्ति होती है। इसके अतिरिक्त स्निग्ध, उष्ण, मधुर, अम्ल लवण रस युक्त, मृदु विरेचन, शिवाक्षार, पाचन आदि लाभ कर होते हैं। भोजन भी स्निग्ध उष्ण-मधुर अम्ल-लवण रस युक्त ही करना चाहिये।

औषध चिकित्सामें—हिंग्वष्टक चूर्ण दो माशा, स्वर्जिका क्षार १ माशा की एक मात्रा जल से इस प्रकार दिन में दोनों समय भोजन के बाद रसोनादि वटी, या शंखवटी दिन में ४–६ गोली।

अग्निमांद्य एवं कोष्ठबद्धता में—वडवानल चूर्ण २ माशा, स्वर्जिका क्षार १ माशा-जल से।

हिंग्वष्टक चूर्ण-उग्रगंधा तथा चित्रक वटी, गंधक वटी का प्रयोग भी लाभकारी होता है।

हृदय पर प्रभाव पड़ता हो तो—प्रवाल भस्म और शंख भस्म-श्रृंग भस्म दो-दो रत्ती की मात्रा से मिलाकर दिन में तीन बार शहद से चाटना श्रेष्ठ रहता है।

शिर में प्रभाव होने पर—ग्रन्थी मूल ४ रत्ती, प्रवाल २ रत्ती और गोदन्ती २ रत्ती मिलाकर दी गई। लाभकारी सिद्ध हुई है।

आंखों पर प्रभाव पड़ने पर—अमृता सत्व, प्रवाल पिष्टी, जहर मोहरा पिष्टी दो-दो रत्ती मिलाकर दिन में दो तीन बार शहद से देना लाभदायक है।

यकृद् पर प्रभाव होने पर—यकृदरि मंडूर २ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती मिलाकर या पुनर्नवामंडूर या आरोग्य वर्धिनी में शंख भस्म मिला कर देना लाभकारी पाया गया है।

साधारण प्रयोग—

संजीवनी वटी ४ रत्ती, देव कुसुम चूर्ण २ रत्ती, सैन्धव ४ रत्ती, कृष्णोषण २ रत्ती मिलाकर एक कटोरी पानी में डालकर काढा करके बिना छाने ही पीने से बड़ा ही लाभदायक होता है।

यहाँ इस रोग की चिकित्सा पर विशेष रूप से प्रकाश न डालकर इस लेख को यहीं पर समाप्त कर रहा हूँ।

आयुर्वेद में शस्त्रकर्म

लेखक—वैद्य पं० इन्द्रदेव शास्त्री गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज हैदराबाद द०

क्या आयुर्वेदीय शास्त्रों में शल्य चिकित्सा है या नहीं ? है तो वैद्य समाज इस कर्माभ्यास से अपने आतुरों की चिकित्सा क्यों नहीं करते ? अगर वैद्य महानुभाव इस शल्य चिकित्सा प्रणाली को जानते हैं और अध्ययन कर चुके हैं तो फिर पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली से पीछे क्यों हैं ? उन्हें अपने प्राचीन शल्य क्रिया कर्म पद्धति से परिचित कराकर अपनी क्रिया कर्म की दक्षता का परिचय क्यों नहीं देते ?

इत्यादि प्रश्न अद्यत्वे प्रत्येक व्यक्ति जो पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली के रंग से रंगे हुये हैं और वे लोग जो आयुर्वेद के पक्षपाती एवं घोर निन्दक हैं ये आपत्तियाँ उठाया करते हैं। ताकि आयुर्वेद के पुनरुद्धार को एक गहरी चोट पहुँचाकर उसे सदा पाश्चात्य एलोपेथीय चिकित्सा प्रणाली के समक्ष अपमानित और घृणा की दृष्टि से देखते हुये उन्हें हमेशा अपने से अधःपतन की ओर ही देखना पसन्द करते हैं। किन्तु इसमें भी कोई शक नहीं कि एलोपेथीय चिकित्सा प्रणाली ने विज्ञान की दृष्टि से शल्य कर्म में अपनी दक्षता न बताई हो ?

परन्तु उनके इस बढ़ती हुई प्रगति को देखकर हम आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता एवं वैद्य समुदाय को कदापि शल्य तन्त्र एवं क्रिया कर्म से वंचित रहते हुये अपने आपको सदा अधः पतन की ओर न लेजाना चाहिये। आज का युग विज्ञान का युग है। इसमें प्रगति करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्म है। अतः हम आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के ज्ञाताओं को चाहिये कि इन पाश्चात्य मतावलम्बियों को अपने भी तन्त्र का कुछ ज्ञान प्रदान करा जनता को इससे परिचित करादें। ताकि इस देशी एवं सस्ती चिकित्सा प्रणाली से आतुरों के रोगों का प्रशमन होकर उन्हें जीवनदान मिले ?

यही शल्यकर्म क्या प्राचीन समय में था या नहीं? किन अवस्थाओं में वैद्यवर इस कर्माभ्यास से लाभ उठाकर रोगी को रोग से कैसे मुक्त किया करते थे ? यह सब कुछ प्रारम्भ कर्माभ्यास में किस प्रकार से आया, इत्यादि शल्यतन्त्र का इतिहास उदाहरण सहित यहां देना परमावश्यक है। ताकि इस परमेश्वरीय सृष्टि के प्रत्येक मनुष्य को यह ज्ञात हो जाये कि प्राचीन आयुर्वेदीय शल्यतन्त्र में शल्यकर्म का अन्तर्भाव था। और ऋषिमुनि वैद्यवर इस कर्म को कर्माभ्यास में भी लाते थे ? इस बात की पुष्टि के लिये यह प्रमाण भी मिलते हैं। यथा

> स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेणारुषाऽथ तत्।
> अश्विभ्यां संहितं तस्मात्तौ जातौ यज्ञभागिनौ ॥
> देवा सुर रणे देवा दैत्यर्थे सक्षताः कृताः।
> अक्षतास्ते कृता सद्योः दस्राभ्यामद्भुतं महत् ॥ भाव०

द्वितीय प्रमाण—

एतद्ध्यङ्गप्रथमम् प्रागाभिघातसंरोहात् यज्ञ शिरः सन्धानाच्च। श्रुयते हि यथा—रुद्रेण यज्ञस्य शिरश्छिन्नमिति, ततोदेवा अश्विनावभिगम्यो चुः—भगवन्तौ ? न श्रेष्ठतमौ युवां भविष्यथः भवद्भ्यां यज्ञस्य शिरः सन्धातव्यमिति तावूचतुरेवमस्त्विति। अथ तयोरर्थे देवा इन्द्रयज्ञभागेन प्रासादयन्। ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितमिति ॥ सुश्रुत सूत्र० अ० ३-१७

इसका अभिप्राय यह है कि—प्राचीन समय में जब देवासुर संग्राम हुआ था। तब व्रणोत्पत्ति के संरोहन होने से और यज्ञ का शिर जोड़ने के कारण यह शल्यतन्त्र प्रधान है। जैसे कि परम्परा से जनश्रुति है

कि रुद्र भगवान् ने यज्ञ का शिर काट दिया था। तब देवताओं ने अश्विनी कुमार के पास जाकर कहा कि हे भगवन् आप दोनों यज्ञ का शिर सन्धान करदें। ऐसा करने से आप दोनों श्रेष्ठतम होंगे। हम लोगों के मध्य में पूज्य होंगे। उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया तब देवताओंने यज्ञ भाग के लिये अश्विनी-कुमारों को भी यज्ञ में भाग मिले तदर्थ इन्द्र भगवान् को प्रसन्न किया तब अश्विनी कुमारों ने यज्ञ का शिर जोड़ दिया था। इस प्रकार प्राचीन ऋषिमुनि वैद्यवरों के प्रत्यक्ष प्रमाण हमें आयुर्वेदीय ग्रन्थों में मिलते हैं। सर्व प्रथम शस्त्रकर्म की प्रचलन पद्धति किस प्रकार अग्रसर हुई, शल्य कर्म के प्रधान चिकित्सक कौन थे। शल्यकर्म के बारें में कौनसा ग्रन्थ प्रधान था। शल्य कर्म के लिये कौनसा चिकित्सक योग्य है, कौन नहीं? शल्य किसे कहते हैं-यन्त्र कितने प्रकार के हैं। उनकी रचना आकार प्रकार क्या है। शस्त्रकर्म कितने में विभक्त है। इत्यादि विषयों पर विवेचन करना अत्युक्ति न होगी। जिससे अर्वाचीन मतावलम्बियों को भी यह स्पष्ट विदित हो जावे कि आयुर्वेदीयग्रन्थों में शल्यकर्म कितना प्राचीन एवं कितना उपयुक्त विषय था।

आयुर्वेद के आठ अंगों के बारे में "काय बाल ग्रहोर्ध्वाङ्ग शल्यदंष्ट्राजरावृषान्" इत्यादि श्लोक में एक पृथक् तन्त्र-शल्यतन्त्र का भी निर्माण किया गया है। जिसमें सम्पूर्ण विषय शल्य चिकित्सा सम्बन्धित है। इस प्रकार आयुर्वेद के आठ अङ्गों में से यह भी एक अङ्ग सर्वाधिक मान्य है। जिसे शल्यचिकित्सा या शल्यतन्त्र कहते हैं। सुश्रुत ने भी कहा है—

अष्टस्वपि चायुर्वेदतन्त्रेष्वेतदेवाधिकमभिमतम्, आमाशुक्रिया करणात्। यन्त्र शस्त्र क्षाराग्नि प्रणिधानात्। सर्वतन्त्रसामान्याच्च। तदिदं शाश्वतं पुण्यं स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं वृत्ति करञ्चेति।

सुश्रुत सूत्र० अ० ५॥ १९॥

अर्थात् आयुर्वेद के आठ अङ्गों में शल्यतन्त्र ही सर्वाधिक मान्य है। क्योंकि यन्त्र, शस्त्र, क्षाराग्नि, प्रयोगों में शीघ्र क्रिया होती है। शल्यतन्त्र द्वारा चिकित्सा होने से रोग की निवृत्ति शीघ्र होती है। औषध चिकित्सा में समय बाहुल्य लगता है। आयुर्वेद के शेष अङ्गों के लिये चिकित्सा कार्य में शल्यतन्त्र की उपेक्षा रहती है। चरक ने भी उदर, गुल्म, अर्शादिक रोगों में शल्य चिकित्सक की सहायता का निर्देश किया है। यह शल्य शास्त्र अविनाशी अर्थात् निरन्तर रहने वाला, पुण्यदायक, स्वर्ग देने वाला, मङ्गलकारी, यश का साक्षात् व आयु के लिये हितकारी तथा जीवन का साधन है। इत्यादि वचन शल्यतन्त्र की प्राधान्यता में शास्त्रों में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त शल्यतन्त्र के प्रधान वैद्य और इस शल्य शास्त्र के आदि गुरुदेव भगवान् धन्वन्तरि थे। यह धन्वन्तरि शब्द शल्य शास्त्र के पारङ्गत होने का द्योतक भी है। अतः यह स्पष्ट है कि आयुर्वेद में शल्यशास्त्र की प्रधानता थी। इसके गुरु शिष्य प्रणाली के अनुसार आपके भी अनेकानेक शिष्य थे, जिनमें सब से प्रधान शिष्य सुश्रुत थे। अध्ययनाध्यापन विधि के पश्चात् सुश्रुत जी ने अपनी सुश्रुत संहिता नाम की संहिता का निर्माण किया, जो अब भी आयुर्वेद जगत् में शल्य शालाक्य कर्म की प्रधान पुस्तक मानी गई है। जैसे कि काय चिकित्सा के लिये अग्निवेश कृत चरक संहिता और शल्य चिकित्सा के लिये सुश्रुत संहिता स्वीकृत है। इस प्रकार शल्य शास्त्र के आदि भगवान् धन्वन्तरि थे। और उनकी पुस्तक सुश्रुत संहिता थी। शल्यतन्त्र को अन्य तन्त्रोंकी अपेक्षा सर्वाधिक आदर मिला और काय चिकित्सा में अग्निवेश कृत चरक संहिता को। प्राचीन काल में इन दोनों चिकित्सा प्रणालियों का प्रचलन था। समय बदलता गया, चिकित्सा प्रणालियाँ भी यथावसर चलती रहीं। किन्तु अन्ततो गत्वा बौद्ध काल में यह चिकित्सा कर्म अधोगति को प्राप्त होने लगा। कारण कि शस्त्र कर्म बौद्धमत विरुद्ध था। स्वयं बुद्ध भगवान् ने शस्त्र कर्म करने वाले को तत् तुल्य दण्ड देने का आदेश दिया। इस काल में रस-रसायन का उपयोग अधिकाधिक होने लगा। और शस्त्र कर्म शनैः शनैः वैद्यों

के हाथों से वंचित रहता गया, तभी से यह चिकित्सा प्रणाली पीछे रहती गई। और पाश्चात्य मतावलम्बियों ने हमारे शल्य शालाक्य प्रधान ग्रन्थ सुश्रुत का अध्ययन कर उसमें से गूढ़ गूढ़ तत्वों को लेकर आज के विज्ञान युग में अग्रसर हुआ। संसार के शल्य विज्ञान के इतिहास में सुश्रुत का स्थान अद्वितीय है। अतः प्रत्येक आयुर्वेदीय महाविद्यालयों में इस तन्त्र का ज्ञान कराना अनिवार्य होना चाहिये। और प्रत्येक वैद्य समाज के वैद्य को इस चिकित्सा के क्रिया कर्म से और अपने सर्जरी क्रिया प्रणाली से एवं शास्त्र से वंचित रहना माना जायगा। इस प्रकार इस शास्त्र के प्रवर्त्तक प्रधान ग्रन्थ, चिकित्सा क्रिया काल, और पतन काल का वर्णन संक्षेप में हो चुका, अब शल्य तन्त्र याने क्या इसकी भी व्याख्या करना अनुचित न होगा। सुश्रुत भगवान् कहते हैं? "तन्त्रशल्यं नाम-विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलौह लोष्ठास्थि बालनख पूयास्रावदुष्टव्रान्तर्गर्भ शल्योद्धरणार्थं यन्त्रशस्त्र क्षाराग्नि प्रणिधानार्थं व्रणविनिश्चयार्थञ्च? सूत्र० अध्याय ।।८।।

अर्थात् विविध प्रकार के तृण, काष्ठ, पत्थर, धूलि, लोहधातु, लोष्ठ, हड्डि, बाल, नख, दूषित स्राव, अन्तः शल्य, गर्भ शल्यादि को निकालने के लिए और व्रण विनिश्चय के लिए शल्यशास्त्र है। शस्त्र तथा यन्त्रों का भी सविस्तार से इसमें वर्णन किया गया है। शल्य तथा यन्त्र शब्द के बारे में कहा गया है।

> तत्र मनः शरीराबाधकराणि शल्यानि,
> तेषामाहरणोपायो यन्त्राणि?

और भी शल्य का लक्षण सुश्रुत सूत्र० अ० २६ में लिखा है [सर्व शरीराबाधकरं शल्यं] जो शल्य शरीर में प्रवेश करने के बाद सम्पूर्ण शरीर को व्यथित करे वह शल्य है। दूसरे अर्थ में जो शरीर और साथ में मनको भी व्यथित करे वह शल्य है। यह शल्य का प्रधान लक्षण है। इस शल्य को निकालने के लिए जिन उपकरणोंकी आवश्यकता होती है उसका नाम यन्त्र है। इसके बाद अब शस्त्रकर्म के लिए योग्य वैद्य का लक्षण और अयोग्य वैद्य का लक्षण भी शास्त्रों में सविस्तार स दिया गया है। शस्त्र कर्मके बारे में आगे भी सुश्रुत ने विवेचन के साथ पर्याप्त वर्णन किया है। सुश्रुत ने शस्त्र कर्म के लिए योग्य वैद्य का लक्षण लिखते हुए कहा है—

> शौर्यमाशुक्रिया शस्त्र तैक्ष्ण्यमस्वेदवेपथु ।
> असम्मोहश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्मणि शस्यते ॥
> ॥ सु० सू० अ० ५।१० ॥

शस्त्रकर्म में वैद्य में शौर्य, क्रिया कर्म में आशुकारी, लघुहस्त (चतुर), पसीना कम आना, घबराहट का न होना, असम्मूढ़, तीक्ष्ण शस्त्र युक्त, ऐसा वैद्य शस्त्र कर्मार्थ प्रशस्त माना गया है। इसी प्रकार अप्रशस्त वैद्य के बारे में भी कहा है कि जो वैद्य स्नेहादि कार्यों से तथा शल्यतन्त्र से अनभिज्ञ हैं. वे लोभवशमनुष्य को मार डालते हैं। वह वध के योग्य है। राज्य शासन के अनुकूल ही चिकित्साकर्म करना चाहिये। अतः ऐसे वैद्य शस्त्रकर्म के बारे में अयोग्य माने गये हैं शल्य शब्द "शल" "श्वल" आशुगमने धातु से सिद्ध होता है। जिसका अर्थ शीघ्र गमन में प्रयुक्त होता है। यह शल्य शारीर और आगन्तुक भेद से दो प्रकार का होता है। शारीरिक शल्य वो कहाते हैं जो लोम, नख, श्मश्रु आदि रसादि धातु अन्नमल, पुरीष, कर्णमलादि दूषित वातादि दोष कहाते हैं। आगन्तुक शल्य जितने भी पदार्थ तृण, काष्ठ, पाषाण, लोहादि, दुःख उत्पन्न करने वाले हैं वे सब आगन्तुक शल्य हैं।

इसी प्रकार शस्त्र कर्म के बारे में लिखते हुये शस्त्र कर्म तीन प्रकार का माना गया है।

(१) पूर्वकर्म शस्त्रावचारण से पूर्वका कर्म, (२) प्रधान कर्म शस्त्र कर्म (Opretion) (३) पश्चात् कर्म जो शस्त्रावचारण के बाद किया जाता है।

(१) पूर्वकर्म में शोधन कर्म कराया जाता है, यह शोधन दो प्रकार का है। i स्थानीय शोधन ii सार्वदैहिक शोधन।

(i) स्थानीय शोधन—इस क्रिया में स्थानीय धावन किया जाता है। इसके लिये त्रिफला कषाय निम्बादि कषायों का उपयोग किया जाता है।

(ii) सार्वदेहिक शोधन—इसके लिये आतुर को स्थानीय शोधन से १ दिन पूर्व ही विरेचनादि पंच कर्म कराया जाता है। इन विधियों से रोगी को पूर्व भली प्रकार शुद्ध कर लिया जाता है। इसके बाद जो प्रधान कर्म है वह किया जाता है। यह शस्त्रकर्म आठ प्रकार का होता है।

(१) छेद्यं—यह छेदन कर्म भगन्दर, अर्श, अर्बुद, गल शुण्डिका, अधिमांस आदि रोगों में किया जाता था। इसमें अधिकतः चीर फाड़ का कर्म चाकू सदृश्य शस्त्रों से किया जाता था।

(२) भेद्यं—यह भेदन कर्म विद्रधि, वृद्धि, स्तनविद्रधि प्रमेहपिड़िका, व्रणशोथ, मुख रोगादि में किया जाता था। इसमें अधिकतः वृेतसपत्र और व्रीहिमुख शस्त्रका प्रयोग किया जाता था। जिसे अंग्रेजी में (Scalpel) कहते हैं।

(३) लेख्यं—यह लेखन कर्म जिसे खुरचना कहते हैं, यह किलास, रक्तजन्य रोहिणी, उपजिह्विका, दुष्ट व्रणादि में किया जाता था। इसमें मण्डलाग्र शस्त्र और वृद्धि पत्र शस्त्र का प्रयोग किया जाता था।

(४) वेध्यं—इस क्रिया कर्म में मूत्र वृद्धि, जलोदर, नाड़ीव्रण और शल्ययुक्त व्रणोंमें शलाका यन्त्रों एवं, जलोदर यन्त्र द्वारा एषण कर्म किया जाता था।

(५) ऐष्यं—इस क्रिया कर्म में नाड़ी व्रण तथा विद्रधि आदि रोगों की गहराई का ज्ञान शलाका यन्त्रों से किया जाता था।

(६) आहार्यम्—इस क्रिया कर्म में शल्य का निहरण तथा मूढ़गर्भादि को बाहार निकाला जाता था। जिसमें गर्भशङ्कुयन्त्र एवं दर्व्याकृति शलाका यन्त्रों का प्रयोग किया जाता था।

(७) विस्राव्यं—इस क्रिया कर्मको कुशपत्रशस्त्र के द्वारा लसीका, दूषितरक्त, पूयादि का स्राव किया जाता था।

(८) सिव्यं—यह क्रिया कर्म सूची शस्त्र से व्रणों और छिद्रादियों को सीने के प्रयोग में किया जाता था। इसमें बारीक धागे से बल्कल से या रेशम से, स्नायु, और घोड़े के बालों से सीव्य कर्म किया जाता था। इस प्रकार यह शस्त्रकर्म ८ प्रकार का है। जो प्राचीन समय में सभी वैद्य इन शस्त्रों से ये कर्म करके रोगीको रोग से मुक्त किया करते थे। अद्यत्वे भी यह क्रिया कर्म किन्हीं-किन्हीं वैद्यों के हस्तगत रह गया है।

इस शस्त्र कर्म के पूर्व निम्न वस्तुयें पूर्व ही उपस्थित रखी जाती हैं। यथा—यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, क्षार, शलाका, शृंग, जोंक, अलाबु, जाम्बौष्ठ यन्त्र, रूई, वस्त्र, पट्टी, शहद, घी, वसा, दूध, तैलक्वाथ, आलेपन, पंखा, लौहपात्र और बलवान् परिचारक भी होना चाहिए। जिन शस्त्रों से यह शस्त्र कर्म किया जाता है वे शस्त्र वाग्भटमतानुसार २६ हैं। और सुश्रुतमतानुसार २० हैं। इन शस्त्र यन्त्रादि के निर्माण तथा आकार का वर्णन करते हुये सुश्रुत ने लिखा है—

समाहितानि यन्त्राणि खरश्लक्ष्ण मुखानि च।
सुदृढ़ानि सुरूपाणि सुग्रहाणि च कारयेत् ॥
(सु० शा०)

अर्थात्—यन्त्रप्रमाणानुसार नातिस्थूलदीर्घ आवश्यकतानुसार कोई खुरदरे, कोई मुलायम, अत्यन्त मजबूत, सुन्दर तथा जिन्हें हाथ में अच्छी प्रकार पकड़ सकें ऐसे होने चाहिये। इस प्रकार यन्त्रादि के सम्बन्ध साफ-साफ लिखा हमें प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है इसके अतिरिक्त इसके "उत्पाटयपाट्यसीव्यैष्य" इत्यादि शस्त्रों के कर्म, उनके दोषों का वर्णन भी मिलता है। इस (प्रधान कर्म) शस्त्र कर्म के पश्चात् (२) पश्चात् कर्म किया जाता है। इसमें व्रण शोधन रोपणादि चिकित्सा विशेष क्रियायें की जाती हैं। व्रण चिकित्सा में यथा—पिचु, कवलिका, पट मरहम, रेशम वस्त्र की पट्टी, प्रियङ्गु, रसाञ्जन, लोध्र, इनका चूर्ण, रेशम की भस्म, व्रण के चारों ओर प्रतिसारणार्थ व्रणों पर यह सब क्रिया कर्म करके यथा विधि पट्टी बांधना चाहिये, इस के बाद रोगानुसार यथोक्त विधिवत् आहार विहार बना देना चाहिये। यही पश्चात् कर्म कहा जाता है। इस प्रकार प्राचीन समय में शस्त्र कर्म इस प्रणाली से किया

(शेष पृष्ठ ३२ पर देखें)

शारीरिक उन्नति कैसे की जाय ?

लेखक—श्री हरिसिंह राठौड

'स्वास्थ्य' मासिक पत्रिका के पाठकों को इस विषय में ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। कि शारीरिक उन्नति कैसे करना चाहिये ? क्यों करनी चाहिये ? तथा व्यायाम और योग साधन किसे करना चाहिये ? और कब करना चाहिये ? इसके करने से लाभ क्या होगा ?

व्यायाम करने वालों के मन में कई प्रश्न उठा करते हैं, जिनका उत्तर उन्हें ठीक न मिलने पर उनके दिल में ही रह जाती है। उनके प्रश्नों के उत्तर हम यहाँ लिखते हैं। व्यायाम करने की इच्छा वाले लोग लाभ उठावें।

(१) सर्व प्रथम मनुष्य को प्रातः काल सूर्योदय से १-२ घण्टे पहले उठकर (टट्टी) याने मल-मूत्र त्याग करना चाहिये फिर नीम (या बबूल) की दातून से दाँतों को साफ करके निबट जाना चाहिये।

(२) फिर लंगोट को पहने और लंगोट कसकर नहीं बांधना चाहिये। लंगोट के पट्टे से मूत्रेन्द्रिय पर दबाव नहीं डालना चाहिये। तथा बिना लंगोट बांधे कसरत नहीं करना चाहिये। लंगोट बांधने से (अंडकोष) ढीले नहीं पड़ते (सिर्फ व्यायाम करते समय)।

(३) व्यायाम जब भी किया जाय या कुश्ती लड़ने में लंगोट बांधना न भूलें तथा व्यायाम प्रातः सूर्योदय के पहले कर लेना चाहिये। क्योंकि व्यायाम प्रातः काल करने से वायु भी शुद्ध मिलेगी और समय भी ठंडक रहेगा। तथा दिन होते ही वायु दूषित होने लगती है। और गरम भी हो जाती है। व्यायाम खुली शुद्ध वायु में करना चाहिये और व्यायाम करते समय आपको कोई स्त्री या पुरुष न देखे वर्ना ध्यान व्यायाम करने में नहीं लगेगा। व्यायाम एकान्त स्थान में, शुद्ध वायु व साफ जगह करना चाहिये।

(४) व्यायाम या प्राणायाम जब भी किया जाय तो खूब लम्बी साँस धीरे-धीरे अपने शरीर फेफड़े में खींचे और वायु खींचते समय मन की भावना इस प्रकार से हो कि मैं मेरे शरीर में अमृत ले रहा हूँ और कुछ देर तक वायु को रोक कर धीरे-धीरे बाहर निकाल दें निकालते समय यह मन में भावना उत्पन्न करे कि मेरे शरीर में जितनी विषैली प्रदार्थ या कीटाणु वायु के रूप में निकल रहे हैं। लेकिन वायु हमेशा नाक से लेना चाहिये और नाक से या मुँह से निकाल देना चाहिये। तथा अपने मन को बाहरी वातावरण से हटाकर अपने में एकत्रित करें। मन एकत्रित करने से प्रत्येक कार्य शीघ्रही पूर्ण होजाते हैं।

(५) व्यायाम करते समय आप अपने शरीर के उस भाग को देखो जो कि कमजोर है। और व्यायाम करते समय उसी भाग का मनन करना चाहिये कि मेरा अमुक अंग दृढ़ बलवान हो रहा है। सुडोल, सुन्दर और माँस पेशियाँ बन रही हैं। व्यायाम करें तो नित्य प्रति-दिन करें ये नहीं कि २-४ दिन किया फिर छुट्टी करदी या फुरसत मिली तो दो चार उछल कूद मचा दिया और फिर छुट्टी। ऐसा करने से लाभ के बजाय हानि ही होगी इसलिये प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिये। शुरू में व्यायाम करने से शरीर व वजन घटेगा फिर बाद में बनना शुरू होगा। इससे पाठकों को निराश न होना चाहिये। व्यायाम अपनी शक्ति अनुसार करनी चाहिये। शक्ति के अलावा किया तो हानि होगी।

(६) व्यायाम करने के बाद कुछ चिकने तथा पौष्टिक पदार्थ खाना चाहिये। व्यायाम अधिक करके कम पौष्टिक पदार्थ व्यवहार में लिया तो हानि होगी। इसलिये जितना व्यायाम किया जाय उतना या उससे अधिक ही चिकना तथा पौष्टिक पदार्थ या दूध खाना पीना चाहिये। दूध जब भी पीया जाय तो खड़े होकर।

(७) व्यायाम बीमार या निर्बल मनुष्यों को नहीं करना चाहिये नहीं तो लाभ के बजाय हानि होगी।

(८) व्यायाम करके १ या २ घण्टे बाद स्नान करना चाहिये इससे आलस्य दूर होजाता है। अगर

होगा या स्नान के १ या १½ घण्टे बाद व्यायाम किया जाय तो ठीक होगा।

(९) व्यायाम प्रातः काल सूर्योदय के पहले करना चाहिये और सायं काल सूर्यास्त के पहले करना चाहिये। गर्मियों के मौसम में व्यायाम प्रातः काल सूर्योदय के पहले ही कर लेना चाहिये। व्यायाम करते समय अगर थकावट, पसीना आता हो तो थोड़ी देर के लिये रोक देना चाहिये फिर शुरू करदें। व्यायाम कर चुकने पर शीघ्र ही लंगोट नहीं खोलना चाहिये बल्कि १ या १½ घण्टे बाद खोलना चाहिये। व्यायाम ठंडी वायु या खुली हवा में करके एक दम गरम हवा में नहीं आना चाहिये। सर्दियों में सूर्योदय के पहले और सायं काल सूर्यास्त के पहले ही कर लेना चाहिये। व्यायाम करने के बाद उसी दम लेट जाना, बैठ जाना या खड़े रहना ठीक नहीं। बल्कि कुछ देर तक शुद्ध स्थान, शीतल मंद वायु में टहलना चाहिये।

(१०) व्यायाम जब भी किया जाय तो हमेशा खाली पेट ही करना चाहिये। खाना खाकर उसी दम व्यायाम नहीं करना चाहिये। बल्कि ४ या ५ घण्टे बाद जब कि खाना पूरी तरह पच जाय और आप मल-मूत्र त्याग कर व्यायाम करें तो अधिक अच्छा होगा।

(११) शरीर में रुखापन मालूम हो तो कड़वे तेल की मालिश करनी चाहिये। जहाँ तक हो तो शरीर की मालिश हल्के हाथ से हो जोर लगा कर नहीं। मालिश सर्दियों में करनी चाहिये और १ या १½ घण्टे बाद स्नान कर लेना चाहिये। गर्मियों में कम मालिश करना चाहिये और कम से कम दो समय सुबह और सायं को अवश्य स्नान करना चाहिये। ताकि शरीर में जितने सूक्ष्म छिद्र बन्द हो गये हों वह स्नान से खुल जायें। और शरीर हल्का हो जाता है।

(१२) कोई सा भी व्यायाम या आसन तथा प्रणायाम करो तो नाक से साँस धीरे-धीरे अन्दर [illegible] धीरे-धीरे साँस को नाक द्वारा या मुख द्वारा निकाल देना चाहिये। ऐसा करने से या प्राणायाम करने से जीवन शक्ति बढ़ेगी। एक व्यायाम कर चुकने पर थोड़ी देर के लिये (याने एक या दो मिनट का विश्राम) या रुककर थकावट को दूर अवश्य करना चाहिये। सदा विचार अच्छे हों। प्रत्येक व्यायाम के बाद १ या २ मिनट का आराम लेना चाहिए।

(१३) व्यायाम शील व्यक्ति को रात्रि को कम से कम ९ या १० बजे सो जाना चाहिये और प्रातः ४ या ५ बजे उठ जाना चाहिये और अगर पढ़ने लिखने का काम हो तो रोशनी आंखों के सामने से नहीं आनी चाहिये बल्कि पीछे या दांये बांये से आती हो। अधिक बारीक अक्षर वाली लिखावट नहीं पढ़ना चाहिये तथा पढ़ने व लिखने वाली वस्तु आंखों से एक फुट की दूरी पर रहना चाहिये।

(१४) भोजन खाया जाय तो खूब चबाकर खाना चाहिये ताकि जल्दी हजम हो जाय और भोजन करते समय प्यास लगने पर ३ या ४ घोंट पानी पीना चाहिये। या भोजन कर चुकने पर ५ या १० मिनट बाद पानी पीना चाहिये और ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करे। अपने मन में विचार अच्छे ही सोचना चाहिये बुरी संगत में न रहना चाहिये।

(१५) व्यायाम शील व्यक्ति को नशीली वस्तु प्रयोग में नहीं लानी चाहिये। जैसे देशी और विदेशी शराब, अफीम, चरस, गांजा, भांग, चाय, पान, बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, पाइप, सिगार और तम्बाकू तथा जुआरियों से बचना चाहिये।

(१६) भोजन में खाद्यप्राण अधिकतर हरी तरकारी (साग) व दाल तथा बिना छने आटे की रोटी। तथा बाद में मांस मछली अण्डा वगैरह प्रयोग में लें।

(१७) व्यायाम करने वाले स्थान में नामी पहलवानों के चित्र लगे होने चाहिये और उन्हीं चित्रों को देखकर मनमें दृढ़ संकल्प करलो कि मुझे इससे भी अधिक सुन्दर, युवा, सुडोल, बलवान बनना है।

[illegible] अपने शरीर को देखने के लिये एक बड़ा

सा (शीशा) आईना होना चाहिये तथा उसमें देखें और भावना यह करें कि मैं अजर, अमर, निरोग, ताकतवर, पहलवान बनूं, वीर्यवान होऊं, मेरी उम्र १०० साल की हो, मेरा रंग गोरा हो, मेरे बाल काले हों, मेरी आंखों की रोशनी बढ़े, मेरे गाल लाल गुलाबी हो रहे हैं तथा मेरा प्रत्येक अङ्ग दृढ़ बलवान पुष्ट बन रहा है। यह प्रत्येक कसरत (व्यायाम) करते समय मन में दृढ़ संकल्प से मनन करें।

(१९) रोजाना सोते समय एक मुट्ठी काबुली या हिन्दुस्थानी चना पानी में भिगो दें और व्यायाम समाप्त करके चने को खूब चबाकर खाय और थोड़ा सा दूध पी लें। ऐसा करने से शरीर में बल आयगा ताकत बनी रहेगी। रक्त को साफ करेगा। रंग गोरा होगा। मौसम के मुताबिक फलों को भी खाया जाय तो वह भी अधिक अच्छा रहेगा।

(२०) वस्त्र साफ सुथरे रहने चाहिये। सादा कपड़ा पहनना चाहिये। शरीर की सफाई नाखून काटते रहना चाहिये। बालों को सम्हालते रहना चाहिये। कईयों की आदत होती है कि नाक, मुंह, कान में हर दम उंगलियां डाले रहते हैं अच्छा नहीं है आदत छोड़ देनी चाहिये। व्यायाम करने वाली जगह साफ रहना चाहियें। तथा व्यायाम करते समय साँस जल्दी-जल्दी नहीं लेनी चाहिये बल्कि धीरे-धीरे। लंगोट बांधकर शरीर के सारे कपड़े उतार देना चाहिये।

आपको अब कुछ कसरतों की विधियां बताते हैं।

कसरतों में प्रधान डंड-बैठक-मुगदर हिलाना, आसनों में शीर्षासन, पद्मासन, मयूरासन हैं।

(१) गरदन की कसरत—लंगोट बांधकर आईने के सामने खड़ा होकर तैयार रहें। याने बिल्कुल सीधा खड़ा हो जाय और धीरे-धीरे साँस खींचे तथा वायु को सीने में रोककर सिर को दांये, बांये, नीचे, ऊपर धीरे-धीरे करता हुआ सामने आईने में देखें और साँस को धीरे-धीरे बाहर नाक द्वारा निकाल दें शुरु में कम करें फिर धीरे-धीरे बढ़ाता जाय और जितने दफा करें साँस भी उतनी ही दफा अन्दर खींचे और बाहर निकाल दें। फिर गरदन को थोड़ा मसल देना चाहिये ताकि आराम पहुँच जाय। गरदन को आईने में देखते हुए मन में भावना यही रहे या सोचे कि मेरी गरदन दृढ़ बलवान बन रही है, गरदन की माँस पेशियाँ बन रही हैं तथा ठोस, सुडोल, सुन्दर, और मजबूत बन रही है। मैं अजर, अमर, निरोग हो रहा हूँ। इस कसरत के करने से गरदन दृढ़ बलवान होती है।

(२) भुजदण्ड तथा कलाई याने हाथ की कसरत—आईने के सामने सीधा खड़ा होकर और धीरे-धीरे साँस खींच कर रोकलें और हाथ की मुट्ठी कसकर बांधलें और जोर देते हुए दोनों हाथों को सामने लेजाय और कुहनी पर से मोड़ता हुआ मुट्ठी को कंधे तक लायें हाथ की पीठी ऊपर की ओर रहे और मुट्ठी कंधे तक लाने में उंगलियाँ नीचे हो जायगी। फिर धीरे-धीरे मुट्ठी को कुहनियों से सीधा करता हुआ तथा जोर देता हुआ सामने करता हुआ नीचे को हाथ सीधा, कमर से दायें, बायें, कर देना चाहिये और साँस भी धीरे-धीरे बाहर निकाल देना चाहिये। जितनी दफा हो सके उतनी दफा करें और जितनी दफा करें उतनी ही दफा साँस भी खींचे और बाहर निकालें। हाथ की कसरत कई तरह से कर सकते हो। जैसे मुगदर से सामने हाथ करने के बजाय आजू-बाजू से डम्बल से या किसी झूले पर लटक कर, रिंग खींचकर आदि-आदि हाथ की कसरत करने से बाँहें दृढ़ बलवान होती है कलाई गोल सुडोल बनती है और हाथ याने बाँह की माँस पेशियाँ तैयार होती हैं। कसरत करने के बाद हाथ की कलाई बाँह को धीरे-धीरे मसलना चाहिये ताकि आराम पहुँचे। और मन में यही भावना बनाये रहे कि मेरी कलाई गोल हो रही है बाँहों की माँस पेशियाँ मोटी दृढ़ बलवान बन रही है। और फिर वही अजर, अमर, निरोग, ताकतवर, हो रहा हूँ मन में यह भावना हर समय प्रत्येक कसरत करते समय सोचना चाहिये।

(३) हाथ की उंगली, कलाई, बांह, सीना की कसरत—'दण्ड' लगाना सभी

जानते हैं और लगाते भी हैं परन्तु उनसे लाभ कम होता है। जिस दण्ड की विधी यहां लिख रहे हैं उनसे हाथ की उंगली, कलाई, बांह पर ही बल पहुँचता है और सीना आगे निकलता है, फेफड़े मजबूत होते हैं। दन्ड लगाने के लिये तैयार हो जाओ पैरों के पंजे १½ या २ फुट ऊंची मेज पर जमा दो और सारे शरीर का भार हाथ के पंजे पर डाल दो और एक आईना दोनों हाथों के बीच होना चाहिये। ताकि चेहरा या शरीर का कुछ भाग दिखता हो और धीरे से सांस खींचकर रोक ले और आगे पीछे न हिले डुले बल्कि धीरे-धीरे हाथों और पंजों के बल शरीर को सीधा पृथ्वी की तरफ नीचा लाओ जब कि शरीर उंगलियों के बल पृथ्वी या आईने से तीन चार इञ्च ऊपर रहे तो जिस तरह धीरे-धीरे नीचे आये थे उसी तरह धीरे-धीरे ऊपर की तरफ उठिए और सांस को भी धीरे धीरे बाहर निकाल दीजिये। इस तरह जितना हो सके उतना करें और उतनी ही बार सांस को भी लेना और बाहर निकालना चाहिये और अपने मनकी भावना ऐसी बनाना चाहिये कि इस कसरत से मेरी उंगलियां मजबूत बन रही है। कलाई गोल सुडोल सुन्दर बन रहा है और बांहों की मांस पेशियां बन रही हैं, मेरा सीना आगे निकल रहा है, फेफड़े दृढ़ बन रहे हैं, बाल काले हो रहे हैं। मेरा खून साफ हो रहा है। मेरी आंखों की ज्योति बढ़ रही है। मैं अजर, अमर, निरोग, पहलवान, ताकतवर, सुन्दर, सुडोल हो रहा हूँ। इस कसरत की खासियत यह है कि साधारण १०० दन्ड और यह ५ ही दन्ड काफी है। खड़ा होकर जिस भाग पर जोर पड़ा हो उस भाग को धीरे-धीरे मसलना चाहिये ताकि आराम पहुँच जाय।

कमर, पीठ, पेट, सीना, जांघ तथा रीढ़ की हड्डियों की कसरत--इस कसरत से सीना आगे निकलता है, रीढ़ की हड्डियां मजबूत बनती है। पेट की जठराग्नि प्रदीप्त होती है शरीर लचीला होता है। इस कसरत को कई तरह से कर सकते हैं।

(१) विधि-- [illegible]

जमीन पर सीधे चित लेटकर हाथ पैर के पंजों को जमा देना चाहिये और सांस खीच कर रोक ले और कमर को ऊपर की ओर उठाए और दोनों हाथ पैर को पास-पास लाने की कोशिश करनी चाहिये। शरीर बिल्कुल चक्र की तरह या धनुष की तरह हो जायगा। फिर कमर को नीचे ले आये और साँस बाहर निकाल दे। इसको खड़े होकर भी कर सकते हैं।

(२) विधि--पाद-हस्तासन या बिडालासन अथवा पश्चिमोत्तानासन करने की विधि।

पाद-हस्तासन या बिडालासन--सीधे खड़े होकर सांस खींचकर रोक लो और फिर कमर के पास से शरीर को सामने की तरफ झुकाकर दोनों हाथों की उंगलियों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़लें और सिर को झुककर घुटनों तक ले जायें और मुंह तथा नाक से घुटनों को छूओ और फिर धीरे-धीरे सीधे खड़े हो जाओ और सांस बाहर निकाल दो। इस तरह से बार-बार करो।

(३) पश्चिमोत्तानासन या त्रिकोणासन--पृथ्वी पर सीधे बैठ जाओ पैर सीधी सामने की ओर फैली रहे और पृथ्वी से सटा दो इस तरह बैठने से ठीक ९०° का कोण बन जायगा। दो चार सेकिन्ड रहने के बाद सिर को झुकाकर घुटनों की ओर ले जाइए और दोनों हाथ की उंगलियों से पैर के अंगूठे को पकड़ लो लेकिन सांस लेना न भूलें और सांस रोके रहे तथा पैरों को भी जमीन से ऊपर न उठने दें। इसे त्रिकोणासन कहते हैं इसी आसन से बैठे हुए सिर को घुटनों तक झुका दो तो यह पश्चिमोत्तानासन हो जायगा। शुरू में कठिनाई पड़ेगी फिर अभ्यास हो जायगा। फिर सीधे होकर धीरे-धीरे सांस बाहर निकाल दो। मन में भावना करे कि जठराग्नि प्रदीप्त हो रही है मैं अजर, अमर, निरोग, बलवान हो रहा हूँ। इन आसनों से पेट, सीना और जांघों की कसरत होती है। उदर भी बलवान होता है। तथा तमाम रोग से मुक्त हो जाते हैं। पेट की मोटाई नाश होकर दुर्बलता आती है। (यह कसरत उन्हीं [illegible] हो सके। (क्रमशः)

कन्याओं को आयुर्वेदीय शिक्षा

(लेखक—श्रीनिवासदासजी पोद्दार)

दिनाङ्क ३-७-१९५७ में हरिद्वार में कन्याओं को आयुर्वेद शिक्षा का समाचार पढ़कर हर्ष हुआ। संस्कृत शिक्षा प्राप्त कन्यायें तो आयुर्वेद का उत्तम दर्जे का ज्ञान शीघ्र प्राप्त कर सकती हैं फिर नारी हृदय कोमल दयावान प्रेमालु होता है। पुरुष से नारी इलाज और सेवा करने में अवश्य दक्ष होगी। इन्हें भारतीय महिलाओं द्वारा विशेष लाभ होगा। जितना प्रोत्साहन दिया जाये थोड़ा ही है।

एक बात अवश्य विचारणीय है। पुरुष स्त्रियां नर से अधिक है परन्तु डाकघरों में पुरुष अधिक, महिलाएं बहुत कम है। वैद्यों में, हकीमों में भी पुरुष अधिक, महिलाएं बहुत कम है इसका क्या कारण है। कोई विद्वान प्रकाश डालें और खास तौर विधवाओं को यह शिक्षण मिले वे घर-घर ग्राम-ग्रामजाकर आयुर्वेद शिक्षण करे तो जनता की सेवा भी होगी। गरीब नारियों को इज्जत पूर्वक अपना भरण, पोषण करने का मार्ग खुल जावेगा। श्री लक्ष्मीपति जी सिंघिनियों ने फरमाया था कि विदेश में ऐसे खास होटल हैं जिनमें डाक्टर लोग बिमारों का निदान कर के लिख देते इन का एक हफ्ते में इतना वजन कम होना चाहिये। या अधिक होना चाहिये। तो वे रोगी को भूखा न रख कर सुस्वादु भोजन देते हैं. परन्तु हफ्ते में उतना पौंड वजन कम कर देते हैं। भोजन भी यथेष्ट मनोनुकूल खाद्य पदार्थ देकर वजन घटाने का कार्य अवश्य आयुर्वेदीय परिज्ञान बिना असंभव है। गंभीर विचार किया जाये। अन्नादि दालादि, फलादि, आलु, जमीकंदादि, फूल पत्ते, डंठलादि बनौषधियों का और लवणादि मसालों के शरीर और स्वास्थ्य पर क्या कैसा असर होता है किस मौसम और रहन-सहन की परिस्थिति शारीरिक स्वास्थ्य की हालत दुग्ध, दही, छाछ और घृतादि का क्या असर होता है। कैसा भोजन देना चाहिये भिन्न-भिन्न रुचि के अनुकूल कैसा भोजन होगा तो मैं समझता हूं कि प्रतिशत ७५,८० बीमारीयाँ तो भोजन व्यवस्था ठीक होने से नष्ट हो सकती है यह ज्ञान विदुषी महिलाओं को करवाया जाये तो वे देश में प्रचार कर गरीब जनता का कितना बड़ा उपकार कर सकती हैं। शहर वाले जिह्वा के रस के लिये चटपटा भोजन का आदि के कारण मरते हैं। परन्तु ग्रामीणों का तो स्वभावतः सादा भोजन है ही। उन्हें कभी भोज्य पदार्थों के गुण अवगुण मालूम थे। परन्तु आज की सभ्यता के लिये वे बड़े कारखानों में नौकरी प्रलोभन से आकर रातदिन लोहादि निर्मित मशीनों के संग वे भी ज्ञान खो बैठे। जड़वत् मशीन के पुर्जे बनकर दिन भर जड़वत कार्य कर थके मांदे निकलते हैं। शराब आदि पतनकारी ही कोई रत ही जीवन व्यतीत करते हैं। आज भी ग्रामों में बनौषधियों से कोई ऐसी चिकित्सा कर देते हैं जिस को देखकर डाक्टर, वैद्य, हकीम, सब नत मस्तिष्क हो जाते हैं। श्री गोवर्धन मठाधिपति श्री भारतीय कृष्णजी महाराज ने अपने भाषण में कहा था कि मैं जब एम० ए० क्लास में पान चबा रहा था तो हमारे जर्मनी के प्रोफेसर ने कहा। यह भ्रष्ट चीज को क्यों चबा रहे हो। मैंने उनका हुकुम मानकर मुंह साफ कर क्लास का कार्य किया बाद में उनके निवास स्थान पर जाकर पूछा कि पान भारत भर में लोग खाते हैं। आपने इसे Norty क्यों बताया। वे कहने लगे। वह मेरी भूल थी। पान के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। मैं तुम्हें तलाश कर के बताऊंगा। उसके २,३ वर्ष बाद वे जर्मनी गये। वहां से लिखा कि Norty कहना मेरी भूल थी। भोजन के बाद एक या दो पान खाने से अनेक लाभ हैं। परन्तु पान के ऊपर उभरी हुई जो नसें हैं वह चक्कू से साफ कर देनी चाहिये। नहीं तो उनमें कीटाणु घुसकर स्वास्थ्य के लिये हानि प्रद

होते हैं। श्री स्वामीजी ने कहा कि यू० पी० प्रान्त की खत्री जाति की स्त्रियां पान लगाने के पूर्व यह नसें चाकू से साफ कर देती हैं। यह यदि नहीं जानती कि ऐसा क्यों करती हैं तो जानने वाली महिला का पदानुसरण तो करती हैं।

नवीन बुद्धि वादियों के चक्कर में बी० ए०, एम० ए०, स्त्रियां एक रोज भोजन बनाकर न स्वयं पेट भर सकती है न पति पुत्रादि को पेट भर उन्हें मनोनुकूल भोजन बना कर दे सकती हैं। अनेक तो भोजन बनाना नहीं जानती होंगी। भारतीय परम्परा के कारण यदि जानती हो तो भोजन बनाते हुये हाथ पांव जला लेगी या झुंझलाकर बर्तन ही तोड़ देंगी। अतः क्या ही अच्छा हो कि आयुर्वेद के साथ भोजन विज्ञान का शिक्षण ही साथ में इष्ट साधन हो तो उनके बनाये भोजन अमृत का कार्य कर सकेगी। वे वहनीय महिला प्रत्यक्ष मातृ रूपी देवी होकर विश्व रक्षा करेगी। वे आपको सर्वथा गोवध बन्द करने के लिये बाध्य कर सकेगी। आशा है स्त्री शिक्षालय ध्यान देगें।

— आयुर्वेद में शास्त्र कर्म —

(पृष्ठ २६ का शेष)

जाता था। इसके अतिरिक्त जलौकावचरण, अग्निकर्म, क्षार कर्म आदि चिकित्सा विशेष भी करी जाती थी। जो आजकल भी प्रचलित है। बहुत से ऐसे वैद्य हैं जो जलौकावचरण अग्निकर्म, क्षारकर्मादि क्रियायें करते हैं। किन्तु कुछ एक वैद्य महानुभाव भी ऐसे हैं जो प्रतिदिन बहुत बड़े स्वर से कहते हैं कि आयुर्वेद शास्त्र पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र के बढ़ते हुये विज्ञान के प्रवाह में एक क्षण भी उपस्थित रहने में असमर्थ है। जैसे पाश्चात्य चिकित्सा की बढ़ती हुई आश्चर्य जनक शल्य चिकित्सा की उन्नति जैसे परदेशों में सम्पादित की है, और प्रचलित है। किन्तु उन बुद्ध्यन्ध वैद्यों ने और जो पाश्चात्य चिकित्सा के सुहावने रूप रंग के बोतलों पर लगे लेबलों को देखकर चलने वाले पुतले हैं ऐसा न तो मेरा ख्याल है कि इन आयुर्वेदीय सूत्रों को कभी नहीं देखा होगा ?

सर्वशस्त्रानुशस्त्राणां क्षारः श्रेष्ठः बहूनियत्।
छेद्यभेद्यादि कर्माणि कुरुते विषमेष्वपि ॥१॥
दुःखावचार्यं शस्त्रेषु तेनसिद्धिमयात्सु च।
अतिकृच्छ्रेषु रोगेषु यच्च पानेऽपि युज्यते॥

(अष्टांग० सू० अ० ३०)

फिर भी कहा है—

अग्निक्षारादपि श्रेष्ठस्तद्दग्धानामसम्भवात्।
भेषजक्षार शस्त्रैश्च न सिद्धानां प्रसाधनात्॥

इत्यादि वचन शास्त्र में युक्ति युक्त पूर्ण हैं। जो लोग विद्वान् हैं। आयुर्वेदीय सूत्रों के मर्मज्ञ हैं उन्हें तो इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। जो अन्य व्यक्ति इन वचनों को सामान्य और अतिशयोक्ति पूर्ण कहते हैं, उनसे हमें कोई वाद विवाद करने की आवश्यकता ही नहीं। प्राचीन आयुर्वेद के इन सत्य प्रमाणों से ही यह स्पष्ट एवं सिद्ध है कि आयुर्वेद में शस्त्र कर्म का कितना महत्व था। इस चिकित्सा प्रणाली से शीघ्र सुखा वाप्ति होती थी और होती भी है।

इस प्रकार हमें आयुर्वेदीय शास्त्रों से अध्ययन कर चुकने के पश्चात् यह आत्म विश्वास हो जाता है कि आयुर्वेद का शस्त्रकर्म सभी चिकित्सा प्रणालियों से कितना अग्रसर था। और आधुनिक सर्जरी से किसी भी प्रकार पीछे नहीं था। लेख अति विस्तृत न हो जाय इस भय से विषय को विस्तार से न लिखा गया, अगर इसका विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना है तो सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान अ० ५, ७, ८, ११, १२, १३, २५, २६, २८, एवं अष्टाङ्ग हृदय सूत्रस्थान अ० २५, २६, २७, २८, २९, ३० इन अध्यायों का अध्ययन करना परमावश्यक है। इनमें यन्त्र, शस्त्र, शल्य, शस्त्रकर्म जलौकावचरण अग्निकर्म, क्षारकर्म आदि का प्रयोग एवं चिकित्सा विशेष का सविस्तार से रोगों पर वर्णन वर्णित है। वहां से भी अध्ययन कर ज्यादा लाभ उठा सकते हैं।

विचार वैद्य चिन्तन करें—

राष्ट्र भाषा का अपमान ?

(लेखक—वैद्य मुन्शी आनन्दीलाल माथुर, आयुर्वेदरत्न)

आयुर्वेद से आयुर्हिताहितादि का ज्ञान प्राप्त कर हम वैद्य बने और मानव मात्र के कल्याणार्थ पुनीत यज्ञ में हम प्रवर्त हुए यह हमारा सौभाग्य है अथवा दुर्भाग्य ? इसका उत्तर तो भुक्तभोगी ही देगा, किन्तु आयुर्वेद हमारा है और हम आयुर्वेद के-इसमें कोई शक नहीं अतः आयुर्वेद के हिताहित के निमित्त निष्पक्ष भाव से विचार विमर्श कर सुदृढ़ निश्चय करना और संगठित रूप में एक मत होकर अग्रसर होना यही हमारा प्रमुख कर्तव्य है। आयुर्वेद का जीर्णोद्धार सही माने में हो, यही हमारी आवाज है। आयुर्वेद को सर्वाङ्ग सम्पूर्ण बनाने के हेतु हम विविध योजनाएं सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं इसे अवश्य ही शुभ प्रयास कह सकते हैं क्योंकि हमारा उद्देश्य आयुर्वेदीय सदाचार पर आधारित स्वस्थवृत्त का घर-घर में प्रचार कर जनता जनार्दन की सेवा करना है, तथैव देश भर में सर्वाङ्ग सम्पूर्ण आयुर्वेदीय विश्व-विद्यालयों की स्थापना की जाय, केवल इतना ही नहीं, अपितु राष्ट्रीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी आयुर्वेद को उचित स्थान मिले और आयुर्वेद के अपरिवर्तनशील सिद्धान्तों से जनता भी परिचित हो, ऐसा हम सभी चाहते हैं। किन्तु केवल चाहने मात्र से ही हमारे उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो जाती, इसलिये मानव स्वभावानुसार विघ्न और बाधाओं के निवारणार्थ संगठित रूप में विचार विमर्श कर हम उनको दूर करने का प्रयास करते हैं। देश के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् हमने विविध प्रकार के कार्य सम्पन्न किये परन्तु १० वर्ष व्यतीत हो जाने पर जो कुछ हमें प्राप्त हो जाना चाहिये था उसका शतांश भी तो हम प्राप्त नहीं कर सके, इससे यही सिद्ध होता है कि हमारी कार्य पद्धति अवश्य ही दोष पूर्ण है। इच्छाओं के अनुरूप ही मनुष्य कार्य प्रारम्भ करता है, किन्तु यदि लंबे समय तक सफलता प्राप्त नहीं होती तब कार्य पद्धति में अवश्य ही संशोधन करना पड़ता है।

आज देश भर में जो वैद्यों की संख्या है उसे ध्यान में रखते हुए हम हमारी संगठित शक्ति की ओर देखते हैं तो हमें बड़ा दुःख होता है। हमारे संगठन को जो बल मिलना चाहिये वह क्यों नहीं मिल पाता ? इसका सच्चा उत्तर कौन दे सकता है ? वही जो सामाजिक संगठन से वंचित रह जाता है ? अथवा अन्य कोई और ? मन में शान्ति धारण कर इस प्रमुख समस्या पर विचार विमर्श करने पर हमें जो प्रकाश दिखाई देता है उसका अनुसरण कर हम हमारे संगठन को दृढ़ बना सकते हैं अन्यथा हमारा पतन अवश्यम्भावी है। आकार प्रकार में समानता होते हुए भी विभिन्न मनुष्यों के रूप, रंग और गुणों में अवश्य ही कुछ न कुछ भेद रहता है, परन्तु समानता की अवहेलना कर इन भेदों को यदि हम प्रमुखता देते हैं, तो अवश्य ही, हम प्रेम से विमुख हो जाते हैं और प्रेम से विमुख होते ही हम मानवता से भी पतित हो जाते हैं। चिकित्सा द्वारा मानवता की रक्षा में तत्पर एक वैद्य का उद्देश्य और उत्तरदायित्व तो साधारण मानव से भी महान् है। वैद्यों की वेष भूषा तथा लक्षण एवं व्यवहारादि का वर्णन करते समय स्वयं भगवान धन्वन्तरि अपने ही समान गुणों का आदर्श प्रस्तुत करते हैं क्योंकि वे स्वयं वैद्य महाप्रभु हैं अतः आयुर्वेद का निमित्तहेत्वायतन एक वैद्य ही है और वही इसका संरक्षक भी इसलिये किसी भी वैद्य को किसी भी प्रकार हेय दृष्टि से देखना भगवान धन्वन्तरि का अपमान करने के तुल्य महा पाप है। वैद्य-वैद्य सभी समान हैं। सम और मान के संयोग-सम्मान और समान का अर्थ ही प्रेम परिचायक है। जहां समानता की ठौर नहीं, वहां प्रेम कैसे पनप सकता है ? समानता और प्रेम के अभाव में ही हमारा संगठन शिथिल हो रहा है। इस वास्तविक तथ्य की अवहेलना करने से हमारा भला नहीं हो सकता। समानता और प्रेम के सच्चे पुजारी डाक्टरों में

किसी भी प्रकार का श्रेणी विभाजन दुनियां के किसी भी कोने में नहीं पाया जाता। अंग्रेजी, फ्रान्सिसी, जर्मनी और रूसी इत्यादि विभिन्न भाषाओं के भेद को लेकर आज दिन तक विवाद पैदा ही नहीं हुआ। आयुर्वेद के ही पुरातन संस्कृत ग्रन्थों का अरबी, फारसी और ग्रीक भाषाओं में अनुवाद होने पर हिकमत का जन्म हुआ एवं तत्पश्चात् रोमन और लेटिन में इनका अनुवाद होकर ऐलोपैथी का उद्भव हुआ।

(१) यद्यपि हिकमत के मूल ग्रन्थ आज दिन भी अरबी और फारसी में विद्यमान हैं तथापि भारतवासियों की मातृभाषा हिन्दी तथा उर्दू भाषा के ग्रन्थों के आधार पर प्राइवेट परीक्षा पास कर लेने से एक हकीम साहब को भिषगाचार्य के समक्ष अधिकार पद और वेतन दिया जा सकता है-तथा

(२) अंग्रेजी भाषा भाषी डाक्टर वैद्य और हकीम साहब से भी अधिक अधिकारादि प्राप्त कर सकता है, और

(३) भारतवर्ष के गणमान्य आयुर्वेदीय कालेजों द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी की संमिश्रित पद्धति से शिक्षित बी० आई० एम० एस० और ए० एम० एस० वैद्य डाक्टर (अर्थात् न पूरा वैद्य और न पूरा डाक्टर) को भिषगाचार्य के समान अधिकार पद और वेतन सहर्ष दिया जा सकता है तो:-

वही अधिकार पद और वेतन संस्कृत की लाड़ली पुत्री तथा वैज्ञानिक उत्तराधिकारिणी हिन्दी भाषा के मर्मज्ञ आयुर्वेदरत्न और वैद्याचार्य वैद्यों को नहीं देना आयुर्वेद विज्ञान तथा वैद्य समाज और सर्व साधारण के लिए बड़ा घातक है। आज से १५ वर्ष पूर्व कोटा निवासी स्वर्गीय वैद्य श्री गोपीनाथजी ने अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के स्नातकों के लिये हिन्दी भाषा के माध्यम को स्वीकार करने के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो अखिल भारतीय वैद्य महासम्मेलन द्वारा सहर्ष पारित किया जाकर कार्य रूप में परिणित हुआ। इसी पुनीत प्रयास के फलस्वरूप पैदा हुए वैद्याचार्य वैद्यों को समान अधिकारादि नहीं देना अखिल भारतीय वैद्य समाज का अपमान नहीं तो और क्या है? इतने पर भी यदि संस्कृत के प्रेम में हम दिवाने हैं तो भारतवर्ष के समस्त हकीमों को संस्कृत की परीक्षाएँ देने के लिए क्यों नहीं बाध्य किया जाता? हिन्दी भाषा भाषी वैद्यों की प्रचुरता से ही उत्तर प्रदेश अग्रणी हो रहा है तो राजस्थान का कैसे बिगाड़ हो सकता है? राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के महामन्त्रीजी को एक आयुर्वेदरत्न. छीपाबड़ौद जिला कोटा में कहते हैं कि आयुर्वेदरत्न एक रोगी का बस्ति कर्म द्वारा पेशाब कराने में नहीं हिचकता। वहां भिषगाचार्य वैद्य-दूर से ही भग जाता है। यह एक अति उत्तम और सत्य उदाहरण है। जिस प्रकार कोटवाल साहब को सच्ची कोटवाली करना शहर वाले ही सिखाते हैं ठीक इसी प्रकार वैद्यों को वास्तविक वैद्यगी करना भी रोगी ही सिखाता है-केवल परीक्षा में ही उत्तीर्ण हो जाने से हम वैद्य नहीं बन जाते।

संस्कृत भाषा में यदि कुछ कठिनाई नहीं होती, तो उसका स्थान हिन्दी को नहीं मिलता। समय परिवर्तन शील है, क्या पता? भविष्य में हिन्दी की क्या दशा होगी? लेकिन प्रस्तुत समस्या का क्षेत्र भूत अथवा भविष्यत् नहीं-वर्तमान है। इस समय हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है। विभिन्न पत्र और पत्रिकाओं द्वारा आयुर्वेद की महिमा का गुणगान करने तथा जनता को उपदेश देने के हेतु हम जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उस भाषा से द्वेष करने की हमको कैसे सूझी हमारे समान ऐसा कौन महापापी होगा जो अपनी मातृ भाषा का इस प्रकार अपमान कर सके।

संस्कृत साहित्य सम्मेलन में भाषण देते समय डाक्टर सम्पूर्णानन्द कहते हैं कि संस्कृत भाषा का गुणगान करने वालों में ही अपनी संतान को संस्कृत नहीं पढ़ाने का रोग फैला हुआ है। हमारे वैद्य बन्धु भी ऐसे ही रोग से ग्रसित हैं जो अपनी संतान को वैद्यक के स्थान पर डाक्टरी पढ़ाने के लिये लालायित हैं। संस्कृत के इने गिने परीक्षा केन्द्रों में प्रतिवर्ष परीक्षार्थियों की संख्या का अनुपात २० के लगभग

(शेष पृष्ठ ३६ पर देखें)

गोवंश में नस्ल सुधार आवश्यक

लेखक--आचार्य नित्यानन्द

स्वास्थ्य शास्त्रियों का कथन है कि शाकाहारी मनुष्य के भोजन में प्रतिदिन ७५ तोला दूध की आवश्यकता है। दूध का दीर्घायुष्य से गहरा सम्बन्ध साबित हो चुका है। उदाहरण के लिए न्यूजीलैंड को लीजिये वहां दूध की प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति खपत ८२ तोला औसतन है। तो उनकी भी ७० वर्ष की औसत है। पर भारत में प्रतिव्यक्ति दैनिक दूध की औसत केवल १७ तोला बतलाई जाती थी मेरे विचार से यहां प्रतिव्यक्ति और भी कम हो गई है। इस कमी के कई कारण हैं, एक प्रमुख कारण तो यह है कि दूध पीने वालों की संख्या रोजाना बढ़ रही है। अनुमान है कि भारत में १४००० बच्चे प्रतिदिन पैदा होते हैं। लेकिन दूध की मात्रा इसी अनुपात से नहीं बढ़ सकी। भारत विभाजन के फल स्वरूप अधिक दूध वाले क्षेत्र हम से अलग कर दिये गये हैं। शरणार्थियों के आने से तो जनसंख्या बढ़ी है पर पशुसंख्या तो ज्यों की त्यों है। बल्कि युद्धकाल में बूचड़खानों की मेहरबानी से घटी ही है। इसलिये अन्दाज है कि भारतीय संघ में प्रतिव्यक्ति दूध की औसत ५.५ ही है।

दूध में मिलावट

इन आंकड़ों के दूध में भी काफी मिलावट रहती है। मद्रास में दूध के कुछ विभिन्न नमूनों की जांच की गई थी। तब १९४१ में पता चला कि जिसे हम अच्छा दूध समझते हैं। उसमें २० प्रतिशत मिलावट है। सन् ४३ में मिलावट की औसत बढ़कर ४७ तक होगई थी। आज बड़े शहरों के दूध की परीक्षा की जाय तो हम इससे भी अधिक मिलावट पायेंगे। इस अमूल्य पोषक पदार्थ की कमी से भारतीयों के स्वास्थ्य का पतन हो रहा है और उनकी उम्र की औसत २७ वर्ष से भी नीचे आ टिकी है।

दूध की इस बेहद कमी की पूर्ति पशुओं की संख्या बढ़कर पशुओं को उत्तम खाद्य प्रदान कर और उनके निवास स्थान एवं रहन-सहन के स्तर को ऊँचा कर की जा सकती है। किन्तु दुधारु जानवरों की नस्ल में सुधार की भी बेहद जरूरत है।

नस्ल में सुधार

भारतीय गायें केवल सवा पाँच सौ पौण्ड दूध देती है, जब कि डेन्मार्क की गाय ७००५ पौण्ड और हालैण्ड की गाय ७५५९ पौंड तक दूध देती है।

इसके अनुसंधान की आवश्यकता है। भारतीय वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र को अछूता छोड़ रक्खा है। विचारणीय विषय यह है कि जिन प्रदेशों में ढोरों के चारे की कमी नहीं है, वहां भी दूध की मात्रा अल्प क्यों है ?

प्रतीत यह होता है कि दूध के अधिकतम देने में नस्ल की सुधार का प्रमुख प्रश्न है। भारत विभाजन के बाद तो यह और भी महत्वपूर्ण हो गया है। सिंधी, शाहीवाल और धार पारकर जैसे उम्दा नस्ल के पशुओं पर हमारा अधिकार नहीं रह गया है। विदेशी पशुओं से नस्ल सुधारने का तर्क अवांछनीय है, जब कि हमें अनुभव से मालूम हो चुका है कि देशी और विदेशी नस्लों का संमिश्रण उपयोगी नहीं है। अतः भारतीय संघ के पशुओं से ही हमें नस्ल सुधारने का काम करना होगा। सेवाग्राम में गौलाऊ सांड से नस्ल सुधारने का जो प्रयत्न हुआ है; वह प्रशंसनीय है।

हरियाना नस्ल

गोलव के गीर और दक्षिण भारत की कुछ नस्लें भी अच्छी हैं। पूर्वी पंजाब की सुप्रसिद्ध हरियाना नस्ल तो हमारे गौरव की चीज है। इस नस्ल की गायें दूध देने और बैल काम करने में उत्तम प्रमाणित हो चुके हैं। हरियाना नस्ल की गायों का दूध तोल में एक दम हलका, किन्तु अत्यन्त स्वादिष्ट और उत्तम स्वास्थ्य प्रद होता है। मुर्रा नस्ल वाला प्रदेश भी हमारे हाथ में है।

इन में अपेक्षित सुधार होने से दूध पैदा करने में भी हम किसी देश से पीछे न रहेंगे। आवश्यकता तो इस बात की है कि इन नस्लों के सांडों के द्वारा सारे भारत की नस्लों को उत्तम बनाया जाय। अभी हमें उत्तम नस्ल वाला सांड अढ़ाई सौ सांडों में से केवल एक मिल रहा है। इस भीषण कमी को दूर करने के लिये हरियाना नस्ल का सर्वाधिक प्रचार आवश्यक

है; क्योंकि आज के भारतीय गांवों में सिंचाई व खेती के लिये सामान स्थानान्तरित करने और सवारी वगैरा के लिये तगड़े बैलों की अत्यन्त जरूरत है।

हिसार का फार्म

श्रम शील तगड़े बैल और उम्दा दुधारू गायों के लिये नस्ल में उचित सुधारों का प्रयत्न जारी भी है। पूर्वी पंजाब सरकार के तत्वावधान में हिसार के फार्म के कार्य प्रशंसनीय हैं। यह फार्म एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा और पुराना फार्म है इसमें ९ हजार पशु हैं। जिसमें ६ हजार लगभग गायें हैं।

खेद की बात यह है कि कई बार हिसार जिले में वर्षा की कमी से अकाल पड़ जाने के कारण हरियाना नस्ल के अनेक उत्तम पशुहड्डियों के ढांचे मात्र रह जाते हैं। कितने ही गांवों में तो पशुओं के लिये चारे का नितान्त अभाव हो जाता है। फलस्वरूप पशुओं की बड़ी दुर्दशा हो जाती है। यह आवश्यक है कि हम कम से कम अच्छे नस्ल के पशुओं की तो प्रत्येक स्थिति में रक्षा करें। ग्राम सेवकों और काश्तकारों का भी कर्त्तव्य है कि वे इस समय प्रत्येक सम्भव उपाय से पशुओं की रक्षा करें और व्यक्तिगत प्रयोगों के द्वारा नस्ल सुधार में उचित सहयोग दें, ताकि भारतीय संघ में दूध की बेहद कमी को सर्वदा के लिये दूर किया जा सके।

— राष्ट्र भाषा का अपमान —

(पृष्ठ ३४ का शेष)

होता है। अभी-अभी राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनाध्यक्ष महोदय से भिषगाचार्य विद्यार्थियों के हेतु जोधपुर में शाखा खोलने के लिए अनुरोध किया गया तब यह उत्तर प्राप्त हुआ कि संस्कृत के विद्यार्थियों के अभाव के कारण हम ऐसा करने में सर्वथा असमर्थ हैं। जनता का झुकाव हिन्दी की ओर अत्यधिक है। उर्दू दां पिता भी अपने पुत्रों को हिन्दी पढ़ा रहे हैं। वस्तु स्थिति यह है कि अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य (संस्कृत) और वैद्याचार्य (हिन्दी) के परीक्षार्थियों में क्रमशः ३ और १२ का अनुपात हमारे सामने विद्यमान है और आयुर्वेद रत्न (हिन्दी) के परिक्षार्थियों की संख्या तो वैद्याचार्य से भी अत्यधिक है। राजस्थान आयुर्वेद विभाग के भूतपूर्व संचालक श्री नित्यानन्दजी के कथनानुसार इस समय ८० प्रतिशत वैद्य हिन्दी भाषा भाषी हैं। ऐसी परिस्थिति में हमारा संस्कृतज्ञों और असंस्कृतज्ञों में भेद भाव रखना आयुर्वेद के विस्तृत और विशाल वृक्ष की जड़ों में कुठाराघात नहीं तो और क्या हो सकता है ?

आज के दिन अनेकों ही आयुर्वेदरत्न, हमारी ही उपेक्षा के कारण, अध्यापक बने रहकर अपमानित रूप में अपना जीवन यापन कर रहे हैं-इनके श्राप का फल भी हम को ही भोगना पड़ेगा इसमें किसी भी प्रकार का संदेह करने की आवश्यकता नहीं। यदि हम अब भी नहीं चेते तो हमारा दुर्भाग्य ही है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है और इसका सर्वाङ्गीय विकास करना हमारा प्रमुख कर्तव्य है, इस पुनीत कर्तव्य का पालन करने से हमारा भला ही होगा। यदि हमें राष्ट्र की सेवा स्वीकार कर आगे बढ़ना है तथा घर-घर में आयुर्वेद का प्रचार करना है तो केवल हिन्दी ही नहीं अपितु पंजाबी, मराठी, बंगला एवं गुजराती इत्यादि भाषा भाषी वैद्यों को भी समानता का पद देकर हमारे संगठन को सुदृढ़ बनाना ही होगा। आज वर्तमान में आयुर्वेदीय ग्रन्थ जितने हिन्दी टीकायुक्त उपलब्ध हैं उनके आधे भी संस्कृत टीकायुक्त उपलब्ध नहीं-यह कटु सत्य है। वैद्य-वैद्य को हेय दृष्टि से न देखें, प्रत्येक वैद्य को उसे उसका जन्म सिद्ध उचित और समान अधिकार समर्पित कर हम प्रेम का परिचय दें-इसी में- हमारा और आयुर्वेद का दोनों का ही हित है। समानता में ही प्रेम है, प्रेम ही संगठन है और संगठन में ही शक्ति है।

> रूद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाःऽखिलः।
> शक्तिहीनं यथासर्वे प्रवदन्ति नराधमम्॥

★ Influenza या वातश्लेष्मिक ज्वर ★

(लेखक—वैद्य रामकृष्ण चौरसिया, नितगंज फर्रुखाबाद)

यह महामारी भारत में पूर्ण रूप से संक्रमण करती हुई पाकिस्तान आदि देशों में भी प्रसार पा रही है। इससे कुछ देश तो अत्यन्त ही भयभीत से दिख रहे हैं पर साथ ही अपनी औषधियों के खपत के बाजारों में अपनी उन्नति शीलता का प्रचार करते हुये विज्ञापन द्वारा प्राणपण से अपने बाजार को गर्म व ठीकठाक रखने में भी जुटे पड़े हैं।

यह कोई नई बीमारी नहीं है और न इससे कुछ ऐसे भय की ही बात है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के अनुसार यह उतनी ही पुरानी है जितना पुराना चिकित्सा का इतिहास अथवा मनुष्य की उत्पति। हम आधुनिक तथा वैज्ञानिक कही जाने वाली चिकित्सा तथा आयुर्वेद दोनों के अनुसार इसका विवेचन करने का प्रयास करेंगे। जुकाम तक का ठीक निदान कर उसकी चिकित्सा में अपने को असमर्थ पाने वालों को छोड़ देने पर इसका आयुर्वेदिक ढंग पर उपचार तथा रोक विषम ज्वर (मलेरिया) से भी अधिक सुगम, सरल, निर्भय तथा निरापद है। इसमें मृत्यु का होना एक अन होनी घटना या चिकित्सा के चतुष्पाद में से एक की उपेक्षा अथवा विषम स्थिति ही समझना चाहिये।

निकटतम इतिहास के अनुसार इस समय से पहले सन् १९१८-१९ ई. में अर्थात् उनतालीस साल पहले व इससे सन् १८८९-९० ई० में यानी पिछले फैलाव से उनतीस साल पहले यह महामारी भूमण्डल को सन्तप्त कर चुकी है। उस समय ऐसा अनुभव में आया था कि प्रायः यह तैंतीस हफ्ते के पश्चात् रोगी पर पुनराक्रमण करती है यदि आक्रमण का समय ग्रीष्म ऋतु में न पड़ता हो।

आधुनिक मान्यता के अनुसार वातश्लेष्मिक ज्वर, हेमोफिलस इन्फ्लुएन्जा (Bacillus Influenza of pfeiffer बेसिलस इन्फ्लुएन्जा आफ फाइफर) नामक विषाणु की देन है जिसकी बनावट निहायत दुबली, पतली, छोटी, दोनों सिरों पर गोलाई लिये हुये लगभग 1,5 U×.03U नाप वाली होती है। यह अकेले व जोड़े में, स्वतः हरकत न करने वाली स्थिति में पाया जाता है। इसी की दूसरी सूरत पहले वाले से भी छोटी अण्डाकार जैसी होती है व तीसरी बनावट डोरी की सी लम्बी परन्तु कुछ टेढ़ी सी होती है। यह ग्राम निगेटिव तथा ३७°c सैंतीस डिग्री सेन्टी ग्रेड अर्थात् ९९°f निन्नानवे डिग्री फेहरन हाइट के लगभग गर्मी में पूरे खून की खुराक पर ही बढ़ने वाला विषाणु है इसके बढ़ने के लिये अन्य विषाणुओं सहायक वस्तुओं तथा स्थितिओं की परम आवश्यकता होती है जो इसके लिए क्षेत्र तैयार करें जैसे x तथा v फेक्टर्स, स्टैफिलोकोकस का आवास आदि इसके और भी भेद पाये गये हैं पिटमेन द्वारा ६ तरह के भिन्न विषाणु लक्षित किये गये तथा उनका नाम a, b, c, d, e, f रक्खा गया इन भेदों में विषाणु b को तो मस्तिष्कावरण-प्रदाह में विशेष रूप से सहायक पाया गया। जिन वैज्ञानिकों द्वारा यह सब गवेषणा की गई है उनके अनुसार महामारी इन्फ्लुएन्जा के कीटाणु इसके लिये उत्तरदायी नहीं हैं वरन् ये सिर्फ श्वास संस्थान में उपद्रवकारी ही होते हैं इस तरह यह स्पष्ट है कि बीमारी फैलने का उत्तरदायित्व कुछ और पर ही निर्भर है, इसको ही आयुर्वेद अपने त्रिदोष तथा त्रिधातु के अधार पर मय लक्षणों के इस तरह बतलाते हैं।

> अद्भिरोषधिभिश्चैव मधुराभिश्चितः कफः।
> हेमन्तेसूर्य सन्तप्तः स वसन्ते प्रकुप्यति ॥
> तस्मात् वसन्ते कफजो ज्वरः समुपजायते।
> आदान मध्ये तस्यापि वात पित भवेद्नु ॥

मनुष्य के शरीर में ठंडी, मीठी, जल, वस्तु व ऋतु के कारण कफ का संचय हो जाता है जो वसन्त ऋतु में सूर्य की गर्मी पाकर प्रकुपित होता है तथा कुपित कफ, पित्त और वायु के कार्य में बाधा डालकर व उन्हें भी कुपित करके नाना प्रकार के उपद्रव खड़े कर देता है। जल, वायु, आकाश पृथ्वी तथा दूषित अग्नितत्व पात्र (शरीर) में स्थित ही त्रिधातु को अपने दूषित प्रभाव से दोष युक्त कर रोग के उत्पत्ति

कारक बन जाते हैं। चूंकि पात्र की सहन शक्ति बल, वय, रहन, सहन व परिस्थितियां भिन्न भिन्न होती हैं अतः उन पर उनके सदाचार मानसिक दृढ़ता आदि के अनुसार प्रभाव भी न्यूनाधिक हुआ करता है।

इस रोग को ग्रन्थों ने आठ स्थितियों के अनुसार ही आठ मुख्य रूपों में विभक्त कर दिया है पर स्थानिक प्रभाव तथा लक्षणों के अनुसार नव्य मत से चार प्रकार का ही माना गया है जिसे हम आगे कहेंगे।

शीतको गौरवं तन्द्रा स्तैमित्यं पर्वणाञ्च रुक्।
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

ठण्ड लगना शरीर का भारीपन, तन्द्रा, शरीर गीला-सा, जोड़ों में शूल, शिर का जकड़ना, जुकाम, खांसी, पसीना रुकना, बेचैनी का होना वात कफ ज्वर का रूप है।

शैत्यं, कासोऽरुचिस्तन्द्रा, पिपासा, दाहरुग्व्यथा।
वातश्लेष्मोल्बणे व्याधौ लिङ्गं पित्तावरे विदुः ॥

वात कफ की उग्रता में शीत लगना, खाँसी, अरुचि, तन्द्रा, प्यास, जलन तथा बेचैनी जानना चाहिये।

सन्ध्यास्थि शिरसः शूल प्रलापो गौरवं भ्रमः।
वातोल्बणे स्याद् द्वयनुगे तृष्णा कण्ठास्य शुष्कता॥

सन्धियों हड्डियों तथा शिर में दर्द, बकना, भारीपन, चक्कर, प्यास तथा गले का सूखना वायु विशेष में पाया जाता है।

आलस्यारुचिहृल्लास दाह बम्यारति भ्रमैः।
कफोल्वणा सन्निपात तन्द्रा कासैन चादिसेत्॥

कफ की प्रधानता में आलस्य, अरुचि, उबकाई, जलन, उल्टी, बेचैनी, चक्कर व खाँसी युक्त त्रिदोष कुपित होते हैं।

प्रतिश्यायच्छर्दिरालस्यं तन्द्रारुच्याग्नि मार्दवम्।
हीन वाते पित्त मध्येलिङ्गं श्लेष्माधिके मतम्॥

जुकाम, वमन, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि, अग्नि (पित्त अथवा खून) गिरने के लक्षण न्यून वात, मध्य पित्त अधिक कफ में पाये जाते हैं।

शिरो रुग्वेपथुः श्वासः प्रलापच्छर्द्यरोचकौ।
हीन पित्ते मध्य कफे लिङ्गं वाताधिकेमतम्॥

हीन पित्त, मध्य कफ, अधिक वात दोष के होनेपर शिर में दर्द, कंपकंपी, सांस, बकनाफकना, उल्टी तथा अरोचकता के लक्षण पाये जाते हैं।

शीतको, गौरवं, तन्द्रा, प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक्।
हीनपित्ते वातमध्ये लिङ्ग श्लेष्माधिके मतम्॥

ठण्ड लगना, भारीपन, तन्द्रा, बकवास, हड्डी तथा सिर में तेज दर्द के लक्षण हीन पित्त, मध्य वात तथा अधिक श्लेष्मा में होते हैं।

श्वासः कासः प्रतिश्यायो मुखशोषोऽति पार्श्वरुक्।
कफ हीने पित्त मध्ये लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥

सांस, खांसी, जुकाम, मुंह सूखना, पसली में अत्यधिक पीड़ा कफ हीन पित्त मध्य और वायु की अधिकता में लक्षण होते हैं।

उपरोक्त विवरण प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार करने के पश्चात् हम बहुत थोड़े में नव्य मतानुसार लाक्षणिक तथा स्थानिक प्रभावों के आधार पर बाँटे हुये चार भागों का भी कुछ विवरण देने का प्रयत्न कर रहे हैं। १ Respiratory श्वास यन्त्र गत २ Gastrointestinal पाकाशय गत ३ Nervous स्नायुविक तथा ४ Malignant सांघातिक—

१. Respiratory २ Influinza श्वास यन्त्र प्रभावक वातश्लेष्मिक ज्वर—इसमें उपद्रव स्वरूप Pnumococci न्युमोकोक्सी तथा Streptococci स्ट्रेप्टोकोक्सी कीटाणुओं के कारण Bronchitis or Broncho or lober Pnumonia ब्रॉंकाइटिस ब्रैंकों अथवा लोबर न्यूमोनियां अर्थात् श्वास संस्थान का खण्ड या पूर्ण प्रदाहित होना, Plurisy प्लुरिसी फुफ्फुस आवरण झिल्ली में पूय संचय Empyema फुफ्फुस आवरण में पीव पड़ जाना आदि हो जाते हैं।

२. Gastrointestinal Influenza पाकाशय गत वातश्लेष्मिक ज्वर में अरुचि, वमन, उदरशूल, तथा अतिसार का अत्यधिक शक्तिपात के साथ प्रारम्भ होता है। ज्वर सन्तत तथा नाड़ी मंद रहने से आंत्रिक

ज्वर का धोखा होता है। यकृत् विकार इसमें प्रायः हो जाता है।

३. Nervous Influenza स्नायुविकवातश्लेष्मिक ज्वर में हेमोफलस इन्फ्लुएञ्जा के B टाइप के कीटाणु प्रायः मस्तिष्क व सुषुम्ना में पाये जाते हैं इसमें Thrombosis in Veins नसों में समवरोधन निर्माण Meningitis मस्तिष्कावरण प्रदाह Inflamation of spinal Cord सुषुम्ना प्रदाह Neuritis वात नाड़ी प्रदाह आदि स्नायु सम्बन्धी विकार हो जाते हैं।

४. Malignant Influenza सांघातिकवातश्लेष्मिक ज्वर में Pericarditis endocarditis or Valvular disease हृदयावरण झिल्ली प्रदाह, हृदयान्तर्झिल्ली प्रदाह तथा हृद्कपाट प्रदाह का उपद्रव होकर चिकित्सक अथवा परिचारक की जरा-सी भूल होने पर मृत्यु हो जाती है। जैसे बिजली की बत्ती पर जहाँ दस पांच कीड़े भी बरसात से पहले नहीं दिखलाई पड़ते वहां बरसाती हवा चलते ही हजारों विभिन्न प्रकार के पतंगे सड़क पर चलना दूभर कर देते हैं। प्रबन्धक यदि चाहे तो फ्लाइ पेपर लगा कर एक भी पतंगा न रक्खे। इसी तरह यदि रोगी का परिचारक म्युनिसिपैलिटीज व डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, रोगी, उपयुक्त औषधि तथा वैद्य सतर्क हैं तो निश्चय ही यह रोग जनता में न होगा।

इस बार के वातश्लेष्मिक ज्वर में अभी तक जो अनुभव में आया है इस प्रकार है। रोगियों को पहले जुकाम का धोखा हुआ जब खूब जोरों का ज्वर हुआ १०४° से १०६° तक। तब इलाज कराया। रोगी से बात करते करते उपचारक या मिलने वाला यकायक बीमार पड़ गया। आंखों में प्रदाह भी किसी किसी रोगी में ही पाया। नाक से पतला स्राव हर रोगी में देखने में नहीं आया शिर व शरीर में प्रत्येक रोगी के भयानक शूल देखा। भूख लगभग सभी रोगियों की विदा होगई। रोगियों में से निम्नांकित लक्षण जिस तिस में पाये गये हरेक में नहीं। जहर खाये की भाँति दस्त, छींकें, मुंह द्वारा खून का गिरना, निमोनियां कान के अन्दर फोड़ा, चेचक तथा मोतीझरा जैसे शरीर पर दाने। एक मरीज तो दवा खाने में आकर यकायक बेहोश हो गया। इसे पूंछने पर ज्ञात हुआ कि इससे पहले कभी दौड़ा (आक्षेप) नहीं आया था। सांधातिक वातश्लेष्मिक ज्वर समझ कर फौरन लक्ष्मी विलास रस शहद अदरक में दो रत्ती दे कर नाड़ी देखी जो लडखड़ाती हुई चल कर रुक गई। रुकने जैसी स्थिति में जाते हुये समझते ही स्टेथिस्कोप हृदय पर लगाया। स्टेथिस्कोप में किसी तरह की हरकत न मालूम होने पर कृत्रिम श्वास प्रदान की और थोड़ी ही देर बाद रोगी होश में आगया। हृदय बंद होते समय शरीर काफी उष्ण था। भड़भड़ी में तापमापक यन्त्र से तापमान न ले सके। रोगी अभी तक ठीक है तुक लग गई। ज्वर, जितने रोग भी इस महामारी से पीड़ित मिले सभी को १०२° डिग्री से ऊपर मिला। सभी रोगी अच्छे हो गये। ज्वर के शान्त होने की अवधि दो दिन से आठ दिन तक रही।

उपचार—इस बुखार में कमजोरी बहुत अधिक आती है जितना समय इसके अच्छे होने में लगता है उसका लगभग दूना समय रोगी के कार्य करने योग्य होने में लग जाता है। यदि इसमें कुछ भी कमी की जाती है तो रोगी स्नायुविक विकार से चिड़चिड़ा अथवा भुलक्कड़ हो जाता है। किसी किसी को तो सब कुछ सावधानी करते हुये भूलने का मस्तिष्क गत विकार सा होगया, जिसे संखाहूली तथा ब्राह्मी के योगों के सेवन कराने के पश्चात् ही ठीक कर पाये। रोगी को एकदम आराम कराना चाहिये। रोगी को न तो खुले में रक्खे और न बंद कमरे में बल्कि बरामदे में रक्खे कम से कम एक हरा कपड़ा गरदन से पैरों तक हर समय रहना चाहिये। पानी गरम त्रिकुटा मिलाकर उबाला हुआ दे रोगी के बिस्तर पर कुछ कपूर अथवा यूकेलिप्टस आयल की कुछ बूंदें अवश्य डाल देनी चाहिए। गूगल दोनों संध्यायों को सुलगाना चाहिये। थूकने के लिये फिनायल डाल कर तसला रख देना चाहिये। जब तक ज्वर रहे लंघन कराना चाहिये। यदि रोगी न माने तो सोंठ तथा शकर डाल कर गरम दूध दें।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

इन्फ्लूएन्जा क्या बला है

आयुर्वेदवाचस्पति वैद्य विरञ्चीलालजी आयुर्वेदाचार्य

देश के समाचार पत्रों में आज कल इन्फ्लुएन्जा की चर्चा बहुत जोरों पर है। यह रोग बम्बई, मद्रास, दिल्ली मध्यभारत आदि सभी प्रान्तों में जहां बड़े-बड़े शहरों में संक्रामक रूप से फैलता जा रहा है और फैलने की सूचनाएं आ रही हैं कि इस का प्रभाव सभी नगरों में प्रायः बढ़ता जा रहा है। समाचार पत्रों की दैनिक खबरों के पढ़ने से जनसाधारण में जो बेचैनी और घबराहट फैली हुई है उसका मूल कारण इस रोग की संक्रामकता तथा प्रभाव से अनभिज्ञ होना है। यह रोग उतना सांघातिक नहीं तथा खतरनाक नहीं जितना अनुमान लगाया जा रहा है। अधिकांश में इस रोग के मरीज मनो वैज्ञानिक कारण से बनते जा रहे हैं और यदि जनसाधारण की मानसिक स्थिति में कोई घबराहट पैदा न हो तो समाचार पत्रों में छापे जाने वाले ये आँकड़े इतने बड़े पैमाने में देखने न आवें। मेरे अनुभव के आधार पर यह ज्वर आयुर्वेद के सिद्धान्त शास्त्रानुसार शरद ऋतु में बसंत ऋतु का मिथ्या योग होने से जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको विकृतज्वर कहते हैं और वह कष्ट साध्य होता है जिसे कहा है।

वर्षा शरद् वसन्तेषु वाताद्यै प्राकृतः क्रमात्।
वैकृतोऽन्यसहसाध्यः ।।

अर्थात् शरद ऋतु के ताप से वर्षा ऋतु में संचित हुआ पित्त पिघल कर पित्तज्वर को उत्पन्न करता है ऐसा नियम होने पर भी शरद ऋतु में वसन्त ऋतु का मिथ्या योग होने से पित्तके बदले कफका प्रकोप हुआ अर्थात् वसन्त ऋतु में जिस कफका प्रकोप होना था उसका कोप शरद ऋतु में हुआ जिस से ज्वर की उत्पत्ति हुई उसी को पित्तश्लेष्म ज्वर कहते हैं जिसमें मुख का चिकना और कड़वा होना, तन्द्रा (मीट लगना), मोह, कास (खांसी आना), अरुचि, प्यास ज्यादा लगना, रोगी को थोड़ी देर में ठंड और थोड़ी देर में गर्मी लगना जैसे कहा भी है—

लिप्त तिक्तास्यता तन्द्रा मोहःकासोऽरुचिस्तृषा।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लैष्मज्वरा कृतिः ।। १ ।।

यह है इन्फ्लुएन्जा आयुर्वेद नेताओं ने आजकल की इन्फ्लुएन्जा को वातश्लैष्मिक ज्वर के रूप में माना है जिसमें रोगी को ऐसा अनुभव होता है कि उसका शरीर मानो गीले कपड़ों से ढका हुआ सब जोड़ों में दर्द होता है और बदन भारीसा हो जाता है शिर में दर्द होता है जुखाम, नाक बहना, बेचैनी, सर्दी-व खाँसी होना-सोने की इच्छा होना, ज्वर होना, छाती में दर्द होना या भारीपन होना यह सब वातश्लैष्मिक ज्वर के लक्षण हैं-जैसे कि कहा है—

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेवच।
शिरोग्रहः प्रतिश्याय कासः स्वेदा प्रवर्तनम्।।
संतापो मध्यवेगश्च वातश्लैष्म ज्वराकृतिः।

कभी-कभी यह ज्वर विशेष उपद्रव युक्त हो जाता है जिस को कि आज कल पेपरों सिनेमा इन्फ्लुएन्जा के नाम से प्रचारित किये जाने की कोशिश है तब इसमें भयंकर मस्तिष्क में पीड़ा, कण्ठावरोध, दाह, मोह, कंपकंपी, नाक, मुख व गुदा द्वारा रक्त का आना, प्रलाप, बेचैनी, मूर्च्छा (बेहोशी) भयंकर खांसी आदि लक्षण हो जाते हैं तब इसे कण्ठकुब्ज सन्निपात का रूप दिया जा सकता है और यही समस्त संसार में १९१८ में जनपदोध्वंसी के रूप में हुआ था जब कि लाखों मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। जिस से कहा है—कष्ट साध्य भी है।

शिऽरोर्तिकण्ठग्रहदाहमोह कम्पज्वरा रक्तसमीरणार्त्तिः।
हनुग्रहस्ताप विलापमूर्च्छाः स्यात्कण्ठकुब्जःखलु कष्टसाध्यः

इसका चिकित्सा क्रम बहुत साधारण है। आम तौर पर इससे बचने के लिए अति भोजन, मद्यपान, धूप में घूमना, अस्वच्छ वातावरण में रहना (जैसे सिनेमा-होटल, जुलूस, रेल, मोटर की यात्रा, अधिक भीड़ के स्थानोंपर रहना। गन्दे सड़े फलों व ज्यादा (तीव्र मसालों का उपयोग) निषेध है। संक्रामक काल में उबला हुआ पानी पीना, तुलसी के पत्ते और कालीमिर्च की चाय पीना, तथा कपूर, व नीलगिरी तैल का सूंघना, नमक मिले हुए चाय के पानी का गरारा (कुल्ले करते रहना) गंदी नालियों व

(शेष पृष्ठ ४६ पर देखें)

— राजस्थान विधान सभा के माननीय सदस्यों को —

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन द्वारा

प्रदत्त प्रतिवेदन

[लेखक—वैद्य मिश्रीप्रसाद शास्त्री प्रचार मन्त्री राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन]

बन्धुवर,

आप राजस्थान विधान सभा के जन प्रतिनिधि के रूप में सदस्य निर्वाचित हुए हैं। कृपया राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के सदस्यों की ओर से हार्दिक शुभ कामना स्वीकार कीजिये।

राजस्थान विधान सभा के वजट अधिवेशन पर आयुर्वेद के विकास की योजना को मूर्त रूप देने हेतु यह प्रतिवेदन आपको प्रस्तुत करते हुए हमें यह विश्वास है कि आयुर्वेद के विकास में राजस्थान को एक आकर्षक अनुकरणीय उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करेंगे। यह प्रतिवेदन इसलिये भी अनिवार्य है कि यदि इन पांच या दस वर्षों में देश के स्वास्थ्य का समुचित विकास न हुआ तो हमारी सारी पंचवर्षीय और विकास योजनाएँ धूलि-धूसरित हो जायँगी। इसलिये देश के स्वास्थ्य की व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की योजना लेकर आयुर्वेद विज्ञान दूसरे विज्ञानों के समकक्ष आपके सामने प्रस्तुत है। जो अपने अधिकारों को प्राप्त करने की सुदृढ़ मांग के साथ देश के स्वास्थ्य को अधिक उत्तरदायित्व तरीकों से सुरक्षित रखना चाहता है। इस कार्य के लिये आयुर्वेद का विकास आवश्यक है। अतएव आयुर्वेद की वास्तविक-स्थिति का परिचय देते हुए हम आपको आयुर्वेद जगत् की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। जिनके निम्न दृष्टि-बिन्दु हैं।

१. भारत में आयुर्वेद
२. राजस्थान में आयुर्वेद
३. शिक्षा का वर्तमान स्वरूप और उसका विकास
४. चिकित्सा और चिकित्सालयों की समस्याएं
५. औषध निर्माण तथा व्यवस्था
६. अनुसंधान
७. पञ्चवर्षीय योजना
८. सार्वजनिक स्वास्थ्य
९. राजकीय आयुर्वेदिक प्रशासन

भारत में आयुर्वेद—

हजारों वर्ष हुए भारत जब विश्व-गुरु के रूप में प्रतिष्ठित था तब भारतीय संस्कृति और उसका आधार जीवन-विज्ञान आयुर्वेद, विज्ञान की चरम सीमा पर स्थित रह कर जिस प्रकार विश्व को संदेश देता रहा है उस सत्य का संस्मरण हमारे विकास के स्वाभिमान को पुनः आन्दोलित करता है। तथा कथित पराकाष्ठा पर पहुंची आज की वैज्ञानिक सर्जरी और भारत के महाभारत कालीन, वैदिक कालीन समरांगणों में भिन्न-भिन्न आयुधों, तीक्ष्ण तीरों और त्रिशूलों से कटे शिर, जंघाओं, हाथों को अपनी चिकित्सा द्वारा १०-१५ दिन में ही नहीं तत्काल (२-४ दिन में ही) ठीक करने वाले, यज्ञ में और युद्धों में आंख, नाक, कान और मुंह के नष्ट भ्रष्ट होने पर व्यवस्थित स्वस्थ करने वाले, ८० वर्ष के बृद्ध च्यवन को अपनी चिकित्सा द्वारा युवा बना देने वाले भारतीय वैद्य का इतिहास वैदिक काल के साथ प्रारम्भ होता है। प्रगतिशील आयुर्वेद के ज्वलन्त उदाहरण नासासन्धान प्लासटिक सर्जरी टाइफाइड में अन्न का निषेध, शोथ में लवण का निषेध, रक्त चाप (ब्लड-प्रेशर) में सर्प गन्धा का प्रयोग आदि सैकड़ों आयुर्वेद के ऐसे सिद्धान्त एलोपैथिक के सिद्धान्त को परिवर्तित कर आज के विकसित विज्ञान को मौन करने में समर्थ रहे हैं आयुर्वेद अब काय चिकित्सा (मेडिशन) शल्य (सर्जरी) शालाक्य (इयर, नोज, थ्रोट, आई, ब्रेन) कौमार भृत्य (मिडवाई फ्री) विष तन्त्र (टोक्सी

फोलोजी) व्यवहार आयुर्वेद (मेडिकलज्यूरिस्प्रडेन्स) द्रव्य गुण शास्त्र (मेडेरिया मेडिका) रसायन वाजीकरण, मानस रोग विज्ञान (फिलोसौफी) सार्वजनिक स्वस्थ्यवृत्त स्वास्थ्य (पब्लिक हेल्थ) सदवृत्त पञ्चकर्म (नेचरोपेथी) अग्नि धर्म इलेक्ट्रिक ट्रीटमेंन्ट आदि अनेकों रूपों में देश के स्वास्थ्य का प्रहरी था जिसके ध्वस्त उदाहरण आज भी हमें मिलते हैं जिन्हें आप भली प्रकार से जानते हैं आज का कहा जाने वाला विकसित विज्ञान इतनी प्रगति करने पर भी आयुर्वेद के विषयों में से कुछ को स्पर्श भी नहीं कर पाया है।

विश्व प्रसिद्ध नालन्दा विश्व विद्यालय तथा नेपाल और काश्मीर के राज वैद्य कुल चिकित्सागारों में वृक्काश्मरी (स्टोन आफ किडनीज) आदि के आज के तथाकथित भयंकरतम आपरेशनों का वर्णन भारत के ऐतिहासिकों ने ही नहीं चीन और इजिप्ट के प्रख्यात यात्रियों ने अपनी स्मृति के स्वर्णाक्षरों में अंकित किया है। बौद्ध काल में मोहनी सुरा द्वारा बेहोश कर रोगी को आपरेशन करते समय वेदना का तनिक भी अनुभव नहीं होता था ऐसा चीन के यात्रियों ने अनेक प्रसंगों पर लिखा है। नालन्दा एवं मोहन जोदड़ा की खुदाई से प्राप्त आधुनिकतम यन्त्र शास्त्रों को पीछे रखने वाले यन्त्र शास्त्र आज के आयुर्वेद आलोचकों की क्लोरोफार्म और यन्त्र शास्त्रों की आविश गति का श्रेय एलोपेथिक विशेषज्ञों को ही है इस प्रकार की विचार धारा का उक्त उदाहरणों से कितना अस्तित्व है आप स्वयं सोचिए।

बुद्ध काल में अवश्य बौद्धों की अहिंसावादिता का दुरुपयोग कर शल्य कर्म से करोड़ों जीवाणुओं की हिंसा होती है इस बात का प्रचार कर आयुर्वेद के शल्य कर्म को राजकीय पेमाने पर कुंठित किया गया इसका परिणाम स्पष्ट है कि फिर आयुर्वेद शल्य कर्म में पिछड़ता गया।

मुगल काल में हिन्दु संस्कृति को नष्ट करने की जो धारा बह चली उस के अनुसार मुद्रण सामग्री के अभाव में असख्य संख्या में लिखे आयुर्वेद के ग्रन्थ और साहित्य को जलाकर खाक कर दिया गया इस बीच में मुगलों ने एक बुद्धिमानी अवश्य की कि आयुर्वेद के साहित्य को फारसी भाषा में बदल कर अरब और यूनान में भेज दिया अब वह आज भी किसी रूप में प्रस्तुत है। यही नहीं उसी विज्ञान के आधार पर इजिप्ट ने आज के विकसित विज्ञान की आधार शिला रखी।

अंग्रेजों के राज्य में आयुर्वेद के साथ जो कूटनीति पूर्ण सोतेला व्यवहार हुआ वह आप से छिपा नहीं है एक ओर आयुर्वेद के विकास की ओर कोई कदम नहीं उठाया गया दूसरी ओर करोड़ों रुपयों की गगन चुम्बी इमारतें बनाकर भारत की भोली जनता को अपने व्यापार के चक्रव्यूह में डालने की कुत्सित भावना अनेकों मिठाइयां और पैसे बांट-बांट कर इतना परतन्त्र कर लिया कि आजका स्वतन्त्र भारत देश के स्वास्थ्य के माने में सदियों तक विदेशियों का गुलाम बना रहेगा यदि आयुर्वेद का विकास नहीं हुआ।

अंग्रेजों के बाद स्वतन्त्र भारत में आयुर्वेद के विकास की बात सोची जाने लगी तो हमारे नेताओं को आयुर्वेद की वैज्ञानिकता पर सन्देह होने लगा है जिसका निराकरण हम निकट भविष्य में आयुर्वेद के आतुरालयों में करने का प्रयत्न करेंगे किन्तु क्या यह प्रमाण पर्याप्त नहीं है कि आयुर्वेद हजारों वर्षों से अविकसित पददलित राज्याश्रय विहीन रहने पर भी ८% जनता की सेवा कर रहा है।

अब आयुर्वेद ने भी इनक्लाब मचाने का निश्चय किया है जो औषधि कल बाजार में २५) रु० में मिलती थी वह आज १२ आनेमें प्राप्त है तो दूसरी ओर उसी कार्य की दूसरी औषधि २५) रु० में तैयार है जो ५ वर्ष बाद बारह आने में मिलने लगेगी। एलोपैथिक दवाओं के व्यापार से अरबों रुपया विदेशों में जाने पर भी क्या यह सिद्ध नहीं है कि जिन्हें अच्छी से अच्छी चिकित्सा पद्धति प्राप्त होती है वे क्षय रोगी १०% ही जीवित रहते हैं? यही नहीं गत वर्ष ही दिल्ली में फैले पोलियो रोग में आधुनिक तथा कथित विकसित विज्ञान

असफल रहा जब कि अविकसित विज्ञान ने उस समय रक्षा की। क्या आप यह चाहते हैं कि एक पीलिया का रोगी आधुनिक चिकित्सा के २००) रुपये से ठीक किया जावे जब कि आयुर्वेद उसे ५) रुपये में ठीक करने को तैयार है।

अतः आयुर्वेद के विकास के लिये केन्द्रकी नीति में तत्काल आवश्यक परिवर्तन के साथ अलग आयुर्वेदिक स्वास्थ्य मन्त्रालय, आयुर्वेदिक डायरेक्टर और केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद् की मांग को आप बल देंगे।

राजस्थान में आयुर्वेद—

राजस्थान में आयुर्वेद की स्थिति दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा जहां कुछ अच्छी है। वहां दूसरी ओर अनेकों बातों में बहुत पिछड़ी हुई है जिसका विकास आवश्यक है और यह उत्तरदायित्व हम आप पर सोंप रहे हैं। जिन विषयों पर जिस प्रकार विकास करना है, वह प्रस्तुत है।

आयुर्वेद-शिक्षा—

(१) राजपूताना विश्व विद्यालय में आयुर्वेदिक फैकल्टी अलग से बनाई जाकर आयुर्वेद-शिक्षा का संचालक विश्वविद्यालयी प्रणाली द्वारा किया जाना चाहिये, आज राजस्थान में आयुर्वेद परीक्षाओं की व्यवस्था माध्यमिक बोर्ड के समान होती है जो उचित नहीं है।

(२) वर्तमान में राजस्थान के दो आयुर्वेद कॉलेज चलाये जा रहे हैं। जिन्हें समान रूप में विकसित करने की व्यवस्था की जानी चाहिये। इस भावना के अनुसार दोनों कॉलेजों के भवनों में सुधार आवश्यक है, इसके लिये कम से कम तीन तीन लाख रुपया दोनों कालेजों को इसी वर्ष दिलाये जाने चाहिये।

इन भवनों में शवच्छेदनालय, प्रदर्शनालय प्रयोगशाला कम से कम ३०० खाट का आतुरालय शल्य कर्मालय आदि आवश्यक अङ्गों को विशेष महत्व दिया जाय। इसके साथ छात्रावास, निर्माणशाला, औषध उद्यान, कालेज के साथ ही रहनी चाहिये। राजस्थान से अन्य प्रान्तों में जो आयुर्वेदिक कालेज है वे उक्त व्यवस्थाओं से सुसम्पन्न हैं और हमारे कालेज इन सब स्थितियों से इतने साधन विहीन हैं कि कालेज से निकलने वाला स्नातक साधनों के अभाव से ज्ञान शून्य अपने को पाता है।

(३) कालेजों का बजट बहुत कम है आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि जहाँ एक मेडीकल कालेज का बजट ३० लाख है। वहां, एक आयुर्वेद कालेज का बजट ३० हजार है। इसलिये यह आवश्यक है कि कालेजों का बजट बढ़ाया जाया। उदाहरण के तौर पर जहां एलोपैथी के एक लेक्चरार को एक हजार रुपया मासिक मिलता है वहां आयुर्वेद के एक लेक्चरार को १५०) रु० मासिक वेतन मिलता है। अतः वेतन में समानता के दृष्टिकोण को रख कर अन्य साधन सामग्रियां बढाई जानी चाहिये, प्रयोगशाला, प्रदर्शनी आदि सर्वथा आज साधन विहीन हैं। प्रसूति कौमार भृत्य के प्रशिक्षण की राजकीय पेमाने पर कोई व्यवस्था नहीं है। जब शिक्षा ही आप न दें तो स्नातक गांव में जाकर क्या करेंगे। कालेजों में अष्टाङ्ग आयुर्वेद की शिक्षण के लिए २४-२४ अध्यापक होने चाहिए।

(४) स्नातकोत्तर प्रशिक्षण की व्यवस्था के साथ राजकीय सेवामें समलग्न वैद्यों के लिए रिफ्रेशर कोर्स का तत्काल प्रारम्भ किया जाना आवश्यक है।

चिकित्सालय और चिकित्सा—

(१) आज का आयुर्वेद औषधालय टूटी फूटी झोंपड़ी में पड़ा दीन हीन और असहाय, साधन विहीन एलोपैथी के गगन-चुम्बी और आवश्यकता से अधिक साधन सम्पन्न चिकित्सालयों के मुकाबले ठीक नहीं पाता है। इस सत्य को स्वीकार करने के साथ चिकित्सालयों का सुधार किया जाना चाहिये। (१) औषधालयों के भवन बनाये जाय, (२) चिकित्सालय में अनिवार्यतः एक वैद्य एक नर्स एक कम्पाउडर एक एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी दो हजार की वार्षिक औषध तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए ५०० का बजट रखा जाना चाहिये। एलोपेथिक औषधालयों में एक डाक्टर दो कम्पाउडर एक नर्स कर्मचारी५०००

हजार की दवा अन्य उपकरणों के लिये अलग बजट रहता है। जब कि आयुर्वेदिक औषधालयों में केवल एक वैद्य और एक कर्मचारी रहता है। नर्स के अभाव में गांव वालों के माता बहिनों के आन्तरिक व्यवस्था करने में वैद्य नर्स के अभाव से असफल हो जाता है। दो सौ रुपये की औषधि एक औषधालय को दी जाती है। जिसका अनुपात ५ पांच आना प्रतिदिन भी नहीं होता है। पांच आने में ६० रोगियों की चिकित्सा एक ओर दूसरी ओर ५० रोगियों की चिकित्सा में १०००० हजार की वार्षिक औषधियां मिलती है। गांवों के लोग साधन अधिक होने से ही आज एलोपैथिक डिस्पेन्सरियों की मांग बढ़ाते जा रहे हैं। यदि इतने ही साधन आयुर्वेदिक औषधालयों को दिये जायें तो आप सच मानिये देश के स्वास्थ्य का नक्शा पाँच वर्षों में ही विश्व में सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लें।

(२) वैद्यों का वेतन ६० रु० माहवार है उसके अनुसार एक वैद्य तीन आना घंटा में जनता की स्वास्थ्य सेवा करता है। जब कि एक दूसरे चिकित्सक को २२५) रु० माहवार देने बाद भी ३०) रुपये का विलेज अलाउन्स देने में राज्य को कोई संकोच नहीं होता है। एक क्लर्क जो आयुर्वेद में आने वाले छात्र की योग्यता वाला होता है उसे ६०) रुपया माहवार मिलता है। फिर वह छात्र मेट्रिक परीक्षा पास कर क्यों ६ वर्ष का समय व्यतीत करेगा। अतः वैद्य का उच्चत्तम वेतन १५०) रुपया माहवार रहना चाहिये और उसे भी ३०) रुपया माहवार विलेज अलाउन्स मिलना चाहिये। यह ध्यान रखने योग्य है कि राजस्थान से भिन्न प्रान्तों में वैद्य का उच्चतम वेतन १००) रुपया है जिसके भी परिवर्तन की संभावना है।

(३) सारे राजस्थान में एलोपैथीक अस्पतालों में ८००० हजार खाटों का प्रबन्ध है। वहां सारे राजस्थान में आयुर्वेदिक अस्पतालों और कालेजों में कुल मिला कर १०० खाटों का भी इन्तजाम नहीं है और ये १०० खाट भी इतने दयनीय हैं कि वास्तव में इस पर दया आ जाती है। अतः प्रत्येक 'अ' श्रेणी के औषधालय में कम से कम ३०० खाट 'ब' श्रेणी के औषधालयों में ५० खाट व कालेजों में ३००-३०० तीन सौ तीन सौ खाटों का इन्तजाम इनके पूरे साधनों के साथ किया जाना चाहिये। अस्पतालों में पट्टियें रूई मरहम सुई डोरा जैसी साधारण वस्तुयें भी समय पर उपलब्ध नही रहती। अतः खाटोंके साथ औषधालयों के बजट को त्वरित गति के साथ बढ़ाना होगा।

अनुसंधान—

राजस्थान में अनुसंधान की योजना शीघ्र लागू की जानी चाहिये राजस्थान में प्राप्त वनस्पतियां यदि खोजी जाँय तो राजस्थान को वनस्पतियों से बहुत बड़ा आर्थिक लाभ भी सम्भव है। विदेशों में एक रोग के लिए करोड़ों रुपया व्यय करने के बाद कोई परिणाम सामने आता है और नहीं भी आता है। उसके मुकाबिले हजारों वर्षों से पीडत सारे आयुर्वेद के अनुसन्धान के लिए ५-६ लाख रुपया देना उल्टा आयुर्वेद के लिए घातक है। अतः अनुसन्धान के लिए अधिक राशि दी जानी चाहिये। अनुसन्धान की योजना राजस्थान वैद्य सम्मेलन द्वारा स्वीकृत किया जाना उपयुक्त होगा।

रसायनशाला—

(१) औषध कानून बनाया जाना चाहिये ताकि अच्छी बनस्पतियां उपलब्ध हो सकें।

(२) वनस्पतियों के संग्रहालय राज्य के भिन्न भिन्न डिविजनों में बनाये जायं।

(३) राज्य की उपजाऊ भूमि में बनस्पतियों की खेती की जाय।

(४) राज्य की रसायनशालाओं का एकीकरण कर एक निश्चित फार्मोकोपिया तैयार किया जाय।

(५) औषध नियन्त्रण कानून बनाया जाय ताकि समान मूल्य पर समान रूप से बनी आयुर्वेदिक औषधियां देश के किसी भी भाग में प्राप्त हो सके।

(शेष पृष्ठ ४८ पर देखें)

वैद्यों के अनुभूत प्रयोग

—विषम ज्वर (मलेरिया) और ये शास्त्रीय योग—

रजि. वैद्य सरयूप्रसाद भट्ट 'मधुमय' विशारद

जाड़ा देकर आने वाले बुखार को मलेरिया-शीत-ज्वर-जूड़ी ज्वर कहते हैं। बहुधा यह आश्विन, कार्तिक, अगहन इन महीनों में पैदा होने वाली मौसमी व्याधि है। इकतरा-तिजारी-चौथिया इसके भेद हैं सर्व साधारण इनसे परिचित हैं। हम अपने विषय के अनुसार मात्र विभिन्न शास्त्रीय औषधियों की ओर अंगुलि निर्देश कर रहे हैं मेरी चिकित्सा में ये सदा व्यवहृत प्रयोग हैं। इन योगों के सामने मुझे कभी किसी पेटेन्ट (नव) औषधि के व्यामोह में नहीं पड़ना पड़ा।

ज्वर—सिद्धान्त के अनुसार समयानुसार रोगी के बल-वय प्रकृति को देखकर बेधड़क इनका प्रयोग कर लाभ उठाना चाहिए। ज्वर आते ही आमावस्था में ही एकदम औषधि-प्रयोग नहीं करना चाहिए लगभग पांच दिनों तक तो इस बीमारी में औषधि नहीं देना चाहिये, जहाँ तक हो सके लंघन कराके दोष पक्व कराना चाहिए। लंघन-काल में मोसम्बी-रस, अनार-रस, मुनक्का इत्यादि रोगी को देना चाहिये। पानी पकाकर ठंडा करके देना चाहिये। मलेरिया (विषम ज्वर) के रोगी को नव ज्वर में दूध नहीं देना चाहिये।

—औषधि-व्यवस्था—

श्री मृत्युञ्जय रस—तुलसीरस, शहद ३-३ माशे १-१ गोली सुबह शाम दें।

त्रिभुवन कीर्ति रस—तुलसीरस, शहद से ३-३ माशे में।

मृत्युञ्जय रस चढ़े ज्वर में भी दे सकते हैं इस से ज्वर का नियमन होता है रोग बढ़ने नहीं पाता पेशाब और पसीने द्वारा बुखार को निकाल देता है। इसी तरह त्रिभुवन कीर्ति रस अंगड़ाई कफाधिक्य में लाभकारी है।

"प्रवाल-गिलोय"—प्रवाल १ रत्ती गिलोय २ रत्ती मिला कर गरम किए हुये ठंडे जल से देने से मलेरिया में होने वाली अन्तर्दाह-बेचैनी-तृषा में लाभकारी है।

ज्वरारि अभ्रक (भै. र.)—केवल पका कर ठंडे जल से दें, या तुलसीरस, मधु ३-३ माशे में मिलाकर दें। या गिलोय रस, मधु ३-३ माशे में मिलाकर दें। इस से हर तरह का बुखार विशेष कर मलेरिया आराम होता है इसे चढ़े ज्वर में भी दे सकते हैं।

ज्वर शूल हर रसः (भै. र.)—पान के रस, मधु ३-३ माशे से दें इससे चातुर्थिक आदि समस्त विषम ज्वर अच्छे होते हैं।

'आरोग्यवर्द्धिनी'—मलेरिया के रोगी को मलोपचय होता है। आरोग्यवर्द्धिनी से पेट साफ होकर ज्वर-निवृति में सहायता मिलती है आरोग्यवर्द्धिनी मलेरिया में ७ वें ८ वें दिन देना अच्छा रहता है। १-१ गोली पका कर ठंडे किए जल से दें। यह सदैव-पथ्या हृद्य-दीपनी-पाचनी सर्व रोग नाशनी है।

विषम ज्वर यदि हठी किस्म का हो १०-११ दिन हो जावें और न छूटे तब शास्त्रीय इन महारसों का प्रयोग करें।

पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लोह—१ रत्ती १॥ माशे पीपल चूर्ण, ३ माशे शहद में मिलाकर दें। या—

सर्व ज्वर हर लोह बृहत्—१-१ गोली ३ माशे तुलसी रस, ३ माशे शहद से दें। याः—

जय मंगल रस—½ रत्ती १॥ माशे जीरे के चूर्ण, ३ माशे शहद में मिला कर दें। दोपहर को अमृतारिष्ट जल से दें। ११ दिन बाद विषमज्वर जीर्ण होता है तब उपरोक्त तीनों रसों में से कोई भी दें या बदल बदल कर दें।

पथ्य में मूंग की दाल का यूष—दूध आदि दें। धीरे-धीरे पूर्णारोग्य होने पर भोजन और आहार विहार की मात्रा बढ़ावें आयुर्वेद में और भी विषम-ज्वर नाशक-शीतभंजी, शीतज्वरारि, ज्वरांकुश, महा-ज्वरांकुश आदि रस हैं मैंने उनका वर्णन नहीं किया। चिकित्सक इनका भी समयानुसार प्रयोग करें। भाद्रपद, आश्विन मास में यदि लघु जुलाब अश्वा-चौली रस आदि का ले लें तो प्राकृत ज्वर विषमज्वर से त्रस्त नहीं होना पड़े।

—(पृष्ठ ३९ का शेष)—

जिस घर में रोगी हो उसके कुए में पोटासियम परमगनेंट तथा नाली में फिनायल डालते रहना चाहिये। जिस योग को पचानवें फी सदी रोग अच्छा करने का श्रेय रहा निम्नांकित है।

शृंगभस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म ½ रत्ती, मकरध्वज ¼ रत्ती यह एक मात्रा है। इसे शर्बत वासा आधे तोले से दीजिये। चौबीस घण्टे में रोगी तथा रोग का बल देख कर आठ मात्राएँ तक दी जा सकती हैं।

गर्भवती तथा पैत्तिक प्रकृति के रोगी को औषधि देते समय प्रवाल भस्म मिली दीजिये। गैस्ट्रो इनटेस्टाइनल में कपूर रस की भी तीन मात्राएँ दीजिये। आधुनिक औषधियों में एरोमाइसीन तथा टेरीमाइसीन सफल पायी जाती हैं यद्यपि ये रोगी को बहुत कमजोर कर देती हैं।

रोग की रोक—प्रातः अर्क दुग्धेन मारित दो रत्ती श्रृंग भस्म गरम दूध से या शहद से लीजिये। सायंकाल लोह तथा ताम्र भस्म पड़ा हुआ विजया पर तैयार किया गया सिर्फ एक तोले पानी मिलाकर खाना खाने के बाद घृतकुमारी आसव लीजिये। नमी वाली जगह में न तो काम कीजिये और न सोइये। बरफ खाना तथा लस्सी पीना भूल जाइये। नाली में एक औंस फिनायल तथा कुये में एक ड्राम पोटाशियम परमेंगनेट डालना हर सातवें दिन कभी न भूलिये। यदि आप अजवायन मिला गूगल की धूप घर में देंगे तो मलेरिया भी भाग जावेगा। वासी फल, वासी खाना, बाजारू मिठाई तथा चाट चटनी खाना और इस समय के रोग हैजा, इन्फ्लुएञ्जा या मलेरिया को आमन्त्रित करना एक ही बात है। यदि आप उपरोक्त सावधानियां कर रहे हैं तो इस रोग की तथा कीटाणुवाद की खूब हंसी उड़ाइये रोगियों को आप खांसने तथा छींकने दीजिये पर आपको रोग न होगा। ये सभी रोजाना की अनुभूत बातें हैं।

—(पृष्ठ ४० का शेष)—

रास्तों में न घूमना, आदि का ध्यान रखना चाहिए। यदि छोटी पीपल २-२½ रत्ती रोज शहद में चाटते रहना, व पोहकरमूल का चूर्ण २-२-या ४-४ रत्ती शहद से चाटते रहना, चित्रक की छाल का भी चूर्ण ३-३ रत्ती शहद से चाटते रहना। कचूर के टुकड़ों को हरदम मुँह में रख चूसते रहने से तथा सब से ज्यादा उपयोगी पेट को साफ रखने से इससे बचने का सही उपाय समझें। यदि ज्वर से आक्रमित हो जावे तो स्वच्छन्द भैरव रस की १-१ गोली व एक-एक रत्ती की मात्रा पान में दिन में तीन बार खानी चाहिए। और भारंग्यादि क्वाथ, गुलबनफसादि क्वाथ, व कालीमिर्च, तुलसीपत्र व दालचीनी का क्वाथ लेते रहें। शहद व पान का रस अदरख का रस मिलाकर दिन में तीन बार लक्ष्मी विलास, त्रिभुवनकीर्त्ति, अभ्रक भस्म, जयमंगल रस आदि प्रयोग करें फायदा होगा। छातीपर अलसी व तारपीन तैल की मालिश कर सेकना उपयोगी है मलावरोध में मुनक्का दूध में औटा कर लेते रहें-या मेगनेसिया साल्ट (मेकसल्फ) २-२ तोला पानी में घोलकर पीते रहें। वैसे मैंने जो कुछ भी परिचर्या के आधार पर अनुभव हजारों रोगियों पर किया है वह साधारण यह है कि—

संजीवनी वटी १६ गोली, श्रृंगभस्म ६ रत्ती गोदन्ती भस्म ८ रत्ती शुभ्रा-(स्फटिक भस्म ८ रत्ती) सौभाग्य ४ रत्ती की ४ खुराक दिन में-३-३-घण्टे से लोंग मिश्री के पानी से दिया यह उपरोक्त सभी औषधियों से उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस रोग के शमन होने के बाद भी रोगी को निर्बलता, थकावट बहुत दिनों तक बनी रहती है उसके लिए मुक्ता, प्रवाल भस्म, १॥ रत्ती देने से उपयोगी सिद्ध हुआ है। या ज्यादा उपयोगी तो मालतीवसंत व सितोपलादि चूर्ण सिद्ध हुआ है साथ में अमृतारिष्ट पिलाने से बहुत ही उपयोगी रहा है। सर्व साधारण के लिए सिर्फ गिलोय से बनी हुई संशमनी वटी ४-४ गोली दूध के साथ दिये जाने पर शक्तिह्रास में फायदा हुआ है। हल्का भोजन व कई दिनों तक घृत का उपयोग न करना ही दूसरी बार आक्रमण से बचाता है।
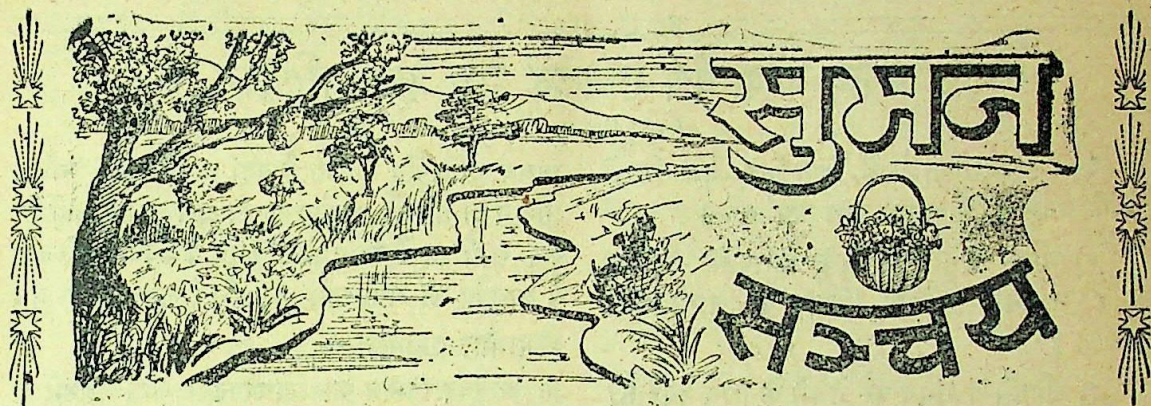
छोटे बालक की माता का दूध बढ़ाने का यशस्वी प्रयोग

(ले० सौ० सोनुताई नेगे)

वर्तमान में शिशुओं की अनेक माताओं के शरीर सबल और निरोगी होनेपर भी संतान के लिए दूध उत्पन्न नहीं होता, ऐसी शिकायत चारों ओर से सुनने में आती है। इन बच्चों को ऊपर का दूध पिलाते हैं; किन्तु वह कई बच्चों की प्रकृति को नहीं मानता। परिणाम में कई बालक अकाल में ही मृत्युकी शरण ले लेते हैं। ऐसी माताओं को निम्न औषधि का सेवन कराने पर निःसंदेह दूध बढ़ जाता है।

१ केंचुवे को लेकर अच्छी तरह जलमें धो,काट कर छोटे टुकड़े करो उसे कत्था चुना लगे हुए नागरवेल के पान में डालकर खिलादेवें। तीसरे-तीसरे दिन १-१ केंचुवा २-३ बार देनेसे दूध अधिकतर उत्पन्न होता है।

पशुओं को दूध कम हो, तो पशुओं को भी ५-१० केंचुवे की चटनी खली के भीतर ४-८ बार खिलाने से दूध बढ़ जाता है।

सूचनाः—जिन माताओं को ऊपर की औषधि दी जाय, उनको खोल कर देखने का निषेध करें। भगवान् धन्वन्तरि पर श्रद्धा रखकर सेवन करने का कह कर दृष्टि के समक्ष खिला देवें।

(मराठी आरोग्य मन्दिर से साभार उद्धृत)

जिह्वा का केन्सर ?

स्वर्गवासी लक्ष्मणराव पांगार कर और नाशिक, दोनों का प्राचीन ऋणानुबन्ध था। "चरित्र चन्द्र" (जीवनी) मात्र पढा,उसके भीतर निम्न वर्णन लिखा है।

उसके जिह्वाके मध्य भागमें सुपारी जितनी कठोर गांठ थी। शस्त्रक्रिया से उसे निकलवा देने पर १ मास के भीतर ही पुनः होगई। उस पर रेडियम का प्रयोग किया किन्तु लाभ नहीं हुआ। फिर डाक्टरों ने जिह्वा को जड़से काट कर निकाल देनेकी सलाह दी।

केले के गर्भ का प्रयोग।

किन्तु पांगार कर को यह नहीं जचा। उन ने स्वयं स्फूर्त उपचार प्रारम्भ करके रोग को दूर किया। प्रतिदिन केलेके वृक्षके गर्भ को पत्थरपर घिस, जिह्वा पर लगा १५ दिन तक लार को निकालते रहते थे। प्रातः सायं धारोष्ण गोदुग्ध पान करते थे। एवं गोदावरीमें २-३ घण्टे तक यथेच्छ तैरते रहते थे और गोता लगाते रहते थे।

यह रोग कितने मास में दूर हुआ था, यह उस ग्रन्थ में नहीं दर्शाया है। किन्तु "एक महा अरिष्ट से मुक्त हुआ" ऐसा लेख मिलता है। आयुर्वेद के अभिभावी इस उपचार से कार्य कारण का शोध कर सके, इसी उद्देश्य से यह लेख दिया है।

डॉ० र० कृ० गर्दे०

(आयुर्वेद पत्रिका मराठी से साभार उद्धृत)

— राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन द्वारा प्रदत्त प्रतिवेदन —

(पृष्ठ ४४ का शेष)

(६) रसायनशालाओं के डिपो भिन्न-भिन्न जिलों में खोले जाय ताकि जनता लाभ उठा सके।

(७) औषध निर्माण के लिये विशषज्ञों की एक समिति रसायनशालाओं के विकास के लिए स्थापित की जाय।

(८) औषधियां समय पर भेजने के लिए ट्रकों की व्यवस्था की जाय।

(९) रसायनशालाएँ आधुनिकतम यन्त्रों से सज्जित हों तथा कर्मचारियों की संख्या पूर्ण हों।

सार्वजनिक स्वास्थ्य—

(१) आयुर्वेद में पब्लिक हेल्थ के सम्बन्ध में जितना साहित्य और विज्ञान मिलता है ? वह विश्व के किसी विज्ञान में आज भी उपलब्ध नहीं हैं। यही नहीं आयुर्वेद का छात्र आधुनिक हेल्थ सम्बन्धी ज्ञान को अपने शिक्षण में प्राप्त करता है अतः पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेन्ट म्युनिसिपैल्टियों आदि में वैद्यों को भी कार्य करने का पूरा अवसर मिलना चाहिये।

(२) शिक्षा में ग्यारहवीं कक्षा तक आयुर्वेद का स्वस्थ वृत्त सद् वृत्त आदि सहित एक प्रश्न पत्र अनिवार्यतः रखा जाना चाहिये।

(३) ऋतुचर्या, रात्रिचर्या, स्वस्थ वृत, सद् वृत्त की डाक्युमेन्टरी फिल्में तैयार की जाकर गांव गांव में प्रचारित की जानी चाहिए।

(४) रेडियो प्रोग्राम में एक घण्टा प्रतिदिन स्वस्थ वृत्त, सद् वृत्त के प्रचार प्रसार के लिए मिलना चाहिये।

पञ्चवर्षीय योजना—

इस में आयुर्वेद के विकास का समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। अतः इस योजना पर पुनः विचार कर आयुर्वेद को अधिकतम धनराशी दिलाई जानी चाहिये। जहां विकसित एलोपेथी के लिए ६ करोड़ रुपया रखा गया है वहां आयुर्वेद के विकास के लिए केवल ४० लाख रुपया मिला है। क्योंकि सारे विकास का आश्रय पञ्चवर्षीय योजना है वहां आयुर्वेद को अधिक राशि न दी गई तो आयुर्वेद का विकास सम्भव नहीं है। अतः सभी कार्यों की पूर्ति के लिए पञ्चवर्षीय योजना में आयुर्वेद को अधिकतम धनराशि दिलाना ही होगा।

विभागीय प्रशासन—

आयुर्वेद विभाग का डायरेक्टर (अ) श्रेणी के अधिकारों वाला होना चाहिये (२) आयुर्वेद विभाग के इन्सपेक्टर गजटेड होने चाहिये जहां डिप्टी इन्सपेक्टर गजटेड हो वहां आयुर्वेद के इन्सपेक्टर गजटेड न हो अजीब आश्चर्य है। (३) प्रत्येक जिले में एक २ जिला आयुर्वेद अधिकारी प्रत्येक डिविजन में एक-एक प्रादेशिक अधिकारी तीन डिप्टी डायरेक्टर एक असिस्टेन्ट डायरेक्टर एक टेक्नीकल एडवाइजर, एक प्रचार अधिकारी नये नियुक्त किये जाने चाहिये।

विभाग के वर्तमान कार्यालयों में कर्मचारियों का सर्वथा अभाव है। जहां ५०० व्यक्तियों को प्रति माह वेतन देना पड़ता है वहां केवल दो क्लर्क होने से न तो वेतन ही ठीक समय पर मिल पाता है और न साधन सामग्री मिल पाती और न समय पर निरीक्षण हो पाता है अतः जब तक उक्त व्यवस्था न हो तब तक एक एक निरीक्षक के पास ५ पांच क्लर्क और एक डिप्टी इन्सपेक्टर दिया जाना उचित है।

अन्य आवश्यक—

(१) भारत से बाहर विभिन्न स्वास्थ्य संगठनों के सम्मेलनों पर आयुर्वेद के भी प्रतितिधि भेजे जाने चाहिये (२) आयुर्वेद के चिकित्सा शिविरों के आयोजना राज्य द्वारा की जानी चाहिये। (३) इन्डियन मेडिशन बोर्ड के अधिकारों को उचित मान्यता प्रदान की जानी चाहिये। (४) राजस्थान में राजकीय पैमाने पर आयुर्वेदिक सेमिनारों की आयोजना होनी चाहिये।

आशा है आपकी शक्तिशाली आवाज उक्त तथ्यों को शीघ्र ही अनुपालित करा राजस्थान के गौरव को अक्षुण्ण रखेगी।

लोक सभा में आयुर्वेद की गूंज

भारतीय लोक सभा के विगत अधिवेशन में बहस के समय अधिकांश वक्ताओं ने इस बात की मांग की कि सरकार औषधियों की भारतीय प्रणालियों को अधिक प्रोत्साहन दें।

श्री भगवतदीन (कांग्रेस) ने इस बात पर बहुत अधिक बल दिया कि खासकर गांवों के अस्पतालों के लिए आयुर्वेदिक तथा यूनानी औषधियां उपलब्ध की जाएं। इन औषधियों पर व्यय कम होता है और इनका उपयोग में लाना भी सरल है।

पंडित ठाकुर दास भार्गव (कांग्रेस) ने कहा कि वैज्ञानिक तरीके से तैयार आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयों को प्रोत्साहन दिया जाए।

कुमारी मणि बेन पटेल (कांग्रेस) ने औषधियों की भारतीय प्रणालियों को प्रोत्साहन देने पर बहुत बल दिया। श्री एच. सी. दासप्पा (कांग्रेस) ने कहा कि सरकार को चाहिए कि वह किसी भी प्रणाली की दवाइयों की उपेक्षा न करे।

अन्त में स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुदानों की मांगों पर हुई बहस का उत्तर देते हुए स्वास्थ्य मंत्री ने पहली बार यह घोषित किया कि सरकार का किसी प्रणाली से कोई विरोध नहीं है, वह देशी दवाइयों का भी प्रयोग करने को तत्पर है।

कमिश्नरी वैद्य सभा कार्यकारिणी की घोषणा

श्री शास्त्री पुनः मन्त्री निर्वाचित

उदयपुर डाक से—

उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा के अध्यक्ष वैद्य भवानी शंकर शर्मा ने सभा की कार्य कारिणी की घोषणा आज एक बैठक में करदी। सभा के महामंत्री पद पर वैद्य मिश्री प्रसाद शास्त्री, प्रचार मंत्री राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन घोषित किये गये। शेष पदों पर निम्न व्यक्ति घोषित किये गये हैं—

उपाध्यक्ष—श्री गोरी शंकर उपाध्याय, राजस्थान सेवा संघ, डूंगरपुर रामचन्द्र जी शर्मा उपाध्यक्ष जिला कांग्रेस कमेटी, भीलवाड़ा। वैद्य भागीरथ जोशी। संयुक्त मंत्री—उदयलाल महात्मा, नवनीत लाल व्यास, लाभ शंकर जोशी, घनश्याम भट्ट,। अर्थ मंत्री जगन्नाथ जी शर्मा, इन्सपेक्टर, आयुर्वेद विभाग, उदयपुर। आय व्यय निरीक्षक–श्री श्यामसुन्दर शर्मा उपसंचालक, आयुर्वेद विभाग । सदस्य सर्व श्री प्रेम शंकर शर्मा, संचालक आयुर्वेद विभाग, यमुनालाल शर्मा, डा० आत्म प्रकाश, दामोदर त्रिवेदी, माधवलाल, छीतरमल त्रिपाठी, सिद्धि शंकर शर्मा, गंगा राम शर्मा, इन्सपेक्टर आयुर्वेद विभाग डूंगरपुर। गिरधर शर्मा, हकीम आत्माराम, रूपलाल महात्मा, काशीनाथ शर्मा, कल्याण दास, दीपशंकर शर्मा, मधुकान्त भट्ट, हनुमान प्रसाद छीछी, श्याम सुन्दर–गंगरार, नर्बदा शंकर, चन्द्रशेखर–आकोला, सम्पादक मिश्रीप्रसाद शास्त्री।

इसके साथ ६० सदस्यों की एक स्थाई समिति की भी घोषणा की गई है जिसमें भारत सरकार के आयुर्वेद सलाहकार कविराज प्रतापसिंह भी सम्मिलित हैं।

आयुर्वेद विश्व भारती का नया सत्र

आयुर्वेद विश्व भारती सरदारशहर में एक वर्षीय वैद्य विशेष योग्यता पाठ्यक्रम रिफ्रेशर कोर्स चालू है जिसमें रजिस्टर्ड वैद्य या आयुर्वेद विशारद परीक्षोत्तीर्ण वैद्य प्रवेश पा सकेंगे। यह कोर्स भारतवर्ष में अपने ढंग का निराला एवं राजस्थान सरकार से मान्यता प्राप्त है। आधुनिक शल्य शालाक्य आदि प्रायोगिक विषयों की न्यूनता जो वैद्य समुदाय में पाई जाती है उसे दूर करने का यह प्रयास है। इसमें प्रविष्ट होने वाले छात्रों को १५) रु० प्रतिमास की सीमित छात्र-वृत्तियां भी दी जावेगी। इसके अतिरिक्त भिषग्वर परीक्षा का त्रिवर्षीय कोर्स भी इसी सत्र से चालू किया जा रहा है जिसमें संस्कृत के साथ मैट्रिक उत्तीर्ण

अथवा तत्सम संस्कृत परीक्षोत्तीर्ण छात्र प्रविष्ट किये जायेंगे। २०) रु० प्रतिमास की सीमित छात्रवृत्तियां दी जावेंगी तथा शिक्षा का प्रबन्ध निःशुल्क होगा। आतुरालय, प्रयोगशाला, रसायन शाला, छात्रावास आदि का समुचित प्रबन्ध है। इन्फ्लुएन्ज़ा के कारण नया सत्र २२ अगस्त ५७ से प्रारम्भ हो रहा है। प्रवेशार्थी शीघ्रता करें स्थान कम है। प्रिंसिपल

आयुर्वेद विश्वभारती

आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का निर्वाचन सम्पन्न

जोधपुर डाक से दिनांक ४-८-५७ को मध्याह्न में २ बजे श्री चाणोद गुरांसा के भवन में श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का वार्षिक अधिवेशन आरंभ हुआ जिसमें पं० परमानन्द जी शर्मा साहित्य शास्त्री, भिषग्वर, आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न बहुमत से निर्वाचित हुये। शर्मा जी ने अपने प्रतिद्वन्द्वी वैद्य लक्ष्मीनारायण जी आसोपा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य को ७ अधिक मत प्राप्त कर पराजित किया। इसके पश्चात् निम्नलिखित कार्यकारिणी के सदस्यों का निर्वाचन हुआ।

(१) वैद्य टीकमदत्त जी व्यास
(२) वैद्य सत्यदेवजी अर्श भगन्दर विशेषज्ञ
(३) वैद्य जेठमलजी शर्मा
(४) वैद्य रामचन्द्र जी शास्त्री
(५) वैद्य रामचन्द्र जी कौशिक
(६) वैद्य मोहनलाल जी दाधीच आयुर्वेदाचार्य

साथ ही मुनि श्री देवेन्द्रकुमारजी का कोषाध्यक्ष के पद पर तथा आय व्यय निरीक्षक पद पर श्री लौंगमलजी का निर्वाचन हुआ। भवन निर्माण के लिए संयोजक श्री मन्शारामजी शास्त्री चुने गये एवं ट्रस्ट के सदस्य श्री भारतभूषण जी के निधन से रिक्त स्थान पर श्री कविराज मानचन्दजी का निर्वाचन हुआ। अन्त में राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्यसमिति के लिये जोधपुर जिला से प्रतिनिधि रूप में वैद्य श्री गणेशीलालजी रंगा का निर्वाचन किया गया।

अवशिष्ट पदाधिकारियों की घोषणा नवनिर्वाचित सभापतिजी शीघ्र ही करेंगे। का० प्रधानमंत्री

श्री मारवाड़ आयुर्वेदप्रचारिणी सभा, जोधपुर

"स्वर्ण वसन्त मालती"

महा सम्मेलन पत्रिका में श्री चरण तीर्थ जी महाराज ने स्वर्णमालिनी वसन्त पाठ निर्णय के सम्बन्ध में शास्त्र दृष्टि से विस्तृत स्पष्टीकरण किया है। दूसरी ओर अनुभूत योग मालामें भी श्री पं० हरिहरदयालु जी ने स्वर्ण मालिनी वसन्त में अपनी ओर से और अन्य विद्वानों की ओर से विचारणीय लेख दिये हैं।

इस मत भेद का समाधान शास्त्र दृष्टि की अपेक्षा अनुभव के आधार पर हो तो आयुर्वेद-साहित्य और सामान्य जन-समाज को अधिक लाभ होने की आशा है। ऐसी मेरी समझ है। विशेष निर्णय करना, यह विद्वानों पर छोड़ता हूँ।

कई बार प्राचीन पाठों में विद्वानों को समयानुसार परिवर्तन करना पड़ता है। जब सामान्य परिवर्तन अधिक लाभ प्रतीत होता है, तब प्राचीन पाठ के स्थान पर नये संशोधित पाठ को स्वीकार करना लाभप्रद माना जावेगा।

जैसे "अमीर रस" सिद्ध भेषजमणिमाला कार ने प्रकाशित किया है। उस पाठ में सुनहरी गोटा मिलाया है। उस तरह "अमीर रस" बनाने पर गोटा में स्थित चान्दी का लाभ विशेष नहीं मिलता। विपरीत अमीर रस में कच्चा पारद चमकता रहता है। जिससे उपयोग करने पर भावी हानि होने का भय भी बना रहता है। ऐसी अवस्था में रसतन्त्रसार के लेखक ने चान्दी के स्थान पर मल्ल मिलाकर बालुका यन्त्र में तैयार करने का विधान किया है। परिणाम में एक साथ विशेष परिमाण में "अमीर रस" बना सकते हैं। गुण-धर्म में वृद्धि होती है और भावी आपत्ति का भय भी निर्मूल हो जाता है। इस प्रत्यक्ष अनुभव के हेतु से प्राचीन पाठ का त्याग कर संशोधित पाठ को स्वीकार करना पड़ता है।

इसी तरह श्री चरणदासजी महाराज के कथनानुसार बनी हुई स्वर्णमालिनी और कई स्थानों में प्रचलित स्वर्ण मालिनी, जिसमें गोदुग्ध का मक्खन २॥ तोले मिला फिर फिल्टर किया हुआ नीम्बू रस

मिलाकर सात दिन खरल करायी वसन्त मालती से कौन अधिक उपकारक होती है ? जो अधिक उपकारक हो उसको स्वीकार करना चाहिए।

श्री. डॉक्टर माधव पुरुषोत्तम जोशी एल.सी.पी.एस.की

आयुर्वेद के विद्यार्थियों को सच्ची सलाह

आयुर्वेद शास्त्र का शिक्षण महा विद्यालय में पूर्ण होने के पश्चात् प्रत्यक्ष वैद्यक व्यवसाय का प्रारम्भ करने के पहले किसी एक आतुरालय (Hospital) में प्रत्यक्ष सेवा करना, यह अपने आपमें आत्मविश्वास उत्पन्न होने की दृष्टि से अति आवश्यक है, शिक्षण क्रम पूरा होकर पदवी की प्राप्ति होने पर वैद्यक विषय में मात्र प्रवेश करने की योग्यता आई है, इसका यह निदर्शन है। इसके आगे भावी आयु में ही सच्चा अभ्यास करने का है एवं सच्चा कहो तो जन्म भर मनुष्यों को विद्यार्थी ही रहना चाहिए।

आयुर्वेद (मराठी) पत्र से साभार उद्धृत,

कृष्ण गोपाल धर्मार्थ चिकित्सालय

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा संचालित कृष्ण गोपाल धर्मार्थ चिकित्सालय एवं आतुरालय में १ जुलाई १९५७ से ३१ जुलाई १९५७ तक १ मास में ३६८४ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई उनमें नूतन रोगी १३९५ पुरातन रोगी २२८९ आये। नवागन्तुक रुग्णों का रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार है।

ज्वर १००, नेत्ररोग ९८, व्रण १८४, पामा ८, दन्त रोग ८, प्रदर ३४, प्रमेह ५४, श्वास २६, राजयक्ष्मा ३०, कुष्ठ ४, कास १०८, अतिसार ४५, विषम ज्वर २९, आन्त्रिकज्वर २४, विबन्ध २८, उदरामय ४६, अग्निमांद्य १९, शूल ९, वातश्लेष्मिकज्वर ३१८, प्रतिश्याय ७५, रक्तविकार ८, चर्मरोग३३, गुल्म ३, पूयमेह १, प्रवाहिका ३४, वातरोग ३६, आमवात१२, कष्टार्तव१, उपदंश १, धनुर्वात१, अपस्मार १, शिररोग ६, कर्णरोग ११, मुखपाक ६।

भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षक संघ

मैंने भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षक संघ के धर्मार्थ विभाग में आये रोगियों में से १०६ ऐसे रोगियों को जो कि कई कई वर्ष से मलावरोध,वीर्य क्षय, स्नायुशूल से पीड़ित थे। तथा बहुत समय से चाय का सेवन करते थे। उन्हें चाय छोड़ने के लिये सलाह दी और उसकी जगह ६ माशे गेहूँ व एक माशे असगन्ध को चाय के समान ही उबाल कर दूध मिलाकर सेवन करने के लिए कहा जिन में से ९३ व्यक्तियों ने सूचित किया है। कि वह पहले से ठीक है। मलावरोध दूर हो गया है। वीर्य क्षय व थकान इत्यादि भी अब नहीं होता प्रत्येक रोगी ने डेढ व दो मास तब इसका सेवन किया है। अतः मैं वैद्य बन्धुओं से प्रार्थना करता हूँ। कि वह भी अपने रोगियों को इसका सेवन करावें। व मुझे सूचित करने की कृपा करें। श्री कृष्ण त्रिवेदी

वैद्य परशुरामजी जोशी का निधन

भीलवाड़ा डाक से भीलवाड़ा जिला वैद्य सभा के सदस्य व महावीर औषधालय के संचालक श्री वैद्य परशुराम जी जोशी का दि॰१।८।५७ को भीलवाड़ा में ही आकस्मिक निधन होजाने से श्री रामचन्द्र जी ब्रह्मचारी की अध्यक्षता में श्रद्धेय वैद्य काशी नाथजी सा० के निवास स्थान पर जिला वैद्य सभा की एक बैठक हुई, उसमें सर्व सम्मति से निम्न लिखित प्रस्ताव पास हुआ। तदनन्तर एक मिनट का मौन रखकर सभा विसर्जित हुई।

आप औषध निर्माण कार्य में निपुण कर्मठ एवं उत्साही नव युवक वैद्य थे। आप अपने पीछे वृद्ध पिताजी तथा अविवाहित २ पुत्रियाँ छोड़ गये हैं इनके स्वर्ग सिधार जाने से वैद्य समाज में बडी क्षति हुई है। इनके पितृव्य श्रीश्यामसुन्दरजी सा०राजस्थान आयुर्वेद विभाग में उप संचालक पद पर कार्य कर रहे हैं।

आज दिनाङ्क २/८/५७ को जिला वैद्य सभा की यह बैठक श्री परशुराम जी के आकस्मिक एवम् असामयिक देहावसान के शोक में दिवंगत आत्मा को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए-परमपिता परमात्मा से मृत आत्मा को शान्ति प्राप्ति तथा परिवार के सदस्यों को धैर्य्य प्रदान रहने हेतु प्रार्थना करती है। शान्तिः शान्तिः

वैद्य-कन्हैया लाल शर्मा भिषगाचार्य

साहित्य-समालोचना

केन्सर व अग्निकर आहार

लेखक—वैद्य किशोरीदास भा० गुप्ता। प्रकाशक—शरद रश्मि गुप्ता कं०, ३२८ विट्ठलभाई पटेल रोड—बम्बई ४। सामान्य कागज, २०"×३०" १६ पेजी पृष्ठ संख्या १०८। मूल्य अजिल्द १।।) रु.।

लेखक दंत विज्ञान के विशेषज्ञ और आयुर्वेद के विद्वान् हैं। आपने केन्सर का कारण अहितकर आहार माना है। एवं उसे सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है।

आयुर्वेद के मतानुसार अहितकर आहार और अहितकर विहार सैंकड़ों रोगों का सामान्य कारण है। जैसे अपचन, अम्लपित्त, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, वातरक्त, कुष्ठरोग आदि पथ्य पूर्वक आहार विहार करने वालों को नहीं होते। अतः अपथ्य आहार-विहार अनेक रोगोंके कारणों का उत्पादक माना जायगा। उन सबका विशेष कारण आचार्यों ने पृथक् पृथक् दर्शाया है। इस प्रकार केन्सर का विशेष कारण अन्य मानना पड़ेगा। आहार विहार में स्वेच्छा चारका वर्त्ताव, इसका मुख्य कारण नहीं कहा जायगा।

केन्सर जहां पाश्चात्य देशोंमें एवं भारत के नव शिक्षित समाज में विशेष प्रतीत हो रहा है, वहां निर्धन ग्राम वासी अपठितों में भी दृष्टिगोचर होता है ग्रामवासिनी कई व्यसन सहित स्त्रियों को स्तनों के और गर्भाशय के केन्सर तथा ग्रामवासी पुरुषों को जिह्वा, अन्ननलिका आदि के केन्सर होते हैं। अतः मुख्य कारण का निर्णय शेष रह जाता है।

लेखक ने अहितकर आहार के दोषोंको दर्शाने का काफी प्रयत्न किया है। यदि संसार में से अपथ्य को विदाय किया जाय तो केन्सर (और अन्य रोगों) की सृष्टि बहुत कम हो जाय।

इस में अहितकर आहार और आयुर्वेद के नव्य एलोपैथी के विचारों में रहे हुए मत भेद वाले विषयों का स्पष्टी करण करने के लिए अच्छा प्रकाश डाला है। निदान विषय में मत भेद हो, तो भी उनका कथन विचारणीय माना जायगा। लेखक ने अपना विचार निर्भीक होकर दर्शाया है। इस सम्बन्ध में उनको धन्यवाद दिया जायगा।

आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान
(उत्तरार्ध)

लेखक—स्व० वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य। प्रकाशन—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (प्रा०) लिमि०। व्हाइट प्रिंटिंग पेपर १८×२३ अठपेजी पृष्ठ संख्या २७४+२२ सुन्दर छपाई मूल्य रु. ६)।

इस "आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान" उत्तरार्धमें ज्वर, महास्रोतोगत व्याधियां (अतिसार, अम्लपित्त, उदर रोग आदि), उरोगत व्याधियां (हिक्का, श्वास, राजयक्ष्मा, हृदयरोग आदि), रक्त संस्थान, चर्म के रोग एवं क्षुद्ररोग आदि का निदान दिया गया है।

प्रत्येक रोगके साथ हिंदी स्पष्टीकरण के अतिरिक्त विभिन्न प्राचीन आचार्यों के विचार मूल श्लोकों में दर्शाये हैं। जहां पर विरोधी विचार उपस्थित हुए हैं या भाव अस्पष्ट रहे हैं या संदेह जनक स्थिति आई है, वहां पर अपनी ओर से स्पष्टीकरण कर दिया गया है। इस तरह अनेकार्थी वचनों का निश्चित अर्थ मिल जाता है। संक्षेप में विद्यार्थी वर्ग और वैद्यों को सच्चा निदान और प्राचीन आचार्यों के विचारों का सम्यक् परिचय कराने के लिए पूरा पूरा लक्ष्य दिया है।

माधव निदान इस निदान विषयका सर्वोपरि ग्रंथ माना जाता है, उसमें भी प्राचीन आचार्यों के विचारों का संग्रह न होने से विद्यार्थियों को सविस्तार लिख लेना पड़ता था, यह असुविधा इस ग्रन्थ के प्रकाशन से मिट जायगी।

लेखक आयुर्वेद के महामहारथी हैं। उनकी कृति में दोष नहीं रह सकता। इतना ही नहीं अपूर्णता भी नहीं रह सकती। वैद्य और विद्यार्थियों के लिए यह मार्गदर्शक है। यह ग्रन्थ सब वैद्य और विद्यार्थियों के लिए मननीय है। मैं इस ग्रन्थ का हृदय से प्रचार चाहता हूँ।

हमारे स्नेही ग्राहकों के लिये अमूल्य अवसर

हमारी प्रसिद्ध, विश्वसनीय और शीघ्र गुणकारी आयुर्वेदिक औषधियां आपको हमारे निम्न लिखित प्रमुख विक्रेताओं से सुगमता से मिल सकेंगी। इनके सिवाय आयुर्वेद जगत् में ख्याति प्राप्त अत्युत्तम और मननीय पुस्तकें भी इन्हीं विक्रेताओं से उपलब्ध हो सकेंगी।

१. शाखा—१. मे. पनपालिया जनरल स्टोर्स
तिलक रोड, आकोला।

२. केन्द्र—२. श्री दौलतराम शिवचरण दास,
कचहरी रोड, अजमेर।

३. " —३. मे. निहाल मेडिकल स्टोर,
गांधी बाजार, भीलवाड़ा।

४. " —४. श्री गणेशलाल मिलापचंद,
केकड़ी, (अजमेर)।

५. स्टोकिस्ट—५. श्री शान्तिलाल एन. बसन्त,
१३७ शेख मेमन स्ट्रीट, बम्बई २।

६. " —६. श्री गणेशदास धूलचंद चांडक,
सौसर, (छिन्दवाड़ा)।

७. " —७. श्री शिवशंकर जी पांडेय,
अध्यक्ष-शिव भंडार, मैनपुरी (यू. पी.)।

८. " —८. श्री डा. विद्यासागर जी थापर
मार्फत श्री मूलचंदजी खेतसी, आयुर्वेद अस्पताल
लाजपत नगर, न्यू दिल्ली।

९. " — ९. श्री लक्ष्मीनारायणजी भादूपोते,
गोंदिया (भंडारा)।

१०. " — १०. श्री हेमराजजी प्रोफेसर,
पो. कोठ पुतली (राजस्थान)।

—निवेदन पत्र—

हमारे स्नेही ग्राहकों, स्टोकिस्टों और एजेन्टों को निवेदन किया जाता है कि वर्तमान समय में निरन्तर बढ़ती हुई मंहगाई के कारण हम निरुपाय होकर तारीख १-६-५७ से कतिपय औषधियों का मूल्य रु० ६।) सैंकड़ा के हिसाब से बढ़ा रहे हैं।

उपरोक्त तारीख से पूर्व जिनके ओर्डर हमारे पास आजाएंगे, उनको वर्तमान मूल्य पर औषधियां भेज दी जाएंगी।

नया सूचीपत्र छपते ही आपकी सेवा में भिजवा दिया जाएगा।

—बिक्री कर—

आपको यह ज्ञात होगा कि केन्द्रीय सरकार ने ६-६-५७ से बिक्री कर लागू कर दिया है। उम्मीद है कि आपने केन्द्रीय सरकार के इस नये कानून के अन्तर्गत रजिस्ट्रेशन नम्बर ले लिया होगा।

राजस्थान प्रदेश को छोड़कर अन्य प्रान्त वाले औषधि विक्रेता हमें अपना सेण्ट्रल सेल्स टेक्स का नम्बर और डिक्लेरेशन फार्म 'सी' भर कर भेजेंगे तो सेण्ट्रल सेल्स टेक्स १) प्रतिशत के हिसाब से बिल में जोड़ दिया जायगा। अन्यथा यहां के स्थानिक कर ३=) सैंकड़ा के हिसाब से बिल में जोड़कर औषधियां भेजी जायेंगी।

कृपया आप अपना सेण्ट्रल सेल्स टेक्स नम्बर और उसकी मिलने की तारीख हमें शीघ्र ही लिख भेजिए। इस बात का भी ध्यान रखिए कि प्रत्येक ओर्डर के साथ डिक्लेरेशन फार्म 'सी' भेजा जाय, जिससे सेण्ट्रल सेल्स टेक्स १)% ही बिल में जोड़कर औषधियां भेज देंगे।

एलोपेथिक दवाइयां किसी भी प्रान्त में भेजने पर १)% टेक्स लगेगा।

आप रु० ५०००) का एक ही आर्डर देकर और साथ में डिक्लेरेशन फार्म 'सी' भेज कर इस की दवाइयां तीन चार टुकड़ों में मंगवा सकते हैं।

सेन्ट्रल सेल्स टेक्स
नं० A D 365

निवेदक—
व्यवस्थापक

—स्वास्थ्य के लघु विशेषांक—

आगामी सितम्बर मास से 'स्वास्थ्य' अपने पांचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस वर्ष से स्वास्थ्य में लघु विशेषांक योजना प्रारम्भ की जा रही है। तदनुसार वर्ष में विभिन्न विषयों पर ६ छोटे छोटे विशेषांक प्रकाशित किये जायेंगे। इन विशेषांकों की सामग्री अत्यन्त उपयोगी और व्यवस्थित होगी। अवशिष्ट ६ अंक पूर्ववत् प्रकाशित होंगे। इस वर्ष निम्न विषयों पर लघु-विशेषांक प्रकाशित करने का विचार है:—

(१) विषमज्वर (मलेरिया)
(२) श्वास।
(३) प्रतिश्याय।
(४) व्यायाम।
(५) स्नान।
(६) आहार।

आशा है, लेखक हमें पूरा सहयोग देंगे और 'स्वास्थ्य' के इन लघु विशेषांकों को अनुपम बनायेंगे। यदि स्वास्थ्य परिवार ने इस योजना को पसन्द किया तो आगामी वर्षों में भी इसी प्रणाली को प्रचलित रखेंगे।

—सम्पादक

अभ्रक भस्म १००० पुटी

जिसको बनाने में हमें १२ साल से अधिक लगे हैं। प्रभु कल्याण राय की अनन्त कृपा से अब बन कर तैयार हो गई है।

शरीरस्थ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, वीर्य की शुद्धि व पुष्टि इस महौषधि का विशिष्ट कार्य है तथा जीर्ण ज्वर, नपुंसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल-कर यौवन प्रदान करता है।

मूल्य—१।। माशे का १०) । १ तोले का ७५) रु० पेकिंग पोस्टेज अलग।

—'स्वास्थ्य' के नियम—

१. "स्वास्थ्य" प्रत्येक अँग्रेजी मास की पहली तारीख को प्रकाशित होता है। लेख भाग के ४८ पृष्ठ रहेंगे।

२. डाक व्यय सह वार्षिक मूल्य ३) तीन रु० है। वी० पी० मंगाने वालोंको रजिस्ट्री का खर्च बारह आना अधिक देना पड़ेगा। एक प्रति का मूल्य छः आना है। मूल्य विदेशों से ६ शिलिंग है।

३. वार्षिक मूल्य ३) रु० मिलने पर किसी भी मास से ग्राहक बनाया जायगा।

४. पत्र में स्वास्थ्य रक्षा के लिये पथ-प्रदर्शक लेखों को मुख्य स्थान दिया जायगा। वैद्योपयोगी रोग-निदान चिकित्सा आदि को स्थान की सुविधा अनुसार गौण स्थान दिया जायगा।

५. आयुर्वेद, यूनानी या नव्य-चिकित्सा शास्त्र के आधार के लेख ही जो सामाजिक स्वास्थ्य रक्षा के लिए उपयोगी हों उन्हें स्थान देने का प्रयत्न किया जाय।

६. पारस्परिक वैमनस्य या निन्दा-टीका प्रधान आपत्तिजनक और "स्वास्थ्य" के उद्देश्यकी मर्यादा से बाहर के लेखों को स्थान नहीं दिया जायगा।

७. कोई भी लेख स्वीकार करना या नहीं, यह निर्णय प्रबन्ध सम्पादक के ऊपर रहेगा।

८. अप्रकाशित लेख ६ महीने के भीतर वापस मंगाने पर और पोस्टेज भेजने पर लेख वापस भेज दिया जायगा।

९. जो लेख भेजे जायँ कागज पर एक ओर हासिया छोड़कर लिखे होने चाहिये।

१०. पत्र और मूल्य सम्बन्धी पत्र व्यवहार व्यवस्थापक " स्वास्थ्य " के नाम करना चाहिए।

११. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार संपादक के नाम से करना चाहिए।

१२. समालोचनार्थ पुस्तक की २ प्रति भेजनी चाहिये। १ प्रति मिलने पर, बाद पहुँच प्रकाशित की जायगी।

व्यवस्थापक "स्वास्थ्य"

पूर्ण चन्द्रोदय (तलस्थ)

यह पूर्ण चन्द्रोदय रस आयुर्वेद का महा मूल्यवान संजीवन अमृत है, यह जर्जरित देहों को आरोग्य लाभ देने में समर्थ है। यह रसायन हृदय पौष्टिक, वाजीकर, रसायन, बल्य, रक्त प्रसादक, सेन्द्रिय विष शामक, मांसपौष्टिक और योगवाही है। राजयक्ष्मा, कफ प्रकोप जन्य व्याधियों और शुक्र की निर्बलता को नाश करने में अत्यन्त लाभदायक है। धातुक्षीणता, मानसिक निर्बलता, नपुंसकता, हृदय की निर्बलता, शारीरिक निर्बलता, क्षय, श्वास आदि रोगों को दूर करके बल वीर्य की वृद्धि करता है तथा आयु को बढ़ाता है।

इस पूर्ण चन्द्रोदय का सेवन सितोपलादि चूर्ण और एलादिमंथ के साथ करें यदि वसंतोदय पाक भी लिया जाय, तो मन, बुद्धि, मस्तिष्क और हृदय को विशेष लाभ पहुँचता है। राजयक्ष्मा के रोगी को सूक्ष्म मात्रामें इस पूर्ण चन्द्रोदय का सेवन सुवर्ण, अभ्रक, शृंग, मुक्ता, प्रवाल, मिलाकर कराया जाय, तो मृत्युमुख में पड़े हुए रोगियोंके जीवन की रक्षा हो जाती है। (एक महाराष्ट्रीय संन्यासी राजयक्ष्मा पीड़ितों पर इस पूर्ण चन्द्रोदय के स्थानपर विशेष विधि से बनी हुई पारद भस्म का प्रयोग करते रहते हैं।)

मात्रा—$\frac{1}{8}$ रत्ती से $\frac{1}{4}$ रत्ती।

पूर्णचन्द्रोदय १ भाग, सहस्रपुटी अभ्रक भस्म $\frac{1}{2}$ भाग, सुवर्ण भस्म $\frac{1}{4}$ भाग, मुक्तापिष्टी $\frac{1}{2}$ भाग, प्रवाल पिष्टी $\frac{1}{2}$ भाग, यशद भस्म १०० पुटी $\frac{1}{2}$ भाग, कपूर २ भाग, इलायची दाने का चूर्ण १ भाग, मिलाकर वृद्धावस्था की निर्बलता, शारीरिक कृशता आदि पर वंशलोचन ४ भाग मलाई मिश्री या एलादि मन्थ के साथ सुबह १ समय देवें।

मूल्य—१ तोला का १००) रु०

ब्राह्म्य रसायन

महर्षि आत्रेय कथित यह रसायन उत्तम शक्तिप्रद, मेधा, स्मृति, आयु, बल और वीर्यका वर्धक है। हृदय, मस्तिष्क, रक्तवाहिनियाँ, वातवाहिनियां, पचन संस्थान, मूत्र संस्थान एवं जननेन्द्रिय संस्थान को शक्ति प्रदान करता है। उन्माद, अपस्मार, मस्तिष्क निर्बलता, निद्रानाश, क्षय, उरःक्षत, हृद्रोग, स्वरभंग, कास, श्वास, नेत्ररोग, वीर्यविकार तथा वात-पित्त-कफ के रोगों से पीड़ितों के लिये हितकर है। दीर्घकाल से स्थायी रोग या वृद्धावस्था से निर्बलता आई हो उसे दूर करने में विशेष उपकारक है। इसके अतिरिक्त कृश बालक, सगर्भा, प्रसूता स्त्री और क्षत क्षीणों के लिये भी हितावह है।

यह सुवर्णयुक्त और नागकेशर युक्त दो प्रकार का हमने बनाया है। राजयक्ष्मा आदि रोगों से जर्जरित देह वालों के लिये सुवर्णभस्म मिलाई गई है एवं साधारण निर्बलता वालों के लिये नागकेशर मिलाई गई है।

मात्रा—सुवर्ण भस्म युक्त ३-३ माशे और नाग केशर युक्त ४ से ६ माशे तक सुबह और रात्रि को दूध के साथ।

मूल्य—सुवर्ण युक्त १० तोले की शीशी का रुपया ८-०-० तथा सादे ब्राह्म्यरसायन की २० तोले की शीशी का रुपया ५-०-० पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

नयी बनी हुई विशेष औषधियाँ

औषध नाम	मूल्य
१. हीरा भस्म	१ रत्ती का ३६)
२. काम चूड़ामणि रस विशेष	१तो० ४०)
३. प्रवाल पञ्चामृत ,,	३५)
४. बृहद् वातचिन्तामणि ,,	६०)
५. पूर्णचन्द्रोदय (तलस्थ) ,,	१००)
६. मौक्तिक रसायन ,,	५०)

औषध नाम	१ तोले का मूल्य
७. श्वासकास-चिन्तामणि विशेष	४०)
८. महाराजवटी ,,	२)
९. पूर्णचन्द्रोदय वटी (तलस्थ)	१००)
१०. कामदूधा रस विशेष	३०)
११. ज्ञानोदय रस (विजया वटी),, द्वितीय विधि	१०)
१२. मधुपर्क ८ औंस का १।) १ पौंड	२।)

नयी बनी हुई सामान्य औषधियाँ

औषध नाम	१ तोले का मूल्य
१. नीलम पिष्टी	५)
२. पिरोजा भस्म	६)
३- संगेयहूद पिष्टी	१।)
४. संगेयसब भस्म (गुलाबी)	२॥)
५. पुखराज पिष्टी	८)
६. आखुविषान्तक रस	२)
७. गुंजागर्भ रस (वाजीकरण)	६)
८. ज्ञानोदय रस (प्रथम विधि)	२॥)
९. गुंजाभद्र रस (ऊरुस्तम्भ)	६)
१०. पञ्चामृत मण्डूर	३)
११. कासकेसरी रस	३)
१२. रक्तपित्त कुलकण्डन रस	५)

औषध नाम	१ तोले का मूल्य
१३. नारायण मण्डूर	१।)
१४. विषमज्वरान्तक लोह (सुवर्ण)	२०)
१५. सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी	२५)
१६. चन्द्रहास अर्क १ रतल	५)
१७. महामरिचादि तैल ,,	१५)
१८. श्री गोपाल तैल ५ तोले की शीशी	१०)
१९. वाजीकरण तिला आध औंस	३॥)
२०. कुटजावलेह २० तो.	४)
४० तो.	७॥)
२१. जीवन्त्यादि घृत ४ औंस	३)
८ औंस	५॥=)
२२. सिन्दूर युक्त निम्बादि मलहम १ औंस	१॥)

इनके अतिरिक्त रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह द्वितीय खण्ड की सत्वर लाभप्रद कई औषधियाँ तैय्यार होरही हैं।

—व्यवस्थापक

मात्र आयुर्वेदिक चिकित्सकों के लिए—

हीरा भस्म

काफी प्रयत्न एवं परिश्रम के बाद आपके इस विश्वासु आयुर्वेद भवन ने उत्तम जाति का हीरा प्राप्त करके शास्त्रोक्त विधिवत् शोधन एवं मारण करके "हीरा भस्म" तैयार करली है। इसको पूर्णतया सम्पूर्ण करने में ६ मास से अधिक समय लगा है।

हीरा भस्म को आचार्यों ने उत्तम अमृत सदृश उपकारक माना है।

यह उत्तमोत्तम रसायन, आयुवर्द्धक, मृत्युञ्जय, कामोत्तेजक, षड्रस युक्त, हृद्य, मेध्य, मस्तिष्क बलवर्द्धक, त्रिदोषहर, वर्णप्रद, दृष्टि वर्द्धक, शुक्रल और बल्य है। यह राजयक्ष्मा, पाण्डु, शोथ, उदर रोग, समस्त प्रकार के प्रदर, सब प्रकार के प्रमेह, मेद, और नपुंसकता को नाश करने वाली है।

यह भस्म श्रेष्ठ योगवाही होने से योजना और अनुपान भेद से समस्त व्याधियों का नाश करने में सद्य फलदात्री है।

इस भस्म के साथ, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी और पूर्ण चन्द्रोदय (तलस्थ) का सेवन विशेष हितकारक माना है। हमारे अनुभव से पौष्टिक गुण दृष्टि से निम्न मिश्रण सब प्रकृति वालों को सर्व ऋतुओं में सेवन कराया जा सकता है।

हीरा भस्म	१ रत्ती	अभ्रक भस्म १००० पुटी	१॥ माशा
स्वर्ण भस्म	१॥ माशा	मुक्ता पिष्टी	१॥ माशा
तलस्थ पूर्ण चन्द्रोदय	१॥ माशा		

मिश्रण करके मात्रा १ से दो रत्ती प्रातःकाल दूध की मलाई या मक्खन मिश्री के साथ।

सूचना— सेवन काल में छोटी इलायची के दानों को तुरन्त निकाल कर चूर्ण करके २-२ रत्ती प्रत्येक मात्रा में मिलावें।

मूल्य— हीरा भस्म १ रत्ती रु० ३६) मात्र। एवं इसके अतिरिक्त अन्य अनुपान मिश्रण का मूल्य ६ माशे का रु० ५६) पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

—मधु पर्क—

यह उत्तम स्वादु पेय है। इसमें दीपन, पाचन, आम नाशक, विषघ्न कीटाणुहर, वातघ्न और बल्य गुण है। इसके सेवन से आमाशय और यकृत् को बल मिल जाता है। जिससे अपचन, उदरवात, गैस बढ़ना, उबाक आना, वमन, उदर पीड़ा, अफारा, व्याकुलता आदि दूर होकर पचन क्रिया सबल बनती है।

अपचन जनित दस्त लगना अथवा हैजा (विषूचिका) की प्रथमावस्था में होने वाले दस्त और वमन को तुरन्त यह पेय दूर करता है। लू लगना, शीत लग जाना, इन दोनों विकारों को शमन करता है। रक्त दबाव वृद्धि हो तो उसे भी मर्यादित बनाता है। बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता, सबके लिये निर्भय और सफल लाभप्रद औषधि है। प्रत्येक कुटुम्ब में यह संग्रह करने योग्य है।

मात्रा—१ से २ औंस दिन में २ या ३ बार।

मूल्य—८ औंस की शीशी का रु० १।) । १ पौंड का रु० २।) । पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

प्राप्तिस्थान—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा

शास्त्रोक्त विधि से निर्मित बहु-परीक्षित भस्में

प्रकाशक—ठाकुर नाथूसिंह मुद्रक तथा प्रकाशक द्वारा "कृष्णगोपाल मुद्रणालय" कालेड़ा में मुद्रित।

स्वास्थ्य

स्वास्थ्यदर्शक सचित्र मननीय मासिक पत्र

५ अङ्क ३] राष्ट्रीय मिति १० कार्तिक शक संवत १८७९ [नवम्बर १

आयुर्वेद को ठुकरायें मत, उसे समझें

"आधुनिक चिकित्सकों और आयुर्वेद चिकित्सकों को अपने ही हित के लिए एक दूसरे की चिकित्सा प्रणाली समझने का प्रयत्न करना चाहिये। आधुनिक चिकित्सकों को आयुर्वेद के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए और सम्मान भी। क्योंकि वे उसे जानते नहीं, इसलिए इसे ठुकराना नहीं चाहिए। उन्हें चाहिए कि उसे समझने का प्रयत्न करें, अध्ययन करें तथा यह जानें कि वह क्या चीज है? जिसके बल पर यह प्रणाली इतने अरसे से जीती है तथा देश के करोड़ों लोगों की आवश्यकता आज भी पूर्ण कर रही है।

आयुर्वेद महाविद्यालय, त्रिवेन्द्रम

—डा० राजेन्द्रप्रसाद
(भारत के राष्ट्रपति)

मूल्य वार्षिक ३) रु० विदेश से ६ शिलिंग, एक प्रति ६ आना अथवा ३७ पैसा।

प्रकाशक: कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन • कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन के निरीक्षणार्थ पधारे हुए प्रमुख सज्जनों की

* बहुमूल्य सम्मतियां *

पूजनीय श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सन् १९५५-१९५६ में इस्ट अफ्रीका की मुलाकात के समय मेरे स्नेही मित्र श्रीयुत् हरमानभाई झवेर भाई पटेल तथा उनकी पत्नी अ० सौ० लक्ष्मी बहिन के यहाँ मोम्बासा के बिमारों की चिकित्सा कर रहे थे, उस समय मैं अपनी पत्नी के साथ स्वामी जी के गाढ़ परिचय में आया। उस समय कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन (कालेड़ा) संस्था की शास्त्रोक्त विधि से तैयार की गई आयुर्वेदिक औषधियों और आयुर्वेदिक साहित्य के प्रचारार्थ पूज्य स्वामी जी के आदर्श विचार और उनके अनथक परिश्रम एवं ठाकुर साहिब श्रीमान् नाथूसिंह जी तथा उनके सुपुत्र श्री जशवन्तसिंहजी का आदर्शों के अनुरूप संस्था की स्थापना तथा संचालन के लिए महान् त्याग एवं सेवा के विषय में आज तक मैंने सुन रखा था।

ईस्ट अफ्रीका से १९५४-१९५५ और १९५६ में अनेक बार मेरा बम्बई आने का प्रसंग बना। उस समय कई स्नेही मित्रों की चिकित्सा के विषय में पूज्य स्वामीजी की बहुमूल्य राय एवं अनुभव का लाभ लिया। संस्था के सेवा कार्य में सहयोग देने के लिए ईस्ट अफ्रीका में संस्था की औषधियाँ कई जनता के दर्दों पर रामबाण इलाज होने से वहां आयुर्वेदिक औषधियों की पेटेन्ट औषधि अमुक दर्दोंपर तात्कालिक असर करे वैसी औषधि संस्था से पूज्य स्वामी जी महाराज और कर्मचारियों की देखरेख में तैयार कराके जन कल्याण के लिए बाहर लाने की इच्छा प्रकट की। १९५७ में जब मेरा ही प्रत्यक्ष कालेड़ा आना हुआ, तब मुझे मालूम हुआ कि कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन में शास्त्रोक्त विधि अनुसार औषधियां तैयार की जाती हैं। मैंने संस्था के सब विभागों को संस्था के कार्य कर्ताओं के साथ घूमकर देखा तो मालूम हुआ कि अफ्रीका में जो वार्तालाप और संस्था की रिपोर्ट में से जो जानकारी हुई थी वह सब प्रत्यक्ष देखने को मिला। संस्था का कार्य और पूज्य स्वामी जी महाराज का आदर्श सेवा भाव और श्रीयुत् ठाकुर साहिब व उनके पुत्रों के योग का और मैनेजर साहिब व दूसरे कर्मचारियों की कार्य दक्षता का सच्चा ख्याल आया। एक छोटी पानी की बूंद में से सरोवर कैसे बनता है इसका सच्चा प्रतीक देखने में आया। जंगल में इस तरह की धार्मिक संस्था चलाकर वह गरीब प्रजा को मुफ्त औषधि देना और उनके लिए आतुरालय बनाकर कार्य करना यह एक अनुपम सिद्धि है।

संस्था के प्राण समान पूज्य स्वामी जी महाराज तथा श्री ठाकुर साहिब की नीति संस्था में शास्त्रोक्त विधि से औषधि तैयार कराके गरीबों को मुफ्त औषधि देने की है और दूसरों को थोड़े मुनाफे में औषधि बेचने के इस आदर्श से संस्था के पास पैसा इकट्ठा नहीं हो सका। लेकिन बदले में संस्था पर दवा बनाने के लिए खरीद किये गये मशीनरी के साधन, औषधि के कच्चे द्रव्यों और तैयार की हुई औषधियों के बृहद् स्टोक के कारण अभी संस्थापर कर्जा हो गया है। जिससे महनत करते हुये भी प्रगति न कर सके। यह दुःख की बात है। भारत में ऐसी संस्था को राज्य और प्रजा की तरफ से सहयोग मिले तब ही कार्य सिद्धि हो सकती है।

भारत सरकार के मंत्रियों और सरकारी कर्मचारियों की मुलाकात का परिणाम सरकार की तरफ से आर्थिक मदद मिलने की आशा है। यदि यह मदद शीघ्र मिले तो कार्य को वेग मिले और पूज्य स्वामी जी महाराज के मार्ग दर्शन से नई-नई औषधि तैयार करने में बाधा न हो।

संस्था के सेक्रेटरी श्री जसवन्तसिंहजी, मेनेजर श्री विमलचन्द्रजी और सब मैनेजर श्री नरहरिप्रसाद का अभी का कार्य बिक्री बढ़ाने का विज्ञापन देकर बड़े जत्थे में औषधियों की निकास करने का और इसी तरह जनता की सेवा करने का विचार सचमुख अत्यन्त प्रशंसनीय है और इस कार्य में उनको सफलता प्राप्त हो और संस्था उनके आदेशानुसार प्रगति करके भारत भर और अन्य प्रदेश में नई-नई औषधियां तैयार करके जनता की सेवा करें। यही परम कृपालु परमात्मा से मेरी प्रार्थना है।

V. V. Doshi & Co. S. D. वल्लभदास वेलजी दोशी
P. Box 1157
MOMBASA १२-१०-५७
(East Africa)

मैं आज तारीख २-१०-५७ को श्री बाबू फूलचन्द जी व्यवस्थापक मायका किंग इन्द्रचन्द राजगडिया एण्ड सन्स लिमिटेड की प्रेरणा से कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन, धर्मार्थ औषधालय, कालेड़ा का अवलोकन करके बहुत प्रभावित हुआ। जब कि मैंने इस औषधालय के संस्थापक श्री स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज से वार्तालाप की और संचालक श्री ठाकुर नाथूसिंह जी इस्तमरारदार कालेड़ा के आयुर्वेद प्रेम को देखा। वास्तव में यदि ऐसे महानुभाव भारत वर्ष में भगवान् धन्वन्तरि जी का दिया हुआ संसार के प्रति आरोग्यता का ज्ञान प्रसारित करते रहें तो संसार में फैला हुआ व्याधि रूप क्लेश समाप्त हो जाय और भगवान् धन्वन्तरि की प्रेरणा सफल हो।

श्री स्वामी जी महाराज पारद आदि की गवेषणा कर रहे हैं। जो आजकल के समय में बहुत कठिन है फिर भी श्री स्वामीजी ने बहुत परिश्रम के बाद पारद पर विजय प्राप्त की है। इस चीज की आयुर्वेद के लिए अति आवश्यकता थी और इसके लिए अति आवश्यक जो बहुत ही जरूरी था कि यह सब विज्ञान लेख बद्ध किया जावे, जो कि आजकल के वैद्य नहीं करते श्री स्वामी जी ने पारद आदि रसों को बनाने के लिए बहुत अच्छे और सुगमता से समझ में आने वाले ग्रन्थ लेख बद्ध किये जो कि संसार को एक बहुत बड़ी देन है।

श्री स्वामी जी तथा ठाकुर साहब के अनथक परिश्रम से कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय भी चल रहा है जिसमें यहां की जनता अति लाभ उठा रही है। इस औषधालय के लिए यह अति आवश्यक है कि यहाँ की सरकार शीघ्रातिशीघ्र अधिक से अधिक सहायता करें, क्यों कि यह औषधालय एक ऐसे स्थान पर स्थित है। जहां आस पास के ग्रामीणों के लिए कोई सहारा नहीं है ऐसे स्थान को प्रोत्साहन देना स्थानीय सरकार का कर्तव्य परमावश्यक है, इसमें जो रुग्णालय है वह तो बिना सरकारी सहयोग के सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिए यहां की सरकार के लिए और भी जरूरी है कि इस आतुरालय को सहायता प्रदान कर यहां की गरीब जनता की सेवा करे। मैंने इस औषधालय और निर्माण शाला को देखकर यह निश्चय किया, कि इसके प्रबन्धक, संस्थापक, संचालक पूर्ण तया निपुण हैं। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसे उद्योगी और आयुर्वेद प्रेमियों को साहस दें और दीर्घायु करें।

वैद्य लक्खीराम आयुर्वेदाचार्य
सदस्य-नगर पालिका देहली
प्रधान-मण्डल कांग्रेस कमेटी
सब्जी मण्डी-देहली

परामर्श-मंडल

विषय-सूची

श्रीधन्वन्तरयेनमः

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम्॥

संपादकः—
आचार्य नित्यानन्द
भू० पू० उपाध्यक्ष, निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ
भू० पू० अध्यक्ष, राजस्थान निदान सम्भाषा परिषद्
भू० पू० सहमन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन,
अध्यक्ष, बिरला आयुर्वेद संग्रहालय पिलानी (राजस्थान)

प्रबन्ध संपादकः—
वैद्यराज पं० रमेशचन्द्र व्यास
भिषगाचार्य धन्वन्तरि अजमेर
वैद्यराज रामगोपाल शास्त्री
आयुर्वेदाचार्य
कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

वर्ष ५. अङ्क ३] कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर) [नवम्बर १९५७

शरण ले नर ! मासिक स्वास्थ्य के

(रचयिताः—श्री अमरनाथ पाराशर)

तनमनात्म वनात्रय थम्भ से
सतत आरम विकार रहे परे।
मन वपू सहते हि रुजा अतः
शरण ले नर मोहन पत्रिका॥ १॥

मदन लोभ सभी हि सतावते
सिगर चाय तमा ल न छोड़ते।
मद अही विजया कृत देखना
शरण ले नर अच्युत पत्रिका॥ २॥

शृणु सखे मति पूर्ण हि चंचला
नित कुपथ्य सदा तन वंचना।
प्रति दिन ध्रुव रोग सदा बने
शरण ले नर केशव पत्र के॥ ३॥

सपदि पीनस ताप च अर्शता
क्षय दमा अतिसार विशूचिका।
तमक कास हरा तन शङ्किका
शरण ले नर नायक पत्रिका॥ ४॥

अरुचि कै भ्रम और अजीर्णता
अनिल शूल अनाह गसी तथा
पथरि आदि सदाहि भय प्रदा
शरण ले नर मासिक स्वास्थ्य के॥ ५॥

पय दधि मनुजा कर पान ही
घृत मठा हरते नित रुग्णता।
रहत शौच निरन्तर आपको
शरण ले नर मासिक पत्रके॥ ६॥

कलिमल ग्रसित ध्रुव है सखे
चरणगेह तज दुन मोह को।
पतित पावन नन्द किशोर हैं
शरण ले नर वल्लभ राधिका॥ ७॥

कमल पाद हि नन्दन ! भेंट है
कवि न योग्य चिकित्सक हे प्रभो
वरण पुष्प हि नाथ कि कल्पना
मधुरता रस हीन न सार है॥ ८॥

विषतिन्दुकादि वटी

(वात रोगों की महौषधि)

बीस तोले कुचिला लें शुद्ध वैद्य और फिर
दो दो तोले जायफल केशर मिलाइए।
चार चार तोले फिर लौंग और काली मिर्च
लेकर शुचि तोले दो जावित्री डलाइए॥
अकरकरा लीजिए आठ तोले घोंट पीस
खरल में एकत्र कर चूरण बनाइए।
आगे इस विधि से बनाकर के गोली नेक
रोगी अपने को आप अवश्य खिलाइए॥ १ ॥

पाँच पाँच तोले लें मिर्च लौंग एकत्रकर
एक सो पचास तोले शुद्ध साफ जल लें।
डाल के घड़े में सब आग में चढ़ावें आप
फिर जब बचे जल ढाई पाव छान लें॥
उक्त चूर्ण घोटिए मिलाकर ये क्वाथ जल
तीन दिन; गोलियाँ चने प्रमाण बाँध लें।
इन्हें फिर छाया में सुखा करके रखें आप
देवें नित्य रोगी को यथा प्रमाण बल; ले॥ २ ॥ *

शाम और सुबह नित्य दोनों वक्त दूध से
दीजिए; शरीर के तो सर्व वात नष्ट हों।
बल और रक्त की प्रवृद्धि अनुदिन होवे
मल साफ आवे भूख लगे जो अभीष्ट हो॥
नाना विधि वीर्य रोग मिटें अनपच भी हो
दूर हो मंदाग्नि और पाचन प्रपुष्ट हो।
हाथ, पाँव, कमर का दर्द दूर होवे शीघ्र
नष्ट हों शरीर के वे और भी जो कष्ट हों॥ ३ ॥

(वैद्य श्री० गोपालजी कुँवर जी ठक्कुर का योग) सिद्धयोग पद्यावली अपनी रचना से (क्रमशः)

—सरयूप्रसाद भट्ट मधुमय

* १-१ गोली दोनों समय दूध से यह जवान की सामान्य मात्रा है।

भारतीय रसायन-विद्या — का — पुनरुद्धार आवश्यक
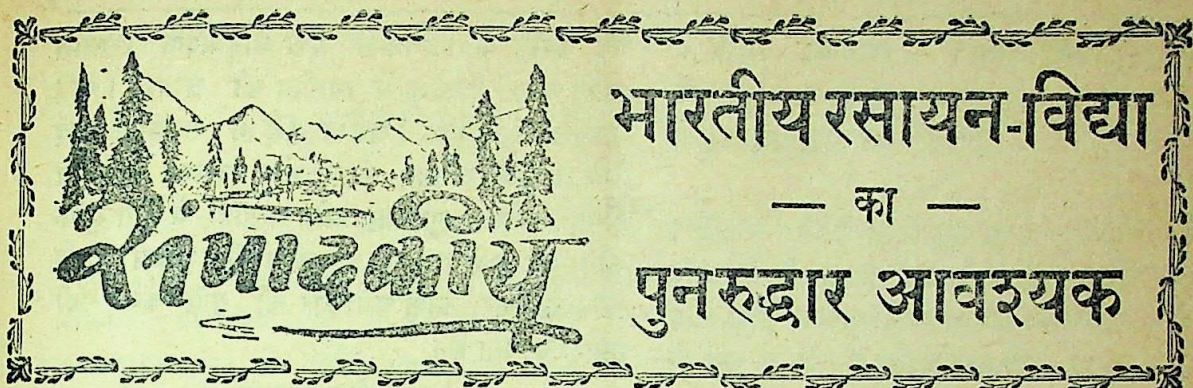
लगभग चार पांच घंटे पूर्व ही कराल काल के मुंह से बाल बाल बचा हूँ। शायद भगवान धन्वन्तरि ने ये पंक्तियां लिखने के लिए ही बचा दिया हो। इसी पत्त में यह दूसरा बचाव है। पहली बार भी जड़ी बूटियों की खोज में गया था और मोटर दुर्घटना में फंस गया था। मेरे ठीक पीछे बैठे एक भाई का हाथ आज गायब है। मेरे आगे और बाजू में बैठने वाले भी घायल हो गये थे। पर, मैं घायलों की मरहम पट्टी के लिए साफ बच गया। आज एक जड़ी बूटी के चक्कर में गहन वन में चला गया था। लगभग ७० वर्ष के वनस्पति विशेषज्ञ मेरे साथ थे। यदि आधे क्षण का भी विलम्ब होता तो करीब २ गज लम्बे भयंकर विषधर ने मुझे डंस लिया होता। शरद् ऋतु में वनस्पतियों के अन्वेषकों को ऐसी दुर्घटनाओं का सामना करना ही पड़ता है। चिन्ता की बात नहीं, अब तो मेरे सामने कलकलनाद शीला भगवती भागीरथी वह रही है।

बात यह है कि ज्यों ज्यों उम्र सन्ध्या की ओर बढ़ती जाती है, पारद के संस्कारों में सफलता के लिए इच्छा उत्कट होती जा रही है। पारद के सिद्ध हो जाने पर सुवर्ण भी बनाया जा सकेगा, इसमें सन्देह की गुंजाइस नहीं है। प्राचीन रस ग्रन्थोंमें तो कितनी ही पुस्तकें ऐसी हैं, यदि उनमें से सोने और चांदी बनाने की प्रक्रिया हटा दी जाये, तो उन में बाकी ही क्या रहे? मेरे विचार से यह रसायन-विद्या चण्डू खाने की गप्प नहीं है। हमारी रसायन-विद्या उत्कृष्ट रही है।

आयुर्वेद के अन्य लुप्त अंगों की तरह भारतीय रसायन शास्त्र को भी पुनरुज्जीवित करने की जरूरत है। सबसे पहले हमें शास्त्र मार्ग और सिद्ध मार्ग को संगृहीत करना होगा। तदनन्तर अनेक तरीकों से उनका परीक्षण किया जाना चाहिए।

स्वर्गीय कृष्णपाल जी शास्त्री ने कितने ही लोगों के सामने रसायन-विद्या का चमत्कार दिखाया था। उनकी प्रक्रिया भी हमारे सामने हैं। केवल दो कड़ियाँ नहीं मिल रही हैं। मेरा विश्वास है कि आज भी इस विद्या के जानकारों का अत्यन्ताभाव नहीं है। जो लोग यह काम करते हैं, वे रसायन विद्या के शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ हैं। साथ ही वे अत्यन्त गुप्त तरीके से इस प्रकार की चेष्टा करते हैं। इन्हें रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण का नियमित परिमाण भी ज्ञात नहीं होता, इससे वे अन्दाज से ही द्रव्यों का मिश्रण करते हैं। फल स्वरूप कभी रंग ठीक बैठ जाता है तो मृदुता नहीं आती। यदि संयोग से दोनों ठीक बैठ भी गये तो भारीपन पूरा नहीं उतरता। अतः इस प्रकार के लोगों के सहयोग से बड़े पैमाने पर अन्वेषण कार्य किया जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि इस प्रकार का विशाल अनुष्ठान सरकार को अपने हाथ में लेना चाहिए। जो उच्चस्तर की विद्याएं हमें अपने पूर्वजों से विरासत में मिली हैं, उनकी रक्षा और उचित विकास करना हमारा परम कर्त्तव्य है। यदि कृष्णपालजी जैसा चमत्कार किसी समृद्ध देश में हुआ होता तो उनकी देख रेख में या उनकी मृत्यु के बाद इस विषयपर न जाने कितना

अनुसन्धान किया जाता। सरकार को पश्चिम के विज्ञानवेत्ताओं का मुंह ताकना छोड़कर अपने घर की प्राचीन विद्याओं के पुनरुद्धार की चेष्टा भी करनी चाहिए।

वैसे व्यक्तिगत प्रयत्न इस दिशा में भी चालू है। इस तरह की एक संस्था से मेरा सम्पर्क भी है। यदि हम पारद को संस्कृत कर सकें और उसके द्वारा लोह सिद्धि की जा सकी तो निश्चय ही देह सिद्धि भी हो सकेगी। यदि ऐसा हो सका तो हमें यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि आधुनिक नव्य विज्ञान का तख्ता उलटा जा सकेगा और पारे के वे चमत्कार प्रत्यक्ष किये जा सकेंगे, जिनका आज हम उल्लेख करने की स्थिति में भी नहीं हैं, यद्यपि उनका हमारे वाङ्मय में विशद विवेचन है।

सम्पादकीय टिप्पणियां

आयुर्वेद का दावा

गत ७ अक्टूबर को विश्व कल्याण आश्रम के संस्थापक श्री अनन्त महाराज का स्वागत समारोह नई दिल्ली में आयोजित किया गया था। इस अवसर पर केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय में भारतीय चिकित्सा पद्धति के सलाहकार कविराज श्री प्रतापसिंह ने बताया कि श्री अनन्त महाराज ने आयुर्वेद सम्बन्धी जड़ी बूंटियों का अनुसन्धान करके आयुर्वेद में एक चमत्कार कर दिखाया है। श्री अनन्त महाराज ने इस अवसर पर पत्रकारों को उत्तर देते हुए बताया कि उन्होंने केवल जड़ी बूंटियों से, भस्म तथा रसायन आदि का बिलकुल भी उपयोग न करते हुए, ऐसी ५४ औषधियां बनाई हैं, जिनसे कैंसर (नासूर) दमा, बवासीर जैसे असाध्य रोग कुछ ही दिनों में ठीक किये जा सकते हैं। साथ ही उन्होंने यह दावा भी किया कि 'मैं ९० प्रतिशत रोगियों को ठीक करके दिखा सकता हूँ।' ऐसे चमत्कारी पुरुष हमारे बीच मौजूद हैं, यह सौभाग्य की बात है और यह खुशी की बात है कि दिल्ली में एक करोड़ की लागत से एक आयुर्वेदिक रसायन शाला उनकी देखरेख में स्थापित की जायगी। यदि सचमुच उनमें ऐसा चमत्कार है तो सरकारी मदद मिले या नहीं, जनता उनकी ओर अवश्य आकर्षित होगी, क्योंकि सुगमता और सस्ताई से रोग मुक्ति कौन नहीं चाहेगा। भारत की रोगी जनता उनसे लाभ उठा कर, उनके चमत्कार की पुष्टि करे यही हमारी कामना है।

आयुर्वेदीय उत्सव

अन्य वर्षों की तरह इस वर्ष भी देश के विभिन्न भागों में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह पूर्वक मनाने के समाचार आये हैं उन सब का विस्तृत विवरण तो आगामी अङ्क में ही दे सकेंगे किन्तु यह स्पष्ट है कि इस उत्सव से वैद्यों में नव चेतना का प्रसार होता है और आयुर्वेदीय वातावरण देश में बनता है। हम पिछले अंकों में लिख चुके हैं कि धन्वन्तरि जयन्ती की तरह ही चरक और सुश्रुत की जयन्तियां भी किसी निश्चित तिथि पर मनाने का आयोजन वैद्यों को करना चाहिये कहीं कहीं महर्षि भरद्वाज की जयन्ती तो मनती है किन्तु महर्षि आत्रेय का जन्मोत्सव भी प्रचलित करना आवश्यक है। इन उत्सवों की परम्परा से हमें समय समय पर आयुर्वेदोन्नति की प्रेरणा मिलेगी तथा ऋषि ऋण से मुक्त होंगे, एवं जनता जनार्दन की सेवा नये उत्साह से होगी और सर्व साधारण का ध्यान आयुर्वेद की ओर खिंचेगा। आशा है आयुर्वेद संसार के कर्णधार इस सुझाव पर उचित विचार कर क्रियान्वित करेंगे।

शुक्ल जी शतायु हों

'सुधा निधि' के सम्पादक आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल के ८० वें जन्म दिवस के उपलक्ष में हम उनका अभिनन्दन करते हैं। आपने विभिन्न तरीकों से आयुर्वेद की जो सेवा की है वह चिर स्मरणीय है। हम इस अवसर पर भगवान् धन्वन्तरि से प्रार्थना करते हैं कि शुक्ल जी शतायु हों।

मलेरिया वा विषमज्वर

लेखक:—वैद्य रामचन्द्र प्रफुल्ल साहित्यरत्न साहित्यायुर्वेद विशारद, (R. A. M. P.)

मलेरिया शब्द लेटिन भाषा का है जिसका अर्थ है, एक प्रकारका ज्वर जो विषैले मच्छरों के काटने से उत्पन्न होता है। यह भारतवर्ष में होने वाली संक्रामक बीमारियों में से एक ऐसी दुष्ट बीमारी है जो कि अत्यन्त विशाल रूप में यहां व्याप्त रहती है। अनुसन्धान द्वारा पता चलता है कि हमारे देश में इस दारुण रोग के कारण प्रति वर्ष कुछ लाख मानवों की मृत्यु हो जाती है और इस प्रकार से यह रोग मानव जाति का एक बहुत बड़ा संहारक है। आयुर्वेद में इसको विषमज्वर माना है।

वर्षा ऋतु में होने वाले रोगों में यह सबसे अधिक कष्ट प्रद बीमारी है। यह व्याधि प्रायः वर्षा और शरद् ऋतु में अधिक होती है। इसका आक्रमण कम या ज्यादा इन ऋतुओं में प्रायः देश के अधिकांश भागों में होता रहता है। इस रोग में अधिकतया पित्त दूषित एवं प्रकुपित होता है। पंजाब, बंगाल, आसाम, आदि प्रान्तों में इसका प्रकोप बाहुल्य से हुआ करता है। किसी किसी वर्ष तो मलेरिया का प्रकोप देश में इतना भीषण होता है कि कोई गांव कोई मोहल्ला और कोई घर इस के आक्रमण से नहीं बच पाता। हमारे देश में ऐसे कोई विरले ही भाग्यशाली व्यक्ति देखने पर मिलेंगे जिन पर कभी भी उनके जीवन काल में मलेरिया का आक्रमण न हुआ हो।

पर्याय वाचक शब्द Synonyms—मलेरिया ज्वर, (Malaria) विषमज्वर, मौसमी बुखार, फसली बुखार, जूड़ी, शीतज्वर, पाली वाली बुखार आदि आदि।

कारण (Causes):—आयुर्वेदिक मत से आहार बिहार सम्बन्धी कुपथ्य करने से, दोष अन्य रक्तादि धातुओं में मिलकर विषमज्वर उत्पन्न कर देता है इसका कोई समय निश्चित नहीं होता है समय बदल कर तीसरे चौथे दिन ज्वर बड़े वेग से आता है और वही समय पाकर नित्य ज्वर भी उत्पन्न कर देता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि मच्छरों की एक विशेष जाति जिसे "अनोफेलिस" कहते हैं इनका मलेरिया ज्वर से विशेष सम्बन्ध है। ये मच्छर जब एक बार किसी स्वस्थ मनुष्यको काट लेते हैं तो इन मच्छरों के थूक के जरिये मलेरिया के कीटाणु उस स्वस्थ मनुष्य के रक्त में प्रवेश कर जाते हैं उस दंश स्थान पर उसी समय चकत्ते पड़ जाते हैं और शरीर के खून में जहर पहुंच जाता है जिसके फल स्वरूप कुछ दिनों बाद मलेरिया ज्वर का प्रादुर्भाव हो जाता है। संक्रामक जीवाणुओं का प्रभाव उन शरीरों पर ही जल्दी होता है जिन शरीरों में रक्ताणु कण दुर्बल होजाते हैं और श्वेताणु कणों में जीवाणुओं से युद्ध करने की शक्ति नष्ट होजाती है।

प्रकार (Kinds):—मलेरिया व विषम ज्वर निदानोक्त भेदानुसार निम्न प्रकार का होता है।

(१) सन्तत ज्वरः—जो ज्वर प्रति दिन आता और जिसका वेग हमेशा एक-सा बना रहे तथा जिसका दोष रस धातु में हो वह सन्तत ज्वर (Remittent fever) कहलाता है यह सात दिन, दस दिन अथवा बारह दिन तक क्रमशः वात, पित्त, कफ के दोषानुसार टिका रहता है।

(२) सतत ज्वर—जो ज्वर २४ घंटे में दो बार आता है, कभी चढ़ता है और कभी उतरता है और जिसका दोष रक्त धातु में हो वह सतत ज्वर (Doub-

le quotidian fever) कहलाता है।

(३) अन्येद्यु ज्वर—जो ज्वर २४ घंटे में एक बार अथवा रात या दिन में केवल एक बार आवे और जिसका दोष मांस में आश्रित हो उसको अन्येद्यु ज्वर कहते हैं।

(४) तृतीयक ज्वर (तिजरा)—तीसरे दिन आने वाले ज्वर को जिसका दोष मेद धातु में आश्रित हो उसको तिजारा (Tertian fever) कहते हैं।

(५) चातुर्थिक ज्वर (चौथिया) वह ज्वर जिसका आक्रमण चौथे दिन हो और जिसका दोष मज्जा धातु में आश्रित हो उसको चतुर्थक ज्वर (Quartan fever) कहते हैं।

लक्षण (Symptoms)—जिस व्यक्ति पर मलेरिया ज्वर का आक्रमण होता है, उसको ज्वर आने के २-३ घंटे पूर्व बड़ी घबराहट एवं बेचैनी मालूम होती है, जंभाई आती है, शिर, कनपटी, कटि व पैरों में दर्द होता है और आंखों में जलन होती है, जीभ मैली रहती है और थोड़ी देर बाद शीत लग कर ज्वर आजाता है। यह ज्वर कुछ समय तक काफी त्रास देकर बाद में पसीना आकर उतर जाता है। यह किसी को प्रतिदिन किसी को तीसरे दिन और किसी को चौथे दिन आक्रमण करता है। यह रोगी को बड़ा कष्टदायक होता है। कभी-कभी किसी-किसी रोगी को कुछ समय के लिये दवा पानी से आराम आजाता है परन्तु बाद में पुनः आक्रमण कर देता है, इस तरह बहुत लम्बे समय तक व्याधि चलती रहती है रोगी के जिगर तिल्ली आदि के उपद्रव बढ़ जाते हैं परिणामतः मोती ज्वर न्यूमोनिया आदि हो जाता है, क्षय भी इसके कारण घर कर सकता है।

अवस्थाएं (Stages)—मलेरिया (विषम ज्वर) की तीन अवस्थाएं होती हैं।

(१) शीतावस्था—इस अवस्था के प्रारम्भ होते ही रोगी शीत के मारे कांपने लगता है। होंठ थर थर कांपते हैं। दांत परस्पर बजते हैं रोगी बिस्तरे पर लेट जाता है और रजाई कम्बल आदि कई वस्त्र उढा देने पर भी कंपन बन्द नहीं होती। जाड़े के मारे रोगी इतना अधिक कांपता है कि उसकी चारपाई तक हिलने लग जाती है। रोगी का चेहरा फक पड़ जाता है। शरीर का तापमान बढ़ जाता है नाड़ी तेज हो जाती है। साधारणतया रोगी की यह अवस्था लगभग आध घंटे से एक घण्टे तक रहती है।

(२) गरमावस्था—शीतावस्था के व्यतीत होते ही रोगी उष्णता अनुभव करता है। ओढ़े हुए सब वस्त्र उतार देता है। मुख मण्डल लाल हो जाता है आंखें अत्यन्त सुर्ख हो जाती हैं। शारीरिक तापमान बढ़ता जाता है और १०३ डिग्री से १०५ डिग्री तक हो जाता है। ज्वर की तेजी से रोगी के बिस्तर तक गरम हो जाते हैं और आंखों में जलन से पानी बहने लगता है। बोलने में बड़ी घबराहट होती है। विक्षुब्ध हो जाता है एवं प्रलाप भी करने लगता है दाह एवं प्यास बहुत बढ़ जाती है। बार बार पानी पीने पर भी प्यास शान्त नहीं होती। वमन होने लगती है। जो कुछ पिया जाता है उसकी कय हो जाती है। वमन में पीला पित्त व खट्टा कडुवा पानी आता है। मूत्र गरम तथा कम आता है। यह अवस्था करीब ४-६ घण्टे तक रहती है।

(३) स्वेदावस्था—उत्तापावस्था के अनन्तर मुखमण्डल एवं ग्रीवा पर पसीना टपकना प्रारम्भ होता है और शनैः शनैः यह रोगी के तमाम शरीर पर फैल जाता है। कभी कभी पसीना इतने अधिक परिमाण में निकलता है कि ओढ़ने के वस्त्र तथा बिस्तर वगैरह भी पसीने से भीगकर गीले हो जाते हैं। शरीर भी तर हो जाता है। शिर दर्द हलका हो जाता है। शरीर का तापमान कम होकर नोर्मल आजाता है। रोगी आराम मालुम करता है तबियत हलकी हो जाती है। रोगी को स्वाभाविक निद्रा आती है जब रोगी सोकर उठता है तो वह अपने को बिल्कुल ठीक समझता है यह अवस्था लगभग ४-६ घण्टे

रहती है इन तीनों अवस्थाओं में लगभग १२ घण्टे लगते हैं। इसके उपरान्त रोगी अपने को स्वस्थ एवं अच्छा हो गया ऐसा मान लेता है किन्तु दर असल में ऐसा नहीं होता है, कुछ अन्तर के बाद २४, ४८ वा ७२ घण्टे के बाद रोगी को फिर ठण्ड लगती है और ज्वर चढ़ बैठता है और फिर पूर्व क्रमानुसार ज्वर टिककर पसीने आकर यथा समय उतर जाता है और इस तरह निश्चित समय दौरे ज्वर के आते रहते हैं।

भावीकथन--वैसे तो मलेरिया ज्वर साधारण तथा सुचिकित्सा से साध्य है किन्तु अनुकूल चिकित्सा न होने से यह संतत ज्वर, आन्त्रिक ज्वर, सन्निपातक, प्रलापक आदि में परिवर्तित होकर घातक एवं मारक तथा असाध्य बन जाता है।

चिकित्सा (Treatment)–पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में मलेरिया ज्वरमें सर्वोत्तम दवा कुनैन है, इसका उपयोग बुखार के उतरने की अवस्था में या जिस समय बुखार बिल्कुल न हो उस समय किया जाता है। यदि आंतें साफ न हों, जिव्हा मैली हो, और रोगी का यकृत् काम न कर रहा हो तो पहले विरेचन देकर पेट साफ कर लिया जाय पेट साफ होने पर कुनैन का असर बड़ा अच्छा होता है। एक कुनैन को पानी में घोलकर निम्बू का रस मिलाकर दिया जाय। एक बार में इसकी मात्रा ३ से ५ ग्रेन तक अवस्थानुसार दी जाय, ज्वर के आक्रमण के समय से पूर्व ३ घण्टे के अन्तर से ३ बार इसको लेना लाभप्रद है। कुनैन का उपयोग उस समय बन्द कर देना चाहिए जब कानों में बजने की सी आवाज और शिर में झनझनाहट पैदा हो जाय ज्वर का उतार होने पर जितनी जल्दी कुनैन दी जाती है उतना ही अधिक लाभ होता है। सुयोग्य एवं अनुभवी कुशल डाक्टर द्वारा इसका इञ्जेक्शन दिया जाना लाभदायक होता है।

कुनैन के अतिरिक्त आजकल मलेरिया ज्वर के लिये अनेक औषधियां प्रचलित हैं मैपोक्रेन पैलोडिन आदि है। आजकल ऐलोपैथिक चिकित्सा पैलूड्रिन को मलेरिया की अत्यन्त सफल औषधि मानते हैं।

आयुर्वेदिक शास्त्रोक्त मतानुसार इस रोग का मूल कारण पित्त-प्रकोप माना गया है यही कारण है कि इस रोग में सभी लक्षण पित्तप्रकुपित के दृष्टिगत होते हैं अतः चिकित्सा में पित्त शामक महत्वपूर्ण ज्वरघ्न औषधियां लक्षणानुसार प्रयुक्त की जाती हैं।

(१) चिकित्सा (Treatment)--आयुर्वेदिक चिकित्सा में निम्नलिखित प्रयोग बड़े लाभकारी सिद्ध हुये हैं।

(२) गोदन्ती भस्म १ रत्ती, गिलोयसत्व १ रत्ती, करंज १ रत्ती, शंख भस्म १ रत्ती, स्फटिक भस्म २ रत्ती ऐसी १ मात्रा अनुपान पित्तपापड़ा क्वाथ या तुलसी रस से दिन में ३ बार उपयोग में लेवें।

शास्त्रीय महा ज्वरांकुश १ गोली मलेरिया (विषम ज्वर) आने के समय से १२ घण्टे पूर्व तुलसी पत्र रस से देवें। तदुपरान्त ३-३ घण्टे से १-१ गोली देते रहें। बहुत संभव है पहले दिन ही ज्वर न आवे अन्यथा दूसरे तीसरे दिन इस क्रम से देवें। इकातिरी तिजोरिया, चौथिया विषम ज्वर अवश्य चला जायगा किन्तु चढ़ी हुई बुखार में इसका उपयोग न करें।

(३) गुलाबी स्फटिक भस्म १ माशा और मिश्री १ माशा शीत ज्वर आने से पूर्व जल से खाने से अवश्य बड़ा लाभ होता है।

(४) शास्त्रीय, मृत्युञ्जय रस व शीतारि रस तुलसी पत्र रस और मधु के साथ देने से शीत ज्वर नाश होता है।

(५) निम्बपत्र सूखे १० तोला, त्रिफला ३ तोला, (त्रिकुटु) (सोंठ, मिर्च, पीपल) ३ तोला, अजवायन ५ तोला, (सैंधा, संचर और काला नमक) तीनों नमक ३ तोला, यवक्षार २ तोला इन को कपड़ छान करके २ माशा की मात्रा में जल से दिन में ३ बार ज्वर आने से पूर्व लिया जावे। सद्य विषम ज्वर नाशक है।

(६) हींग भुनी १ रत्ती, करंज ½ रत्ती, सुहागा फूला १ रत्ती, शंख भस्म १ रत्ती ऐसी १-१ मात्रा गरम पानी या दूध से रात्रि में सेवन करने से विषम-ज्वरघ्न है।

(७) सुदर्शन चूर्ण १ माशा, सज्जीखार २ रत्ती, स्फटिक भस्म २ रत्ती ऐसी १-१ मात्रा अनुपान जल से दिन में ३ बार देवें। विषम ज्वर नाशक है।

(८) गोदन्ती भस्म ४ रत्ती, जहर मोहरा पिष्टी २ रत्ती, रसादि वटी २ रत्ती ऐसी १-१ मात्रा जल से ३-३ घंटे से देने पर विषम ज्वर की पीड़ा दूर होती है।

(९) करंज गिरी, चिरायता, अतीस, स्फटिक भस्म, छोटी पीपल (कणा) हरड़े प्रत्येक बराबर बराबर ले चूर्ण करें। ४ रत्ती की मात्रा में सुदर्शन अर्क से ज्वर आने से पूर्व दिन में ३ समय देवें, ज्वर दूर होगा।

(१०) शास्त्रीय सर्वज्वर हर लोह सुदर्शन चूर्ण अथवा निम्बादि चूर्ण के अनुपान से दिन में दो बार सेवन कराने से तथा पुट पक्व विषम ज्वरान्तक लोह, एवं अमृतारिष्ट व चन्दनादि लोह का प्रयोग तुलसी पत्र रस व मधु से कराने से बड़ा लाभ होता है।

जी मिचलाने पर व वमन होने की दशा में एलादि वटी व रसादि वटी सेवन कराया जाय। आवश्यकतानुसार सूत शेखर रस १ रत्ती परिमाण में दिया जा सकता है। मुंह शुष्क होने की दशा में आलू बुखारे का छिलका मुंह में रक्खें।

प्यास—दाह बेचैनी में पोदीना सूखा, छोटी इलायची के दाने छोटी पीपल एवं मिश्री थोड़े पानी में औटावें अथवा ५ लौंग उनके फूल तोड़कर और थोड़ी मिश्री का चूर्ण दोनों २ तोला पानी में गरम करके पिलावें। पीपल की छाल जलाकर उसके जलते कोयले पानी में बुझाकर पीने से प्यास कम होती है एवं दाह शान्त होती है। मयूर पिच्छ भस्म २ रत्ती मधुसे देने से भी वमन रुकती है। दस्त साफ लाने को मुनक्का के बीज निकाल कर काली मिर्च और नमक यथा परिमाण में मिला भून लें और उसका सेवन किया जाय मलेरिया रोग में सात लंघन से अधिक लंघन नहीं कराना चाहिये एक सप्ताह के बाद रोगी की हालत के अनुसार हलका सुपाच्य पथ्य देना उचित है। मलेरिया रोग में निम्बू का उपयोग अति गुणकारी माना गया है। पीने को पानी उबाल कर ठंडा किया हुआ पिलाया जाय। मौसमी, संतरा आदि फलों का रस उबाली हुई हरी सब्जियों का रस, पपीता, अंगूर आदि ताजा फल, परवल, करेला, चौलाई, पालक आदि सब्जी एवं अंजीर, मुनक्का आदि सूखे फल वालों का पानी, साबू दाना, दूध वगैरह पथ्य रूप में देना रोगी के लिये बड़ा हितकारी माना गया है।

प्रतिरोधक तदवीर (Preventive remedy)—मलेरिया ज्वर के आक्रमण से बचने के लिये निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना जरूरी है:—

(१) मलेरिया से बचने के लिये मनुष्यों को थोड़ा नमक मिश्रित पानी वर्षा ऋतु में पीना उचित है।

(२) कालीमिर्च और नमक मिलाकर, प्रतिदिन, निम्बू चूसा करें।

(३) तुलसी के पत्तों की चाय लेना बड़ा लाभदायक है।

(४) गीली जगह पर बैठना व सोना उचित नहीं है।

(५) भोजन हलका और सुपाचक लेना चाहिए।

(६) अपने घरों व रहने के स्थानों को बिल्कुल साफ और स्वच्छ रक्खा जाय।

(७) वर्षा ऋतु में सब कपड़े और फर्नीचर वगैरह सामान बाहर करके कमरों को झाड़ बुहार कर साफ कर दिया जाय ताकि मच्छरों को प्रवेश के लिये अंधेरे कोने न मिल सकें।

(८) घरों के सामने मैले गन्दे पेड़ व वगैरह न लगाये जायें।

(शेष पृष्ठ १६२ पर देखें)

शरद् ऋतुचर्या

[रचयिता—वैद्य श्री शङ्करलाल शर्मा, भिषगाचार्य फतेहपुरम]

शरद् ऋतु का वर्णन

तरणिरेति यदा तुलवृश्चिकौ,
धरणिरेति शरन्नवसम्पदः ।
विपणिरेति नवम्बर धान्यकम्
सरणिरेति मनुष्य गणाकुलम् ॥

अरुणपिङ्गलसोष्ण विभावसुः
सितपयोद सुनिर्मलमम्बरम् ।
शरदि पङ्करजोरहिता मही
पथिषु पर्यटनं नहि कष्टदम् ॥

सुपरिपाकमुपागतमार्तवं
सकल धान्यचयं प्रविलोक्य वै ।
प्रमुदिताः कृषका हृदये भृशम्
सफलतामधिगम्य जना इव ॥

अरुणमज्जसुमिष्ट जलान्वितैः
मधुरिमा; सितयातिशयायुतैः ।
मद सुधारस पित्त बलापहै-
रवनिरत्र फलै मतिराभिधैः ॥

अवतिषु प्रियगन्ध सुगन्धितम्
मृदुल पीतवराकृतिभिर्युतम् ।
अशनसौख्यकरं भुवि विश्रुतम्
शरदि कोऽतिन चिर्भटिका फलम् ॥

मरुषु यत्र जलं लवणान्वितम्
गलविलं पिबतुः दहति क्षणम् ।
मरुषु तत्र फलादिषु मिष्टता
मनुभवन् विभुशक्तिरहोऽतुला ॥

विमलनीर सरोरुह हंसकै-
र्विलसितानि सरांस्यखिलान्यपि ।
अशन शारदरक्तक काशक-
सहचरैर्वसुधा खलु शोभिता ॥

उषसि सत्त्वरमेत्यकृषीवलाः
निजनिजानिह वप्रचयान् मुदा
विपुलशारद ताप सहिष्णवः
प्रणिचयन्ति हि धान्यचयान्रताः ॥

विधुबलं क्रमशोऽत्र विवर्धते
हिमबलञ्च शनैः परिवर्धते ।
जनबलं परिवृद्धिमुपैत्यतो
निजबलं जहति क्षिति जन्तवः ॥

वितत चन्द्रकर द्युतयो निशि
विनिपतन्ति यदा सिकताचये
सुषुमया प्रतिभाति तदा हि स
विशदरौप्यनिभश्च मनोरमः ॥

शशधरो मुदितो गगनात् सुधा-
स्रवणमाकुरुते निशि शारदः ।
रविकरैर्दिवसे परितापिताः
अनुभवन्ति सुखं निशि मानवाः ॥

निशि निशाकर रश्मि विभासिते
क्षितितले तरुणाः पटकन्दुकैः
मनसि हर्षयुताः प्रतिवासरम्
शरदि खेलरताः विलसन्ति वै ॥

"कबडि" खेलरता मिलिताः क्वचित्
क्वचिदनेक पुराण कथारताः
विविधकार्यरता मनुजाः क्वचित्
विधुकरामृत बिन्दु निषेवणम् ॥

चणक जीरक धान्यक राजिका
यवकदीप्यकमेथिक छत्रिकाः ।
सुमनसर्षप वर्तुल मिश्रितान्
हृदि मुदः कृषका प्रवपन्ति हि ॥

जिघांसया रोगगणम् प्रजाना-
मम्भोनिधेः प्रादुरभूत् स्वयम्भुः ।
धन्वन्तरिस्तेन शरन्महत्त्वं
लोके विशिष्टं खलुवर्ततेऽत्र ॥

संक्षिप्त भावार्थ—सूर्य के तुला और वृश्चिक राशि पर आने से शरद् ऋतु मनोहर रूप में आती है। जल स्वच्छ और भूमि पंकरहित हो जाती है। कृषक अनाज निकाल कर प्रसन्न हो जाते हैं। राजस्थान में मधुर फल मतीरा और ककड़ी की बहार रहती है। विभिन्न फूल खिल जाते हैं। चन्द्रमा अपनी किरणों से अमृत बरसाता है। लोग आमोद प्रमोद में मग्न रहते हैं। चना, जीरा, धनियाँ, आदि इसी ऋतु में किसान बोते हैं। इस ऋतु में ही स्वास्थ्य के आदि देव भगवान् धन्वन्तरि ने जनता को रोगों से मुक्ति दिलाने के लिए अवतार लिया था। इस प्रकार मनोरम शरद् ऋतु का असाधारण महत्व है।

ऋतुचर्या

वारिदकाल चितं भुवि पित्तं
भानुकरैश्शरदि द्रवितन्तत्
कुप्यति पैत्तिक रोगकरञ्च
जेतुमतो यतनीयमिहाशु ॥

तिक्तघृतञ्च विरेचनमत्र
वीक्ष्य शरीर बलं मनुजानाम्
शोणित मोक्षणमस्ति सुपथ्यम्
पित्तगदैः परिपीड़ित पुंसाम् ॥

मिष्टतिक्त शिशिरं सकषायं
यल्लघु पित्तशमाय समर्थम्
सेव्यमिहाशन पानमजस्रम्
पैत्तिक रोगजिहासुमनुष्यैः ॥

शालिसितामलकानि मधूनि
मुद्गयवान् सुमनांश्च पटोलान्
इक्षुपयोविकृतिं सुखमम्बुः
वारि हितं सकलं विमलत्वात् ॥

वारिजशालिसरः प्लवनानि
मित्रगणेषु कथाः विविधाश्च
रात्रिमुखे विधुरश्मि सु सेवा
सौधतले सुखमत्र निषण्णः ॥

सूक्ष्मसुनिर्मल वस्त्र धृतः सन्
चन्द्र सुचन्दन लेपयुतश्च
शुभ्रसुमस्रगुशीर मनोज्ञः
शुक्तिजविद्रुमरत्न धृतश्च ॥

क्षारवसातप तैल दधीनि
तृप्ति तुषार दिवाशयनानि
पित्तकराणि च यानि विमुञ्चेत्
पूर्वचलं निशि जागरणञ्च ॥

संक्षिप्त भावार्थ—वर्षा काल में संचित पित्त सूर्य के तेज से शरद् ऋतु में द्रवित होकर अनेक रोगों को पैदा करता है। अतः पित्तको दूर करने के लिए सबको विरेचन लेना चाहिए। शोणितमोचण और तिक्तक घृत का सेवन भी अवस्थानुसार कराना अच्छा है। इस ऋतु में मधुर, तिक्त, कषैला और शीतल आहार करें। विशेषकर शालि धान्य, मिश्री, आंवले, शहद, मूंग, जौ, परवल आदि का भोजन में उपयोग करें। रात में शशि-किरणों का आनन्द लें। महीन और निर्मल वस्त्र पहनें। चन्दन का लेप और विभिन्न रत्नों को धारण करें। इस ऋतु में क्षार, तैल, आतपसेवन, दही, दिवास्वप्न, पूर्व की वायु का सेवन, और रात में जागने आदि पित्तवर्धक, आहार विहार को सर्वथा छोड़ दें।

दीपमालिका

यदर्थमत्रानिशमात्मदेह–
स्वास्थ्यं विनाश्यापिकृत प्रयुक्ताः
भवन्ति लोका इह "दीपमाला"
श्री पूजनार्थं समुपस्थितेयम् ॥

तत्स्वागतार्थं ललनाः स्वगेहान्
सम्मार्जयन्ति प्रविलेपयन्ति
कुड्येषु चित्राणि विभिन्नरूपा–
ण्यायोजयन्ति स्वगृहे प्रसन्नाः ॥

निशासु बालाः मुदिताः मिलित्वा
क्रीडन्ति सौरादि विनिर्मितैश्च
पट्टाखपुष्पज्भरिवस्तुजातैः
दीपालिकायां समुपस्थितायाम् ॥

(शेष पृष्ठ १६२ पर देखें)

पारद-रहस्य

[लेखकः—वैद्य पं० यमुनाप्रसाद शर्मा पालीवाल]

मैंने पारद के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थ देखे हैं और आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वानों से इस सम्बन्ध में जिज्ञासा की है। अन्ततोगत्वा मुझे श्री नाथ सम्प्रदाय आचार्य श्री स्वामी जी नवलनाथ जी महाराज से मिलने के बाद संतोष हुआ। आप जोधपुर और बीकानेर महाराज के भी गुरु हैं।

आपने दो पल पारा मंगवाया तदनन्तर स्वामी जी ने कहा कि इसके टिके बिना सब भ्रष्ट है। इसलिए तुम पहले चार लाख गायत्री मन्त्र का जाप करो, फिर अघोर रक्षा मन्त्र का सवा लाख जाप करो, मैंने ऐसा करने की स्वामी जी महाराज से प्रतिज्ञा तो करली, पर कर नहीं सका उन्होंने मेरे कथन पर विश्वास कर पारद का प्रयोग अपने सामने कर वाया वह लिख रहा हूँ।

पारद अष्ट संस्करण

१. राई, सैंधव, चित्रक, अदरख, और मूली को दो दो तोले लेकर पीस कर लुगदी बनालें, उसमें पारद को रख कर उसे भोज पत्र और कपड़े में लपेट कर दोलायन्त्र के द्वारा कांजी और नींबू के रस में चौबीस पहर तक पकावें। अग्नि के लिए वेर की लकड़ी का प्रयोग करें।

२. ऊन, राख, गुड़, सैंधव, पुरानी ईंट का चूर्ण लेकर कांजी और नींबू के रस के साथ तीन दिन तक पारे का मर्दन करें।

३. ग्वार पाठा, त्रिफला, चित्रक, अंकोल, भट कटैया की जड़ का रस मिलाकर तीन दिन तक घोटें।

४. बिजोरे नींबू के रस और कांजी में घोट कर विद्याधर यन्त्र से उड़ालें।

५. ताम्र का बुरादा दो तोला, और सीप का चूना दो तोला मिलाकर घोट लें और अर्द्धपातन यन्त्र से उड़ालें।

६. गोमूत्र, सैंधानमक, ढाक के फूल का रस और लहसुन का रस मिलाकर शीशी में बन्द करदें। फिर जमीन में गाड़ कर एक हाथ मिट्टी ऊपर से डाल दें इस पर धान की भूसी से दो पहर तक मन्द मन्द आँच दें।

७. पान का अर्क, लहसुन का अर्क, खीरवसी का अर्क, कच्ची इमली में घोट लें। उसकी लुगदी में पारे को बांध कर दोलायन्त्र के द्वारा कांजी और नींबू के रस में तीन दिन तक स्वेदन करें।

८. फिटकड़ी, कसीस, सुहागा, मिर्च, सैंधानमक, राई, सहिजने की जड़, मूली, सतावरी, लजवन्ती को पीस कर उसकी लुगदी बनालें, उसमें पारे को रख कर भोज पत्र में लपेट लें ऊपर से कपड़ा लपेट लें, फिर दोलायन्त्र में चौबीस पहर काञ्जी से पकावें।

इसके बाद पारद और गंधक को समभाग लेकर कज्जली कर लें फिर कृष्ण अभ्रक की भस्म समभाग डाल कर घोट लें। साथ ही उसमें मण्डूक, सुईस, रोहु मच्छली की चर्बी डालते जावें तथा दीपिका यन्त्र द्वारा पातन करें।

पश्चात् कृष्णाभ्रक की भस्म को बार-बार, मातुलुङ्ग के रस की भावना देकर तीव्र आंच में धोंकने से सत्त्व निकलेगा। उसे तीगुर, बकुनी, पलाश पुष्प रस तथा मूत्र वर्ग में भावना देकर तप्त खरल में पारद के साथ घोटने से वह मिल जाता है। सुवर्ण भस्म को पारद में मिला देना चाहिए। साथ में नाग

बीज को जो सुवर्ण और शुद्ध सीसा से तैयार होता है, पारद में मिला लेना चाहिए, यह अग्नि स्थायी हो गया :—

इसे अभ्रक चूर्ण मिला कर आरनाल द्वारा घोटना पश्चात् आँवलासार गन्धक के साथ पुनः मत्स्य की बसा में पिघला कर पारद को अलग निकाल लें। यह बभुक्षित पारा हो गया फिर इसमें सुवर्ण पात्र (वर्क) मिला कर घोट लें फिर इसे रंजन औषधों से रंजन करें यह पारद सुवर्ण वर्ण का हो जाता है। इस तरह ७ भावना सुवर्ण की, ७ भावना रौप्य की, ७ शीशे की, ७ ताम्र की, ७ भावना लोह की, ७ रांगे की दी किन्तु पारद सब भावनाओं को रंजनकर उसी २ पल के तोल में रहा। यह क्रिया श्री पूज्य स्वामी नवलनाथजी ने मिस्कीन साह हकिम के हाथ से करवाई थी उसी की प्रति क्रिया मैंने की सुवर्ण को ५ बार पचा गया बाद में मैं अर्थ संकट में ग्रसित हो गया इस क्रिया में मुझे २ हजार रूपया का नगद खर्च आया यह क्रिया मैंने १९४९ में इलाहाबाद में दिसम्बर मास में त्रिवेणी तट पर की इसे पूर्ण करने में मैं समर्थ न होकर घर में कलह असंतोष का कारण बन गया। इसकी पूर्ति के लिये बहुत प्रयत्न किया। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि स्वामी जी के वाक्य न पालने से मेरी यह क्षति हुई इस विषय में निधि विद्या का लेख सिद्धान्त साप्ताहिक काशी वर्ष ९ सम्वत् २००५ सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ। लेखक श्री बुद्धिसागर जी मिश्र मु० बढनी पो. कप्तानगंज जि० बस्ती को पत्र दिया था। आपने नीचे लिखा उत्तर दिया :—

"नमस्कार" पत्र मिला धन्य वाद। आपका पत्र पढ़ कर मुझे आप से सच्ची सहानुभूति है। इधर कई लेख इस वर्ष के सिद्धान्त में निकले हैं उन्हें ध्यान से पढ़िये कुछ लेख प्रेस में पहुंचे ही नहीं या गायब हो गये हैं। मैं सोच रहा हूं किसी समय अतीव सरल उपाय जिसे स्वयं कर के तब सिद्धान्तके द्वारा प्रकट करदूं फिर भी विघ्न निवारण की क्रिया करने का समय मिले। मैं वृद्ध और दुर्बल हो गया हूं। कोई सच्चा साथी संगी भी नहीं हैं। फिर भी जब बात चल पड़ी है जब किसी समय यदि ईश्वर की दया हुई आपकी इच्छा के अनुकूल उपाय लिखने की चेष्टा करूंगा।

इस पारद की महत्ता को जान लेना सुवर्ण भाण्डार और सिद्धिका अधिकारी हो जाना है। रसायन शास्त्र में ही नहीं श्रुति तथा पुराणों में भी बतलाया गया है, कि पारद शिवजी का वीर्य है। वही अग्नि में प्रविष्ट होकर सुवर्ण बन गया। इसी से सुवर्ण को अग्नि का वीर्य कहा है। पारद पर अधिकार पाने के लिये विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न उपाय बताये हैं। मूल तत्त्व शिववीर्य (पारे) में सन्निहित है। मन्त्रों द्वारा सुरक्षित, योग द्वारा सुदृढ, विधान द्वारा सन्नद्ध, कोई भाग्यवान् पुरुष ही पारद सिद्धि कर सकता है। जिसमें जरा भी न्यूनता होगी उसे लेने के देने पड़ जावेंगे। इस के लिए शिव आराधना आवश्यक है, यह हमारा निजी अनुभव है। यह आयुर्वेद शास्त्र द्रव्यार्जन के लिये नहीं हैं प्राणियों की सेवा के लिये है। लेखकने गुरुवाक्य न मानकर स्वेच्छाचार से २००० रुपया बर बाद कर दिया इस का किसे विश्वास हो या न हो किन्तु यह सत्य सामने रखा है मेरी इच्छा है।

चाह नहीं हैं मुझे सुवर्ण की, चाह न सम्पत्ति घर आवे।
चाह नहीं हैं सुख भोगूं या, दुःख मय हो जीवन जावे॥
मगर चाह है मुझे जगत में, जीव न कोई दुख पावे।
आयुर्वेदकी औषधि खा, धर्म, आरोग्य शिखरपर चढ़ जावे॥

यदि विशेष जानकारी पारद के विषय में जाननी हो तो श्रीमान् पं० बुद्धि सागर जी से पत्र व्यवहार करके देखें वे जीवित हैं या नहीं मैं बता नहीं सकता, सिद्धान्त पत्र बन्द हो गया उन्होंने विश्वविद्यालयों को और संस्थाओं से अपील की थी कि इस विद्या को मृत न होने दें मैं वचन या लेख द्वारा मार्ग दर्शन करूंगा शरीर से नहीं कारण वृद्ध और दुर्बल हो गया हूं।

अमर हितोपदेश

निर्देष्टा—कविराज पं० अमरनाथ वैद्य शास्त्री
आयोंदय प्रचार मण्डल, वनस्पति-भवन, देहरादून।

वे पठित भी मूर्ख हैं....कि

१. जो प्रभातवेला में घूमते हुए बिना पानी के दातुन चबाते, मार्ग थूंकते जाते हैं।

२. जो पान खाते हुए यत्र-तत्र थूंक कर स्थान रक्तरंजित करते रहते हैं।

३. जो खड़े होकर सब के समक्ष सार्वजनिक स्थानों में निस्संकोच मूत्री प्रक्रिया (मूत्र त्याग) करते हैं।

४. जो बसों में, रेलों में, निषेधादेश लागू होने पर भी अग्नितुण्डियें (बीड़ी, सिगरेट) सुलगाते और यात्रियों पर विषैला जूठा धूआं फेंकते हैं।

५. जो शौचस्थान (टट्टी) में बैठे भी धूम्रपान करते हैं।

६. जो चलते फिरते फल खाते, चाट चाटते और पत्ते मार्ग में फैंकते हैं।

७. जो बार-बार उंगली को थूक लगाकर पुस्तक पत्र-पत्रिकाओं, संचिकाओं के पन्ने पलटते हैं।

८. जो जीभ से थूक लगाकर टिकट, लिफाफे चिपकाते हैं।

९. जो बात-बात में वाक्व्यभिचार (गाली देना) करने में लज्जा अनुभव नहीं करते।

१०. जो जिस पात्र में भोजन करते हैं उसी में हाथ धोते, कुल्ला कर देते हैं।

११. जो सड़क के किनारे बैठे भाग्य निर्देशक, भविष्यवक्ता (स्वयं भाग्यहीन) रमलियों से भाग्यफल परीक्षा करवाते हैं।

१२. जो ईश्वर को भूल कर जादू, टोना. जंतर-मंतर, भूतप्रेत पर विश्वास करते हैं।

१३. जो मित्रों, परिचितों को भी धोका देकर स्वार्थ-साधन को हस्तकौशल समझते हैं।

१४. जो भारतीय सभ्यता, संस्कृति, सदाचार, शिष्टाचार धर्म विचार को हेय समझते हैं।

१५. जो विदेशी भाव, भाषा, वेश-भूषा और संस्कृत को अपनाकर भारत के कल्याण की कल्पना करते हैं।
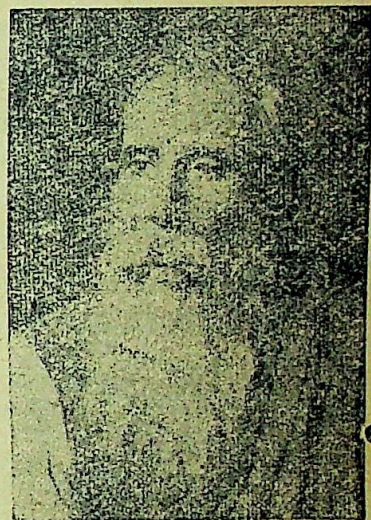
१६. जो प्रतिवासी (पड़ौसी) के सुख-दुःख में सहयोग, सहानुभूति नहीं करते।

१७. जो माता-पिता, गुरुजनों की अवज्ञा, अवहेलना कर सुसभ्य बनने का साहस करते हैं।

१८. जो अकारण ही अपने प्रणों, वचनों और निर्णयों का पालन नहीं करते।

१९. जो वाचनालय में जाकर समाचार-पत्रों में से इच्छित लेख, चित्र फाड़ लेते अथवा सुन्दर सचित्र पत्रिका चुरा कर (हस्तगत) ले जाते हैं।

२०. जो अच्छी पुस्तक को मांगकर ले जानेपर उसे विकृत, खण्डित कर लौटाना अपराध नहीं समझते हैं। (कभी लौटाते भी नहीं)।

२१. जो अपने को अनार्य, पूर्वजों को परदेशागत, असभ्य, अज्ञानी और मानव को वानर का वंशज समझते हैं। इत्यादि-इत्यादि

देश का दुर्भाग्य है कि इस प्रकाश-शिक्षा के युग में प्रायः पढ़े लिखे व्यक्तियों में ये दोष स्वाभाविक रूप

से बढ़ रहे हैं। आप सावधान होकर विचार करें कि उपरोक्त निर्दिष्ट सूत्रों में से कोई अंश आपके साथ चरितार्थ तो नहीं होता ?

स्वयं व औरों को इन दोषों से बचाकर 'मनुर्भव' इस आदेश का पालन कीजिये। यद्यपि ये दोष साधारण प्रतीत होते हैं, परंच हानिकारक तथा लज्जा-जनक अवश्य हैं।

वे मात पिता अन्धे हैं

वे माता पिता आंख रहते भी अन्धे हैं कि--

१. जो अपनी लड़कियों को ऐसे विद्यालयों (स्कूलों, कालेजों) में पठनार्थ भेजते है जहां सह शिक्षा चल रही है।

२. जो इस ओर ध्यान नहीं देते कि छुट्टी होने पर लड़की ठीक समय पर घर पहुँचती है या नहीं।

३. जो ट्यूषण (ट्यूशन) के लिए युवक पुरुष अध्यापक की नियुक्ति करते हैं।

४. जो युवक सहयोगियों के साथ मनोरञ्जनार्थ यत्र-तत्र यात्रार्थ भेजते हैं।

५. जो विलासमय अश्लील चलचित्र (सिनेमाओं) के अवलोकन से नहीं रोकते।

६. जो विभिन्न कार्यालयों (दफ्तरों, फैक्टरियों) में सर्विस कराकर 'शील सरवस्व' बिगाड़ने की स्वतन्त्रता देते हैं।

७. जो सुशिक्षिता लड़कियों की आयवृत्ति (आमदनी) से प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

८. जो कन्याओं को आधुनिक उच्च शिक्षा तो दिलाते हैं, परन्तु यथा-समय उसके विवाह की चिन्ता नहीं करते।

९. जो कन्याओं की अवस्था, योग्यता के अनुसार 'वर' की देखभाल करने का प्रयत्न नहीं करते।

१०. जो उच्च शिक्षिता कन्या का अनुपयुक्त व्यक्ति से विवाह कर देते हैं।

११. जो अपनी स्थिति से ऊंचे घर में लड़की देने का दुस्साहस करते हैं।

१२. जो कुमारी के लिए बच्चों वाले विधुर, अनमेल अवस्था के वर, को ढूंढ़ लेते हैं।

१३. जो अकारण ही, युवती लड़की के अविवाहित रहने के विचार को आदर्श मानकर, सन्तुष्ट रहते हैं।

१४. जो कन्या के विवाह से विमुक्त (विरक्त) रहने की इच्छा के वास्तविक कारण को जानने की चेष्टा नहीं करते।

१५. जो वयस्का शिक्षिता कन्या की इच्छानुकूल सुयोग्य वर ढूंढने में विलम्ब तथा प्रमाद करते हैं।

१६. जो युवती कन्याओं को, 'ललित कला, सांस्कृतिक' समझ कर, नाचने गाने में प्रवृत्त करते हैं और वह भी नचैयों-गवैयों के साथ।

१७. जो छात्रावस्था में कन्याओं को विकारमयी कहानी-पत्रिकाओं, नवल (नाविल) उच्छृङ्खलवृत्त उपन्यासों का पढ़ना वर्जित नहीं करते।

१८. जो स्वयं तो विधुर दशा में भी नवीना पत्नी ले आते हैं और लड़की को ब्रह्मचारिणी रखने की मूर्खता करते हैं।

१९. जो सार्वजनिक खेल, श्रम, आयोजन, आन्दोलन कार्यों, मनोरञ्जन दृश्यों में युवकों के साथ भेजने में अपना गौरव समझते हैं।

२०. जो कन्याओं को प्रपञ्ची साधु, गाहत गुरुओं, कीर्तनकार कथक्कड़ों, योगाभिमानियों के संसर्ग में पड़ने देते हैं।

२१. जो व्यर्थ ही कन्याओं के साथ कठोरता, क्रूरता, का दुर्व्यवहार करते हैं।

सावधान ! ध्यान दीजिये

ये अनुभवसिद्ध कटु सत्य हैं जो कि समय-समय पर विदित होते रहते हैं। कभी बड़ी दुखःदायी घटनायें हो जाती हैं जिनसे सन्ताप पश्चाताप बढ़ जाता है। परञ्च खेद है कि इन बुरे उदाहरणों से बोध प्राप्त नहीं होता और सभ्यतार्थ व्यक्ति यह समझ लेते हैं कि ऐसा हमारे साथ न होगा और सब जानते हुए भी वह भद्र मूर्ख बने रहते हैं।

इन निर्देशित सूत्रों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं, क्यों कि प्रतिदिन ऐसी अवांछनीय घटनायें घटती रहती हैं जिससे कि माता-पिता का शिर नीचा हो जाता है, लड़कियों का जीवन बिगड़ने से कुल कलंकित हो जाता है। इसलिए माता-पिता को जान बूझकर अन्धे न बनकर, सावधानी से कन्याओं के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

असीम शक्तिशाली पारद

(लेखक—कविराज-किशोरीलाल शर्मा "किशोर")

पारद एक तरल धातु है, जो सृष्टि के आदि काल से खनिज रूप में उपलब्ध है। इस में अनेक प्रकार के यौगिक मिलते हैं, जिन से पारा अलग किया जा सकता है। पारद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में "रसरत्न-समुच्चय" में एक पौराणिक कथा को आधार मान कर लिखा है, पारद शिवजी के वीर्य से उत्पन्न हुआ था। पारद भारत में हिमालय के खोहों में और विदेशों में पर्वतों पर मिलता है। परन्तु पारद हमारे देश में विशेषतः विदेशों से मंगाया जाता है।

पारद के विषय में लोगों की जान कारी कब हुई, यह ऐतिहासिक रूप से ज्ञात नहीं। परन्तु इतना अवश्य है कि नागार्जुन के समय में लोग पारद गुणों से उतने ही अवगत थे जितना कि आज कल जनसमुदाय जानता है।

परन्तु पारदोत्पत्ति के विषय में निम्न श्लोक पाये जाते हैं:—

शैलेऽस्मिञ्छिवयो प्रीत्या परस्पर जिगीषया।
सम्प्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोक क्षोभ कारिणि॥१॥
विनिवारयितुं वह्निः सम्भोगं प्रेषितः सुरैः।
कपोत रूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम्॥२॥
अपक्षिभावसंक्षुब्धं स्मर लीला विलोकिनम्।
तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा॥३॥
(रसरत्न समुच्चय पूर्व ख० प्र० अ०)।

किन्तु प्राचीन पारदोत्पत्ति की तुलना यदि आधुनिक विज्ञान से करनी हो तो निम्न ढंग से करनी चाहिए।

इस अवतरण का तात्विक भावार्थ यह मालुम होता है कि हिमालय में जब जड़ व चैतन्य शक्ति के अन्दर संघर्षण होता है, तब पृथ्वी के अन्तराल में आग्नेय पदार्थ ज्वालामुखी के रूप में होने लगते हैं। उस समय त्रैलोक्य में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला भूकम्प पैदा होता है। संसार के हिमप्रदेशों में प्रायः ज्वालामुखी प्रगट होते हैं। अर्थात् "शैलेऽस्मिन्" आदि प्रथम श्लोक में इसी अभिप्राय का रूपक है।

जहां भूकम्प के उपरान्त ज्वालामुखी का उद्गम होता है, वहां पर पृथ्वी शतधा विदीर्ण हो जाती है, जिसमें से प्रथम धूम्रवर्ण की गैस निकलती है। धूएँ के निकलने के पश्चात् अग्निकी ज्वाला निकलने लगती है, यह (अपक्षिभावसंक्षुब्धम्) आदि दूसरे श्लोक का तात्पर्य हो सकता है।

ज्वालामुखी के आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होने लगते हैं, तब उसके अन्तराल के उड़नशील खनिज उष्ण जल के साथ मिल कर वाष्परूप में ऊपर आकर शीत होने पर जम जाते हैं। इसी बात के द्योतक अन्य दो श्लोक हैं। जो खनिज इस प्रकार निकलकर जमा होते हैं, उनके जमने का क्रम डी० सी० जी केलिस प्रोफेसर इम्पिरियल कालेज, लन्दन के मतानुसार यह है—

सब के नीचे पातालिक आग्नेय पाषाण ग्रेनाइट और उसके ऊपरी भाग में एक ओर जलज, पारद, तुरमलीन, पुखराज, वंग और टगस्टन रहते हैं। तथा दूसरी ओर भारी धातु जैसे-ताम्र, नाग, यशद, सुवर्ण, रजत, और रौप्यमाक्षिक आदि रहते हैं।

हिंगुल या सिंगरफ पारेका विशेष यौगिक है। इस से पारा निकाला जाता है। कतिपय आयुर्वेदज्ञ

विद्वानों का मत है कि हिंगुल से निकाला हुआ पारा शुद्ध होता है, विना शुद्ध किये भी औषधिरूपमें परिणत किया जा सकता है। मेरी दृष्टि से तो हिंगुल से निकले पारद को भी निम्बू के रस में घोट कर शुद्ध करना अच्छा होगा।

बाजार में विकनेवाले पारद में अनेक धातुएं, जैसे-सीसा रांगा जस्ता आदि। जब तक पारद से इन दोषों को दूर न किया जाय तब तक औषध रूप में व्यवहार करने योग्य नहीं रहता।

आयुर्वेद के मतानुसार ये दोष होते हैं:—

नागोबंगो मलोवह्निश्चाञ्चल्यं च विषंगिरिः।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः॥

अर्थात् उपर्युक्त आठ दोष पारद के अन्दर स्वभावत: विद्यमान होते हैं।

यदि यह अष्ट दोष युक्त पारद खाने के व्यवहार में लाया जाय तो क्रमश: ये रोग उत्पन्न होजाते हैं।

यथा—

व्रणं कुष्टं तथा जाड्यं दाहं वीर्यस्य नाशनम्।
मरणं जड़तां स्फोटं कुर्वन्त्येते क्रमानृणाम्॥

इसीलिए प्राचीन आचार्यों ने कहा है—

दोषहीनो यदा सूतस्तदा मृत्यु ज्वरापहः।
शुद्धोयममृतः साक्षाद्दोष युक्तो रसो विषम्॥

अर्थात् जब पारद सब दोषों से रहित एवं शुद्ध होता है, तब मृत्यु और ज्वर को दूर करता है। यहां ज्वर से सम्पूर्ण रोग ही अभिप्रेत हैं। शुद्ध पारद साक्षात् अमृत कल्प है,परन्तु अशुद्ध पारद विषतुल्य है।

शास्त्रानुसार शुद्ध पारद के लक्षण—

अन्तः सुनीलो वहिरुज्वलो यो,
मध्याह्न सूर्य प्रतिम प्रकाशः।
शस्तोऽथ धूम्रः परिपाण्डुरश्च,
चित्रो न योज्यो रसकर्म सिद्धौ॥

पारे का प्रयोग अनेक प्रकार से होता है, इस से भौतिक व रासायनिक यन्त्र भी जैसे-थर्मामीटर, बैरोमीटर, रक्तभार मापक, आदि नते हैं।

अनेक स्थलोंपर उद्धरण मिलता है कि राजा भोज के समय में हवाईजहाज उड़ाने के लिये किसी प्रकार इसका उपयोग किया जाता था, और पैट्रोल की आवश्यकता का भी निवारण होता था। आयुर्वेद विधिके अनुसार पारेकी चार प्रकार की भस्में बनती है।

(१) प्रथम तो श्वेतभस्म रस कर्पूर।
(२) लाल भस्म, रससिंदूर आदि।
(३) पीतभस्म जो सर्वाङ्गसुन्दरके नामसे विख्यात है।
(४) वैसे ही पारे की कृष्णभस्म भी बनती है।

इन चारों भस्मों के निम्न गुण हैं—

श्वेतं पीतं तथा रक्तं कृष्णश्चेति चतुर्विधम्।
लक्षणं भस्म सूतानां श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम्॥

इन भस्मों के निर्माण की विधि रस पुस्तकों में मिलती है परन्तु विस्तार भय से नहीं लिखी।

आयुर्वेद में अकेले पारद का प्रयोग नहीं होता। सदैव इसके साथ गंधक का योग रहता है। इसी कारण हम कहते हैं कि गंधक का योग पारद को अमृत बनाता है। यदि गन्धक का योग न हो तो विष समान मारक है। जैसे पुरुष प्रकृति की सहायता के बिना सृष्टि की रचना नहीं कर सकता, उसी प्रकार पारद गंधक के संयोग के बिना पंगु रहता है। पारद अपने गुणों के अतिरिक्त योगवाही भी है। असाध्य से असाध्य रोगों को दूर करने के लिए पारद से बढ़ कर अन्य औषधि नहीं है। आज भी इस का अधिकाधिक प्रयोग वांछनीय है।

अजवायन की कहानी उसी की जबानी

(लेखकः—कविराज श्रीकृष्ण त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य)

आयुर्वेद के नवयुवक उपासकों ! तनिक तनिक मेरी ओर भी तो देखो, मैं भी तो तुम्हारे औषधि-भण्डार की एक सदस्य हूँ। मेरा नाम अजवायन है, तुम्हारे पूर्वज तो मेरा बड़ा आदर करते थे। मुझे हर समय अपने पास रखते थे। आप भी सेवन करते व रोगियों को भी कराते थे। तुम्हारी नानी, दादी, तो मुझे बड़े लाड़ प्यार से खवारती थी। प्रसूति के बाद अपने स्वास्थ्य रक्षण के लिये मेरा सेवन करती थीं, तभी तो वह प्रदर, कमर दर्द और मासिक धर्म की गड़बड़ी की शिकार नहीं होती थीं, परन्तु आप लोग तो आज मुझे बिल्कुल भूल गये हैं। मेरा नाम लेना भी पाप समझते हैं, तभी तो आज चारों ओर से खास कर स्त्री जाति नाना प्रकार के रोगों से घिरी है, मैं तो इस का कारण यह समझती हूँ कि आप लोगों ने मुझे व मेरे साथियों को भुला दिया है। यह वास्तव में हमारा अपमान है, परन्तु मुझे मानव जाति पर दया आती है, मुझे चिन्ता नहीं, कि आप लोग मेरा मान करते हैं, अथवा अपमान। मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि वह आप को सुबुद्धि दे। आप अपने घर में देखें, हमें सपनों में दूसरों की चकाचोंध में न फँसे, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा।

मैं अपने कुछ प्रयोग तुम्हें बता रही हूँ। अगर आप इस का सेवन करेंगे अथवा करायेंगे तो मैं अपने को धन्य समझूंगी।

प्रयोग सं० १—श्वेत प्रदर के लिये १ सेर पानी में १ तोला चूना कलई भिगो दें। फिर पानी को नितार लो। इस पानी में से आधा पाव पानी ले शीशे के वर्तन में डाल उस में ३ माशे मुझे (अजवायन) डाल दें, सुबह हाथ से मल कर छान कर पिला दें। इस प्रकार सेवन करने से कुछ दिन में प्रदर नष्ट हो जावेगा।

प्रयोग सं० २—वातज अर्श व कमर दर्द के लिये १ छटांक पुराने गुड़ में १ छटांक मुझे मिला कर कूट लें, मात्रा-६ माशे गर्म जल से सुबह शाम लें।

प्रयोग सं० ३—कोष्ठगत वात के लिये, मुझे (अजवायन) लेकर तवे पर भून लें, मेरे समान ही सैंधा नमक मिला कर पीस लें। मात्रा-३ माशे गर्म जल से सेवन करायें।

प्रयोग सं० ४—जीर्ण ज्वर के लिये ६ माशे गिलोय, ३ माशे मुझे (अजवायन) व १ माशे काली मिर्च ले शाम को पानी में भिगो दें। सुबह उसी पानी में पीस कर छान लें। १ रत्ती अच्छी अभ्रक भस्म बताशे में डाल कर खिलावें, व ऊपर से यह जल पिला दें।

प्रयोग सं० ५—प्रसूति के रोगों के लिये १ रत्ती प्रताप लंकेश्वर के साथ मुझे (अजवायन) को १ माशे परिमाण में मिला कर सेवन करावें।

विशेषः—अजवायन देशी ही लेनी चाहिये। तथा इसे धोकर सुखा लेना चाहिये १ व्यक्ति जिसको एपेन्डिसाइटिस् का शूल होता था उसने डा० ताराचन्द से आपरेशन करवाया परन्तु दर्द न गया उसे लग भग तीन मास तक खाने के बाद दोनों समय साबुत अजवायन सेवन कराया और वह इससे ठीक होगया।

— मलेरिया वा विषमज्वर —

(पृष्ठ १५२ का शेष)

(९) बाल्टियों और टबों में भरा हुआ पानी रोज वा एक दिन छोड़ कर बदल दिया जाय।

(१०) मलेरिया के मच्छरों को गंदगी का स्थान बड़ा प्रिय होता है अतः जहां सड़ा गन्दा पानी थोड़ा भी रहेगा वहां मच्छरों के ढेरों के ढेर दिखाई देने लगेंगे, इस लिये अपने आस पास न तो सड़ा गन्दा पानी एकत्रित ही होनें दें और न किसी न किसी किस्म की गंदगी ही पैदा होने दें।

(११) अपने रहने के मकानों के कोनों तथा नाले नालियों, पेशाबघरों टट्टियों आदि स्थानों में डी० डी० टी० तैल फिनायल आदि समय समय पर छिड़-कवाया जावे।

(१२) तालाबों जोहड़ो गड्ढों, आदि में जहां गन्दा पानी इकट्ठा होगया हो वहां मिट्टी का तेल सप्ताह में दो बार डाल दिया जावे। मिट्टी के तेल से मच्छर और उनके अंडे नष्ट होजाते हैं, उनके किनारों का घास अच्छी तरह काटदिया जाय ताकि वहां मच्छर छिपकर आश्रय न ले सकें।

(१३) जो लोग मशहरियों का उपयोग करने में समर्थ हैं उन्हें मलेरिया के दिनों में सोते समय मश हरियाँ उपयोग में अवश्य लेनी चाहिए।

(१४) यदि रोज सोते समय सरसों के तेल की मालिश की जाय तो मलेरिया के मच्छरों के जहर का असर शरीर में नहीं पहुंच सकता।

(१५) मच्छर के काटे हुए स्थान को नमक के पानी से सेक देना चाहिए।

— शरद् ऋतुचर्या —

(पृष्ठ १५४ का शेष)

निजापणान् वैश्यगणाः प्रसन्नाः
सम्मार्ज्य शुभ्रास्तरणैः सुचित्रैः
मध्ये सुदीपैः सहितेषु तेषु
कुर्वन्ति लक्ष्म्यार्चनमत्र रात्रौ ॥

स्त्रियश्च गेहेषु सुमिष्ट खाद्या-
न्यारच्य पूर्वं श्वसुरादि पूज्यान्
सम्भोज्य चातुस्वयमाचरन्ति
चार्चन्ति लक्ष्मीं शुभ लग्नमध्ये ॥

शरावदीपास्तिल तैल पूर्णाः
गृहोपरि भान्ति हि पंक्ति बद्धाः
क्वचिन्मरुत्प्रेरित तैल दीप्ता
कोश प्रदीपास्तडितश्च दीपाः ॥

हर्षोदधि प्रेरित मानसाश्च
सम्पूज्य लक्ष्मीं विविधोपचारैः
स्त्रियः पुमांसः शिशवश्च रात्रौ
दिदृक्षवो यान्ति पुरस्य शोभाम् ॥

ग्रामे ग्रामे प्रतिगृहमिहा-
लोकमालोक्य दीप-
मालानां वै मनुजहृदया-
न्याप्नुवन्ति प्रमोदान् ॥

दीपावल्यां नगर निगम-
ग्राम शोभां विलोक्य
मन्ये क्षोण्यां सुरपतिपुरी
स्वर्गतश्चावतीर्णा ॥

संक्षिप्त भावार्थ—इसी ऋतु में महालक्ष्मी पूजन होता है। सब लोग अपने मकानों की खूब सफाई करते हैं। घरों में अनेक मिठाइयां बनती हैं। आतिशबाजियाँ छूटती हैं। बाजारों की दूकानों में भी विधि विधान से लक्ष्मी पूजन होता है। रातको दीपक जग मगाते हैं। शहरों में बिजली की भी चकाचौंध हो जाती है। सभी लोग नगर की शोभा देखने को निकल पड़ते हैं। ऐसी निराली शोभा हो जाती है, मानों इन्द्रपुरी ही जमीनपर उतर आई हो। ऐसी शरद् ऋतु की प्रशंसा कौन न करेगा ?

शारीरिक उन्नति कैसे की जाय

लेखक—श्री हरीसिंह राठोर

(सितम्बर अङ्क से आगे)

(४) जाँघ, पिंडली और पैर के पंजे की कसरत याने (बैठक):—बैठक के लिये तैयार हो जाओ और साँस खींच कर दोनों हाथों के अंगूठों को अन्दर की तरफ रख जोर से मुट्ठियाँ बाँध लो और दोनों हाथों को पीछे की तरफ लेजाओ इस समय हाथों की उंगलियां ऊपर की ओर तथा हाथ की पीठों को पृथ्वी की ओर रखो इस समय सीना आगे की ओर कुछ निकली हुई होगी और बदन को बराबर में रखना चाहिये दोनों पैर जुड़े रखना चाहिये इस प्रकार तैयार हो जाने पर पंजे के बल बैठ जाना चाहिये लेकिन बैठने पर कमर और नितम्ब (चूतड़) पैर की एड़ियों से १ या १½ इञ्च ऊपर होना चाहिये। पर ऐड़ियों को छूना नहीं चाहिये। बैठते वक्त ५ या ६ सेकिण्ड ठहर कर फिर खड़े हो जाना चाहिये और धीरे धीरे सांस निकाल देना चाहिये इसी तरह कई बार करना चाहिये। और मन में भावना कीजिये कि मेरी जांघ की मांस पेशियाँ खूब दृढ बलवान बन रही हैं। और पैर की पिंडलियाँ सुडोल सुन्दर बन रहे हैं। पैर के पंजे मजबूत हो रहे हैं। मैं अजर, अमर, निरोग, बन रहा हूँ, मेरी आयु दीर्घायु हो।

(५) पैरों के पंजे, पिंडलियाँ, जांघ, हाथ की अंगुलियां, कलाई, बाँह और कंधे की कसरतः—सीधा आईने के सामने खड़ा होजाय (आईना न हो तो कोई हर्ज नहीं) और धीरे-धीरे साँस खींचकर रोक ले और दोनों हाथों की मुट्ठी बांधकर हाथ को अगल-बगल (दायें बायें) सीधी फैलाते हुए पैर के पंजे के बल सीना तान कर ऊंचा होता जाय (१ या २ सेकिन्ड रुकते हुए) फिर दोनों हाथों को नीचे लाते हुए मुख और कंधे के सामने तानते हुए ले जाय और पंजे के बल नीचे होते हुए फिर पैर की पिंडलियों को और जांघो को तानते हुए ऊपर हो जाय (१ या २ सेकिन्ड रुकते हुए) फिर दोनों हाथों को तानते हुए तथा नीचे लाते हुए अगल बगल (दांये बांये) को ले जाते समय फैलाओ और हाथों को तानो तथा पंजे के बल नीचे होते हुए फिर ऊंचा हो जाय और पैर की पिंडलियां और जांघ को ऊपर की तरफ ताने रहे। (१ या २ सेकिन्ड रुकते हुए) हाथ को नीचे कमर से लगादो और पैर के बल नीचे हो जाओ। और धीरे धीरे साँस बाहर करदें। और इसी तरह से कई बार करें। और मन में सोचें कि मेरे पैर के पंजे मजबूत हो रहे हैं पैर की पिंडलियों की मांस पेशियां बन रहीं हैं। जांघें सुन्दर सुडोल हो रही हैं। सीना आगे को निकल रहा है, पेट की मांस पेशियां बन रही हैं। तथा हाथ सुन्दर सुडौल बन रहे हैं। और जिस स्थान पर जोर पड़ता हो उस स्थान पर मसलना चाहिये।

(६) शीर्षासन-इसे सिर के बल किया जाता है याने सिर नीचे, टांगें ऊपर। इसके कई नाम है :—वृक्षासन, विपरीतासन, मुक्तहस्तवृक्षासन तथा इनको हाथ के और सिर के बल किया जाता है। इस आसन के कर लेने से वृद्धावस्था और मृत्यु के दुःख से छूट जाता है। इससे बाल काले बने रहेंगे, झुर्रियां मिट जायंगी तथा मृत्यु, योग करने वाले के वश में हो जायगी। इच्छा शक्ति, मनोबल और पूर्ण विश्वास के साथ यह साधन किया जाय तो निश्चय ही काल और मृत्यु भी वश में हो जाय। वृक्षासन या शीर्षासन करने से रक्त का प्रवाह तेज हो जाता है और शरीर के जिस भाग में रक्त न पहुँचा हो उस भाग में पहुँच जायगा तथा शरीर का मल दूर हो जाता है और रक्त भी साफ होता है। रक्त साफ होनेसे शरीर सुन्दर, सुडौल, नीरोग, युवा और बलवान बनता है। इससे गरदन और मस्तक का व्यायाम हो जाता है। इस

(आसन) से आंख, कान, दांत नीरोग रहते हैं। इस आसन से धातुक्षीणता, प्रमेह, बवासीर का रोग एक दम छूट जाता है। तथा मृगी, सिरदर्द, खांसी, जुकाम, कमजोर दिमागीपन सब मिट जाता है। इसके करने से सुस्ती की जगह चेतनता, आलस्य के स्थान में स्फूर्ति और अवनति की जगह उन्नति होती है। तथा आंखों की ज्योति बढ़ती है। शीर्षासन करने वालों को सिर में बाजारू बना हुआ सुगन्धित तैल जिसे व्हाइट आयल कहते हैं प्रयोग नहीं करना चाहिये। शुद्ध तिल्ली का तेल, खोपरे का तेल, कड़वा तेल और बादाम का तेल लाभदायक होगा। जो सज्जन सुगन्धित तैल प्रयोग में लावें तो चमेली, मोगरा, आंवला का तैल काम में ले सकते हैं। अगर नियम पूर्वक यह आसन किया जावे और आहार-विहार का भी ध्यान रखा जावे तो अधिक लाभ होगा। इस आसन को करने वाले को शौकिया रूप से कभी ऐनक (चश्मा) नहीं लगाना चाहिये।

(१) शीर्षासन—शीर्षासन शुद्ध व खुली वायु में करना चाहिये। प्रारम्भ में ४ या ५ अंगुल मोटे गद्दे को दीवार से सटाकर बिछाओ और किसी मुलायम कपड़े की गोल गेंडुई बनाकर जिसमें सिर अच्छी तरह जम जाय झुक कर हाथ गेंडुई पर रखिये और फिर पैरों को घुटने से मोड़ते हुए पैर को धीरे धीरे उठाकर ऊपर ले जाते समय टांगें धड़ पर रख लीजिए. तथा दोनों घुटने मुड़े हुए हो, एड़ियां पीछे चूतड़ों से सटी हुई हों। इस दशामें कुछ समय तक ठहरे रहने की कोशिश करो इतना हो चुकने पर आधा शीर्षासन सध गया ऐसा समझना चाहिये। जब इतना शीर्षासन सध जाय तो फिर पैरों को धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठावें औरसीधा कर देना चाहिये अगर सीधा न जाय तो दीवार के सहारे ही करना चाहिये। शरीर बिल्कुल सीधा रहे। कम से कम नित्य प्रतिदिन १५ या २० मिनट तक उल्टा शरीर को खड़ा रहे। और अधिक से अधिक २½ या ३ घंटे तक शीर्षासन कर सकते हैं। सिर पर अधिक जोर नहीं पड़ना चाहिये। फिर दोनों हाथ को पृथ्वी पर जमा कर सांस खींच कर रोक लें और ऊपर की ओर धीरे धीरे हाथ या हाथ की अंगुलियों के बल सीधा शरीर को उल्टा ही उठावें तथा शरीर सीधा और सारा जोर हाथों पर ही पड़ेगा और सांस को बाहर निकाल दें सांस की क्रिया धीरे धीरे चलनी ही चाहिये। और जितनी देर हाथ के बल रहा जाय उतनी ही देर तक रहें और फिर धीरे धीरे हाथ की कोहनियों को मोड़ते हुए नीचे सिर के बल या कैंची दार हाथ जो कि सिर को साध रखा हो आ जाय फिर पैर को घुटने से मोड़ता हुआ नीचे भूमि पर पैर जमा दें और धीरे धीरे सारा शरीर सीधा करके बिल्कुल सीधा पैरों के बल खड़ा हो जाय।

१ या २ मिनट सीधा खड़ा रहे ताकि रक्त का प्रवाह सम हो जाय फिर अपने अंग को आईने में देखें मन में सोचें कि मेरा शरीर अजर, अमर, निरोग,रंग लाल गुलाबी, गाल भरे हुए लाल हो, आँखों की ज्योति बढ़े, मैं दीर्घायु होऊं, मैं बुद्धिवान बनूं, शक्तिवान बनूं मैं जो वायु रूपी सांस ले रहा हूँ ब अमृत है, और वायु जब बाहर निकालते हो तो मन में सोचे मेरे शरीर से (रोगी हो तो) रोग के कीटाणु बाहर निकल रहे हैं। तथा बीमारी दूर हो रही है।

इतना कर चुकने पर अगर आपने रात्रि में सोते समय चना भिगोया हो तो खूब चबा चबा कर खाया जाय और चिकने तथा पौष्टिक पदार्थ खाया जाय फिर दूध पिया जाय।

ऐसा करने से रक्त अधिक व शुद्ध बनेगा तथा शरीर में ताकत बनायेगा। फिर १ या २ घंटे बाद लंगोट खोलना चाहो तो खोल देना चाहिए और साफ पानी से स्नान करना चाहिये ताकि शरीर हल्का हो जाय। इस क्रिया को प्रति दिन करना चाहिये। तथा इसे औरतें भी कर सकती हैं। अपनी शक्ति अनुसार पाठकों को अवश्य ही करना चाहिये अवश्य ही लाभ होगा। क्या आप नहीं जानते कि इस व्यायाम या आसन को व्यायामों या आसनों का सम्राट कहते हैं। इस आसन को प्रातः काल सूर्योदय के पहले तथा सायं काल सूर्यास्त के पहले ही कर लेना चाहिये।

सोना चान्दी कैसे बनायें ?

(लेखक—आचार्य नित्यानन्द)

छान्दोग्योपनिषद् में निधि-विद्या की चर्चा है, कुछ लोगों का ख्याल है, निधि विद्या ही रसायन-विद्या रहती है, कुछ कहते हैं, देव विद्या के अन्तर्गत ही कीमियागिरी है, हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते किन्तु यह निश्चित है कि कृत्रिम तरीकों से सोना चांदी हमारे यहां बनाया जाता था, इस काममें मुख्य रूप से पारे का प्रयोग किया जाता था, कौटिल्य कृत्य अर्थ शास्त्र में "रसेन्द्र वेध–सम्भूत" सुवर्ण का उल्लेख है।

बुद्ध भगवान के जन्म से पहले ही पाशुपत मतानुयायियों ने शरीर की स्थिरता के लिए अनेक प्रयोग किये, शरीर के चिरस्थायी होने से योगसिद्धि अधिक समय तक करने की लालसा उनके मन में थी, पारे का प्रयोग जरा निवारण में करने से पहले उसकी परीक्षा की जाती थी यह परीक्षा धात्वन्तर परिवर्तन शक्ति से होती थी, जब पारद के द्वारा सोना और चांदी बन जाती थी, तब उसे सिद्धि के उपयुक्त मान लिया जाता था।

योग्नि सहत्वं प्राप्तः संजातो हेमतार कर्त्ता च।
...............विधिना सिद्धि प्रदो भवति ॥
—रसेन्द्र चिन्तामणि (३।१९२)

इस प्रकार सिद्ध पारद की परीक्षा के लिए उससे सोना या चांदी बनाना आवश्यक था, इस सोने को सहज या वेधज सुवर्ण कहा जाता था (रस रत्न समुच्चय ५।८) कालान्तर में यह सोना बाजार में भी बिकने लगा था, बाजार में ले जाने से पहले इस सोने को जमीन में गाड दिया जाता था, फिर एक सप्ताह बाद उसे बाजार में लाकर बेच दिया जाता था।

विद्धं रसेन यद् द्रव्यम् पक्षार्ध स्थापयेद् भुवि।
तत आनीय नगरे विक्रीयीत विचक्षणः ॥

संदेह की गुन्जाइश नहीं—

रस-शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय में पारद के द्वारा सोना चांदी बनाना तो साधारण बात थी, इस विषय का जितना विवेचन किया गया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है, कितने ही ग्रन्थ तो ऐसे हैं। यदि उनमें से यह प्रकरण हटा दिया जाये तो बाकी कुछ बचेगा ही नहीं। नाथ सम्प्रदाय के एक सिद्ध श्री ढुण्ढुकनाथ ने बड़े मार्मिक शब्दों में यह चेतावनी दी है कि यदि कोई इस ग्रन्थ में से कुछ प्रयोगों को चुरा कर अपने ग्रन्थ में रखेगा तो इन प्रयोगों को बनाने में मेरे शरीर से जो उष्ण स्वेद निकला है, वह उसे भस्म कर देगा, नाथजी ने आगे इन गुरुओं की भर्त्सना की है, जो अपने शिष्यों को प्रत्यक्ष ज्ञान कराये बिना ही पारद विषयक ज्ञान दे डालते हैं।

इस प्रकार की घोषणा करने वाले अपने ग्रन्थ में कोई झूठी या सुनी सुनाई बात लिखेंगे, यह सन्देह करने की गुंजाइस नहीं है, कुछ ने तो यह स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने एक भी ऐसा प्रयोग नहीं लिखा है, जिसे कि उन्होंने अपने हाथ से न बनाया हो, महाराजा चन्द्रगुप्त मौर्य के जमाने में सिद्ध पारद के निर्माण का स्पष्ट उल्लेख प्रसिद्ध रस ग्रन्थ "आनन्द कन्द" (अ० वि० १२। १५०–१५१) में मिलता है।

रस शास्त्र की रहस्य पूर्णता—

हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि रस शास्त्र
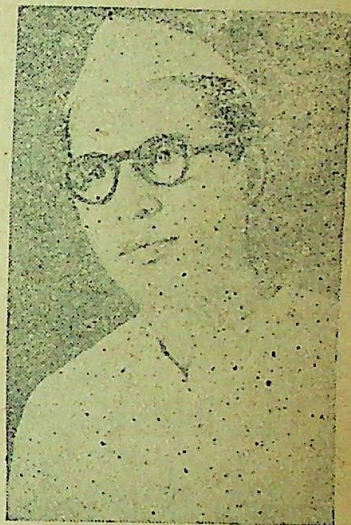
के सभी ग्रन्थों में विषय को गुप्त रखने की चेष्टा की गई है, इनके रहस्य पूर्ण होने के कारण ही इस विषय का गुरु के द्वारा समझना आवश्यक था कालान्तर में यह गुरु परम्परा लुप्त हो गई और अब उस रहस्य को खोलना बहुत कठिन हो गया है। जरा नमूना आप भी देखें रसार्णव में पारे को बांधने वाली एक बूंटी का उल्लेख किया गया है।

गंगा यमुनयोर्मध्ये प्रयागो नाम राक्षसः।
तस्य मध्ये वरारोहे क्षणात् बध्येत सूतकः॥

एक टीकाकार के अनुसार गंगा से अर्थ शुक्ल पक्ष का है और यमुना से कृष्ण पक्ष अभिप्रेत है। इन दोनों के मध्य में पूर्णिमा रहती है। पूर्णिमा के दिन ही प्रयाग अर्थात् सोमलता अपने पूर्ण रूप में आती है, सोमलता के द्वारा प्रकृष्ट याग (यज्ञ) होते हैं, इस लिए उसे ही प्रयाग कहा गया है, उसे राक्षस कहने का अभिप्राय रात में ही खिलने वाले सोमलता के एक भेद से है, शास्त्रों में सोमलता की कई किस्में मानी गई हैं, उनमें से एक की ओर इंगित किया गया है, यही हाल इस विषय के हिन्दी साहित्य का है।

श्री गुरु गोरखनाथ जी की एक साखी देखिये—

गीध, हंस, सुआ, एक संग
खटाई त्रिफला अष्टंग
कन्या रजनी गैल किराना
अगन पुटा दे दारिद जाना।

कविराज महाशरण जी के अनुसार शुद्ध लोह चूर्ण (गीध) शुद्ध पारा (हंस) और नीलाथोथा (सुआ) को एक एक तोला लेकर, एक सौ पचास बड़े नींबूओं (खटाई) के रस में खरल कर ७ सूर्य पुट दो, फिर अष्टमांश (अष्टंग) अवशिष्ट त्रिफला के काढ़े में ७ पुट देवे, तब गवारपाठा (कन्या) और हलदी (रजनी) के रस में भी सात सात पुट देवे, फिर अन्ध मूषा में रख कर तीन वार तेज अग्नि से पाक करें, अमलनाथ योगिराज के अनुसार सुरमे की कंकड़ी जैसा पदार्थ मूषा में प्राप्त होगा और उससे एक तोला वंग को चांदी के रूप में परिणत किया जा सकेगा।

इस प्रकार द्रविड़-प्राणायाम से लिखी गई क्रियायें और पारिभाषिक अर्थ हमारे लिए एक रहस्य ही रहे, फिर भी यह विद्या सर्वथा लुप्त नहीं हुई, आज भी इसके जानकार हैं।

लोह साधक कृष्णपाल वैद्य

कुछ समय पहले श्री कृष्णपाल जी वैद्य ने स्वर्ण और राजती विद्या के चमत्कार कितने ही व्यक्तियों के सामने प्रदर्शित किये थे एक घटना ऋषिकेष में हुई थी। १२ अप्रेल १९४२ को बाबू श्री युगलकिशोर जी बिरला श्री गणेशदत्तजी गोस्वामी और स्व० महादेव भाई के सामने २०० तोला पारा बाजार से मंगवाकर रखा गया और एक तोला के करीब एक औषधि (सम्भवत: सिद्ध पारद) उस पारे में मिलाकर मिट्टी के बरतन में डालकर अग्नि पर चढ़ा दिया गया सुवर्ण बनाने की सारी प्रक्रिया महादेव देसाई के हाथों से कराई गई वैद्यजी दूर खड़े खड़े बतलाते रहे जिस समय पारे में रसायन परिवर्तन हो रहा था, उस समय करीब ३० तोला पारा उसमें से निकाल भी लिया गया था, जिसे अब भी देखा जा सकता है, इसमें पारे के कण देखे जा सकते हैं और पीटने पर बिखर भी जाते हैं करीब आधे घण्टे में सुवर्ण बनकर तैयार हो गया। श्री जनार्दन जी भट्ट का कहना है कि बाद में सोना एक सार्वजनिक संस्था के लिए दिल्ली में बेचा भी गया।

श्री महादेव भाई ने नरहरि पारीख को भी अपने एक कार्ड में सुवर्ण बनाने की इस घटना का जिक्र किया है जिसमें उन्होंने बताया है कि पारे से सुवर्ण बनाने वाले को और उसकी प्रक्रिया को देखा तरीका सीधा-सादा है, कोई बात छिपी हुई नहीं है केवल मूल रसायन मात्र छिपी चीज है। सोना तो कुन्दन जैसा बनता है मूल पत्र यों है।

पारा मांथी सोनू बनावनार ने जोया अने तन क्रिया जाई, क्रिया तो सीधी अनै साधी छे। ऐमां कोई गूढ़ नथी। मात मूल जे औषधि ने जे रसायन छे ते गूढ़ छे सोनू तो तो कुन्दन जेवू बने छे।

(शेष पृष्ठ १६८ पर देखें)

प्रकृति की अमूल्य देन—

गाजर

—केवल धीर, तिब्बिया कालेज, दिल्ली

प्राचीन समय में ऋषि मुनि खुले मैदानों में रहते थे। स्वच्छ जल, वायु ग्रहण करते थे और अधिकतर अपना निर्वाह फल तथा सब्जियों द्वारा ही करते थे। यही उनका रहन सहन और भोजन था। प्रकृति में उन्हें पूर्ण विश्वास था। यही विशेष कारण था उनके सुखी तथा स्वस्थ रहने का। आज के वैज्ञानिकों द्वारा निकाला गया परिणाम भी यही है कि प्राकृतिक नियमों का पालन करने से मनुष्य सदैव सुखी रहता है तथा दीर्घकाल तक जीवित रह सकता है।

फल और सब्जियां मनुष्य को प्रकृति की देन है। जितना अधिक हो सके, मनुष्य को इनका प्रयोग करना चाहिये।

गाजर अपने स्थान पर फल भी है और सब्जी भी यह प्रकृति की अमूल्य देन है। यह कई प्रकार की होती है। लाल तथा काले रंग की गाजरें अन्य प्रकार की गाजरों से अच्छी होती हैं। गाजर में ८६ प्रतिशत पानी, ९ प्रतिशत प्रोटीन, एक प्रतिशत चरबी (Fats) कुछ नमक (Salts) १½ प्रतिशत कारबो हाईड्रेटस (Carbo Hydrates) तथा कुछ ⅘ प्रतिशत कैलिसियम (Calcium) तथा कुछ फासफोर्स (Phosphorus) होता है। गाजर में शक्कर (Sugar) भी पाई जाती है। इसके अतिरिक्त गंधक (Sulphur) तथा कुछ स्टार्च (Starch) भी होती है। यह हर दृष्टि से स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभकारी है।

इस में फासफोरस (Phosphorus) होने के कारण इसके प्रयोग से आंखों को बहुत लाभ होता है। इससे आंखों के भीतरी अंग शक्तिशाली होते हैं। क्योंकि इसमें लोह के तत्व भी पाये जाते हैं। गाजर के लगातार प्रयोग से रक्त की कमी जाती रहती है। गधंक की कुछ मात्रा होने के कारण शरीर के ऊपरी भाग के रोग, फोड़े, फुन्सी आदि नहीं हो पाते। खुजली आदि रोग विशेषतः शीतकाल में ही होते हैं। गाजर भी इसी मौसम में पाई जाती है। इसके प्रयोग से उक्त रोग दूर हो जाते हैं। दाद या कोई अन्य चरम-रोग हो जाने पर गाजर तथा दूध का सेवन कुछ दिनों तक करना बहुत लाभकारी है। बवासीर, क्षय रोग, पीलिया तथा पित्त आदि रोगों में गाजर का प्रयोग बहुत अच्छा है।

गाजर के प्रयोग से शरीर मुलायम तथा सुन्दर हो जाता है। यह शरीर में शक्ति का संचार करती है। इसके प्रयोग से मनुष्य के वजन में भी अंतर पड़ जाता है। यह पेट को साफ करती है तथा दस्त आदि इससे ठीक आता रहता है। बच्चों को गाजर का रस पिलाने से उनके दांत निकलने में सुविधा रहती है तथा उन्हें दूध भी ठीक प्रकार से हजम होता रहता है।

गाजर का रस मस्तिष्क के लिये बहुत अच्छा सिद्ध हुआ है। शारीरिक विकास एवं बुद्धि के लिये इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। रोगों के आक्रमण से सुरक्षित रखना गाजर का विशेष गुण है। गुर्दों की जलन मिटाने में भी गाजर अद्वितीय है। उदर तथा आंतों के रोगकी यह रामबाण औषधि है। भयङ्कर कोष्ठबद्धता के निवारण का विलक्षण गुण गाजर में भरा पड़ा है। पके हुये या पुराने घाव पर गाजर का गुदा उबाल कर बांधने से शांति प्राप्त होती है। कच्ची गाजर कुचल कर तथा उसमें आटा मिलाकर छालों तथा जलन वाले घावों पर यदि बांध दिया जाये तो अवश्य लाभ होता है।

गाजर की जड़ तथा पत्तों में भी विशेष गुण हैं। इसकी जड़ स्त्री के दुग्ध में पीसकर उसे नाक से खींचने पर हिचकी जाती रहती है। इसकी पत्तियों के दोनों ओर घी चुपड़कर उसे गरम करके और उसका रस निकालकर एक एक बूंद कान तथा नाक में डालने पर आधाशीशी "अध कपारी" रोग दूर हो जाता है। पाचन क्रिया की खराबियों से आंतों में विषैले पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं और उनके सड़ने से भयङ्कर कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं किन्तु गाजर

का सेवन करने से सड़न नष्ट हो जाती है और कीटाणु समाप्त हो जाते हैं। इसमें विटामिन ए. अधिक रहने के कारण दूध, दही, मछली के तेल तथा लाल पाम के तेल के पूरक के रूप में इसकी गणना होती है। गाय तथा घोड़ों की जाति के पशुओं के लिये भी गाजर में पोषक तत्व हैं। दूध गाढ़ा करने तथा बढ़ाने के लिये गांवों में गाय को गाजर खिलाई जाती है।

गाजर प्रायः सभी जगह पाई जाती है। इसकी खेती नरम तथा भुर भुरी मिट्टी में की जाती है। नमकीन मिट्टी इसकी उपज के लिये विशेष उपयोगी है। भाद्रपद से कार्तिक पर्यन्त बोई जाने के कारण गाजर की खेती में विशेष सिंचाई की आवश्यकता नहीं है।

गाजर को कच्चे रूप में ही प्रयोग में लाना चाहिये। उबालने या पकाने से उसके बहुत से रसायनिक तत्व नष्ट हो जाते हैं। यह कृति की अमूल्य देन है, हमें अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये।

— सोना चान्दी कैसे बनायें —

(पृष्ठ १६६ का शेष)

इस घटना का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी बाबू श्री युगल किशोर जी विरला से भी सुना है बाद में दिल्ली में भी ठक्कर बापा आदि के सामने सोना बनाने की यह क्रिया की गई थी उस अवसर पर श्री वियोगी हरि भी उपस्थित थे और दानवीर विरला जी भी।

कृष्णपालजी सोने की तरह चांदी भी बना सकते थे उन्होंने पारद से चांदी बनाकर कविराज प्रताप सिंह जी को दी थी, जिसकी बनी हुई मूर्तियाँ उदयपुर के महाराणा के निजी मन्दिर श्री बाणलिंग जी में देखी जा सकती हैं। दिल्ली के प्रसिद्ध वैद्य श्री घनानन्द पन्त को भी उनके सामने बनाकर ही कृष्णपालजी ने चांदी दी थी।

स्वर्ण बनाने का यह तरीका वैद्य जी के स्वर्गवास के साथ ही लुप्त हो गया। जब वे मृत्यु शय्या पर थे, उन्होंने यह तरीका बतलाने का निश्चय किया उस समय श्री गणेशदत्तजी गोस्वामी वहां उपस्थित थे, वैद्यजी ने बतलाना प्रारम्भ भी किया किन्तु उनकी जीभ लड़खड़ा रही थी, इधर गोस्वामीजी भी आयुर्वेदीय रस तन्त्रों की प्रक्रिया के ज्ञाता नहीं थे, अतः इस अस्पष्ट वर्णन से कोई लाभ नहीं उठाया जा सका।

पाश्चात्य विज्ञान की कसौटी पर

सिद्ध पारद में धातुओं के सूक्ष्म अणुओं को धात्वन्तर में परिणत करने की शक्ति आ जाती है, धातु परिवर्तन हो सकने की बात पाश्चात्य विज्ञान ने स्वीकार कर ली है, इसे पूरी तरह से जानने के लिए कुछ मूल तथ्यों का समझना आवश्यक है।

मूल तत्वों की बनावट छोटे छोटे अणुओं के संमेलन से है प्रत्येक अणु के केन्द्र में एक नाभिक होता है, जिसके चारों ओर सूक्ष्म अणु चक्कर लगाते रहते हैं, ठीक उसी तरह जैसे कि सूर्य के चारों ओर पृथ्वी आदि ग्रह चक्कर लगाते रहते हैं। अणु के गुण उसके नाभिक पर आधारित हैं नाभिक का रूप परमाणु और नवाणु की संख्या पर आधारित है यदि किसी तरीके से नाभिक के परमाणुओं और नवाणुओं की संख्या में परिवर्तन हो जाय तो धातु रूप भी परिवर्तित हो सकेगा। इस दृष्टि से सुवर्ण के साथ साम्य रखने वाले दो पदार्थ हैं, प्लाटिनम और पारा। प्लाटिनम में ७८ परमाणु और ११७ नवाणु होते हैं तथा पारे में ८० परमाणु और १२१ नवाणु होते हैं, जब कि सुवर्ण के नाभि में ७९ परमाणु और ११८ नवाणु होते हैं। आज के वैज्ञानिक इन दोनों चीजों से नाभिक के परमाणुओं और नवाणुओं में परिवर्त्तन कर सुवर्ण बना चुके हैं। किन्तु इस परिवर्त्तन के लिए उन्हें अत्यन्त बहुमूल्य यन्त्रों को बहुत समय तक प्रयोग में रखना पड़ता है। इससे सुवर्ण की कीमत पचीसों गुनी अधिक पड़ जाती है, किन्तु भारतीय रसायन शास्त्र में नाभिक परिवर्त्तन की यह क्रिया स्वल्प कम साध्य तरीकों से की जाती है। उन तरीकों का प्रत्यक्षीकरण कब तक किया जा सकेगा, यह भविष्य के गर्भ में है।

पूर्व का अत्यन्त घातक सांप—

दबोइया

(लेखक—श्री रामेश बेदी)

फनियर का नृत्य देखते हुए सपेरे की पिटारी के पास वक्रगति से रेंगते हुए अच्छे भरे हुए शरीर वाले दो तीन फीट लम्बे एक साँप को आपने देखा होगा। देखने में यह अनुसार और इसलिए यह सीधा साँप मालूम देता है। लेकिन जो इसे जानते हैं, वे आप को बतायेंगे कि आदतों में यह अत्यन्त कुटिल साँप है और अपने विष की मारक शक्ति में भारतीय घातक साँपों में दूसरा और कुछ वैज्ञानिक अन्वेषकों के मत में तीसरा है। बड़े विषैले दांतों के कारण और एक दंश में बहुत अधिक विष डालने के कारण विष विद्या के कुछ विशारद इसे सामान्य फनियर से अधिक भयंकर समझते हैं।

नाम और आदतें

अन्य साँपों की तरह यह सरपट नहीं दौड़ता। इस की गतियां जलेबी की तरह गोल सी होती हैं। इस कारण पंजाब में इसे बहुत सी जगहों पर जलेबिया साँप कहते हैं। इस का सब से अधिक प्रचलित नाम दबोइया है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में इसे गोनस, चिनार मण्डली, चितबोड़ा आदि नामों से जानते हैं और अधिक पढ़े लिखे लोगों में इसका नाम रसल्स वाइपर है। पहले पहल १७९६ ईस्वी में डाक्टर पेट्रिक रसल ने वैज्ञानिक जगत् का ध्यान इस साँप की ओर खींचा था इस लिए इस का नाम रसल्स वाइपर (डॉक्टर रसल का मण्डली) पड़ा। संस्कृत साहित्य में इसे मण्डली साँप कहते हैं। पूर्व के भया वह साँपों में मनुष्य जीवन के साथ फनियर के बाद रसल मण्डली का घनिष्ट सम्बन्ध है।

पहिचान

इस का रंग और इस के ऊपर के चिह्न पर्याप्त विशिष्ट होते हैं जिस से इस का भ्रम दूसरे साँपों से नहीं हो सकता। पीठ के हलके मटियाले या रेतीली मिट्टी के रंग के ऊपर लम्बाई के रुख जाती हुई भूरे रंग के छल्लों की तीन पंक्तियां होती हैं। एक पंक्ति पीठ के मध्य में और शेष इस के दोनों पार्श्वों में एक एक। छल्लों का सारा रंग काला हो सकता है, या ऐसा भी होता है कि काला रंग न हो और इन के बीच में पीठ का रंग दिखाई देता हो। छल्लों का बाहर का किनारा सफेद या पीले रंग की झलक लिये होता है। छल्लों की संख्या तेईस से तीस तक होती है। बीच की पंक्ति के छल्ले कुछ बड़े होते हैं। इन में से कुछ किन्हीं साँपों में आपस में एक दूसरे से मिले होते हैं जिस से इन की लम्बी पंक्तियां जंजीरों की तरह दीखती हैं, इस लिए इस साँप को जंजीरों वाला मण्डली चेन वाइपर भी कहते हैं। इस का पुर्तगाली नाम नेक्लेस वाइपर भी इसी विशेषता को प्रकट करता है पीठ का सब से अन्त का छल्ला पूंछ पर लम्बी पट्टी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। दोनों पार्श्वों की पंक्तियों की छल्लों की परिधि पूरी नहीं होती और निचले सिरे पर टूटी होती है।

शिर और पूंछ की विशेषताएं

छोटे छिलकों से ढका हुआ सिरचपटा, त्रिभुजाकृति और भारी-सा होता है। छल्ले सिर पर भी विद्यमान हो सकते हैं। परन्तु सिर पर सदा एक निशान अंग्रेजी के वी (v) अक्षर जैसा होता है जिस में अक्षर का सिरा सामने की ओर (Λ) होता है। साँपों में पुतलियां मुंह की लम्बाई के रुख दिगन्तसम होती है परन्तु मण्डलियों में लम्ब अंश में तिरछी होती है। दबोइये की पुतली के चारों ओर सुनहरे पीले रंग का घेरा होता है। सभी दूसरे भारतीय साँपों की तुलना में दबोइये के नथुने बहुत बड़े होते हैं।

पूंछ छोटी और एक दम पतली बन गई होती है। पूंछ के नीचे प्लेटें दुहरी पंक्ति में होती है। पेट पर बड़ी प्लेटें होती है।

नाप

एशिया के मण्डलियों (वाइपर्स) में यह सब से बड़ा साँप है। बहुत सुन्दर रंगों वाला यह सरीसृप लम्बाई में पांच फीट तक पहुँच जाता है। हरिद्वार में यह साँप बहुत मिल जाता है। हर साल मेरे पास जो दबोइये आते हैं उन में नौ इञ्च से पांच फीट तक के नमूने निकल आते हैं। अच्छे आकार के एक युवा साँप की नाप यह है पूरी लम्बाई चार फीट एक इञ्च। पूंछ की लम्बाई, सात इञ्च। घेरा छै इञ्च। सिर की चौड़ाई दो इञ्च। सिर की लम्बाई दो इञ्च।

गर्भाधान

दबोइये में गर्भाधान सर्दियों में होता है। ठण्डे देशों में शीत निद्रा। (हिबर्नेशन) में जाने से पूर्व ही गर्भाधान हो चुकता है। शीत निद्रा में साँप की जीवन शक्ति अल्पतम पहुँच जाती है। इस लिये यह ध्यान देने योग्य है कि इतने महत्वपूर्ण कार्य को संपादन करने के लिए यह समय किस तरह अनुकूल होता होगा। गर्भ धारण करने और बच्चे देने के बीच का समय छह महीने है।

साठ से भी अधिक बच्चे

लोगों का सामान्य विश्वास है कि प्रत्येक साँप अण्डे दिया करता है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि दबोइया अण्डे नहीं देता। जीवित बच्चे जब बाहर निकलते हैं तो उन की पीठ पर मण्डलों के गूढ़े निशान बहुत स्पष्ट बने होते हैं। जन्म के समय बच्चे की लम्बाई आठ से ग्यारह इञ्च तक होती है। एक ब्यात में सामान्यतया तीस चालीस बच्चे पैदा होते हैं। एक बार एक मादा रसल मण्डली में केवल एक गर्भ निकला था। कभी-कभी एक बारी में पैदा हुए बच्चों की संख्या साठ से अधिक भी देखी गई है।

बच्चों की आदतें

जन्म के बाद बच्चे बहुधा कुछ घण्टों में ही केंचुली उतार देते हैं। पिंजरे में ये एक ढेर में पड़े रहते हैं। परन्तु प्रकृति में जल्दी ही इधर उधर बिखर जाते हैं और अपनी चिन्ता स्वयं करने के लिए तुरन्त तैयार मालूम देते हैं। बड़े दबोइयों की अपेक्षा ये अधिक चुस्त तथा फुर्तीले होते हैं। बच्चों का भोजन सम्भवतः वही है जो युवाओं का होता है।

एक दूसरे को खा जाते हैं

युवा दबोइयों में दूसरे साँपों को खाने की आदत नहीं होती, परन्तु छोटे यह अपराध करते देखे गये हैं। त्रिवेन्द्रम् की वाटिका में एक बार जब बच्चों का जन्म हुआ तो उन्होंने एक दूसरे [illegible]ना आरम्भ कर दिया। इसी स्थान में एक अवसर पर एक बच्चा अपने साथी को निगल गया और करीब चौथाई घण्टे के बाद इसे फिर उगल दिया। दोनों जीवित रहे। पिंजरे में पैदा हुए बच्चों के सम्बन्ध में फादर ड्रेकमैन (नेचुरल हिस्ट्री जर्नल, बम्बई, भाग १८, पृष्ठ ४३५) को भी इसी प्रकार का अनुभव हुआ था। एक सुबह उन्होंने परिवार को एक सदस्य को मरा हुआ और एक को गुम पाया। मरे हुए की परीक्षा करने पर उन्हें गुम उस के अन्दर मिल गया।

छह घण्टे का बच्चा भी घातक विषधर

कनल वैनामैन (नैचुरल हिस्ट्री जर्नल, बम्बई, भाग १७, पृष्ठ ८११) यह विश्वास प्रकट करते हैं कि शिशु रसल मण्डली में प्रारम्भिक दिनों में विष नहीं होता और यदि होता भी है तो वह बहुत निर्बल होता है, यहां तक कि वह छोटे प्राणियों को भी मार नहीं सकता। मेजर एक बौल (नेचुरली हिस्ट्री जर्नल, बम्बई, भाग १८, पृष्ठ १०) के पर्यवेक्षणों के अनुसार यह गलत है और वे इस बात से सहमत हैं कि बच्चे परिमाण और तीव्रता दोनों में पर्याप्त विष के साथ दुनियां में प्रवेश करते हैं जिस से अपनी सत्ता को बनाये रखने के प्रयत्नों में उन्हें मदद मिल सके। डॉक्टर शौर्ट (साइक्लोपीडिया ऑफ इण्डिया, भाग ५, पृष्ठ ४३३) के पास एक गर्भित दबोइया था। कुल छै घण्टे की आयु के इस के साढ़े आठ इञ्च लम्बे एक बच्चे ने साढ़े नौ तोला भार के तीतर को दस सैकण्ड में मार दिया था।

कोढ़ के लिए दबोइये का मांस

रिचर्ड्स (लेन्डमार्क्स ऑफ स्नेक पौयजन लिट-

रेचर, पृष्ठ ६५) । लिखते हैं कि गैलन ने मण्डली साँपों (वाइपर्स) के मांस की कोढ़ में बहुत जोर से सिफारिश की है और इटली तथा फ्रांस के चिकित्सक मण्डली मांस का शोर्बा या जैली इसी प्रयोजन के लिए अपने रोगियों को दिया करते हैं। मालूम होता है कि यह इङ्गलैण्ड में भी दिया जाता रहा है, क्योंकि मीड़ का ख्याल था कि बीमार को प्रायः दबोइये की जेली (वाइपर जेली) खानी चाहिये अथवा पुराने तरीके के अनुसार मछलियों को उबाल कर मछली की तरह खाना चाहिये। यदि भोजन पचता न हो तो शराब में सूखे दबोइयों को छोड़ कर पांच सात दिन तक जरा गरम जगह पर रखने के बाद बनी शराब का प्रयोग करना चाहिये।

मीड एक प्रसिद्ध चिकित्सक हुआ है जिसने साँपों के बारे में बहुत सी खोजें और परीक्षण किये हैं। १७५४ में यह परलोक सिधारा था। यही विद्वान् लिखता है कि मण्डली की शराब लन्दन के फार्माकोपिया में वस्तुतः एक अधिकृत योग था।

चार्ल्स द्वितीय के चिकित्सक डाक्टर थौमस शर्ले ने बहम (हाइपो कौन्ड्रिया) के लिए बाल्सम ऑफ बेट्स नामक जिस दवा की सिफारिश की थी वह दबोइया साँप, चिमगादड़, सूअर की चरबी, हिरण की मज्जा तथा बैल की जांघ की हड्डी के योग से बनी थी।

फील पांव और जख्मों का इलाज

भारत में जिस तरह फनियर साँप को दबोइओं के लिए चुनने में वैद्यों और हकीमों का अधिक झुकाव होता है, वैसे ही कुछ समय पहले तक युरोप के बहुत से भागों में चिकित्सा प्रयोजनों के लिए मण्डली साँपों का विशेष स्थान रहा है। मिश्र में मण्डली साँपों के मांस और शोर्बे को फील पांव में दिया जाता था। फील पांव श्लीपद को अंग्रेजी में एलिफेन्टायसिस कहते हैं जिस में रोगी के अंग हाथी के अंगों के समान आकार प्रकार धारण कर लेते हैं। प्लीनी और गैलन दोनों ही ने जख्मों में, फील पांव में और शरीर की दूसरी रुग्णावस्थाओं में दबोइये के मांस की प्रशंसा की है (एन्साइक्लोपीडिया ऑफ नेचुरल हिस्ट्री, भाग ३ पृष्ठ १२१०)। मछली की तरह उबाल कर यह रोगियों को सेवन कराया जाता था, लेकिन चूर्ण रूप में या और किसी सूखी अवस्था में देने से यह अधिक प्रभावकारी समझा जाता था।

स्त्रियाँ भी सुन्दर बन सकती हैं

युरोप में यह भी विश्वास रहा है कि साँप का मांस खाने से स्त्रियों का सौन्दर्य अक्षुण्ण रहता है। ऐसा वर्णन मिलता है कि सर कैनेल्म डिग्बी की रूपवती पत्नी उन खस्सी मुर्गों पर पाली गई थी जिन्हें दबोइये साँप का माँस खिला खिला कर मोटा बनाया गया था। दक्षिणीय फ्रांस में बहुतेरे लोगों का भोजन दबोइये का मांस है।

हीमोफिलिया तथा अन्य रोगों में विष

दबोइये के विष में खून को जमाने की बहुत ऊंची शक्ति है। दस हजार में एक की शक्ति के कृमि रहित घोल का स्थानिक प्रयोग छोटी रक्तवाहिनियों से होते हुए रुधिर स्राव को रोकने के लिए पर्याप्त होता है। इतने उच्च विलयनों में यह विषैला नहीं होता। भारतीय मन्डली का विष अधिक गुणकारी प्रतीत होता है। मानव समाज की विचित्र व्याधि हीमोफिलिया प्रायः पूर्णतया सर्प विष चिकित्सा पर छोड़ दी गई है। इस रोग से आक्रान्त व्यक्ति हल्के से हल्का घाव लग जाने से खून बहाता हुआ मौत के मुंह में जा सकता है। "यह जारों का" रोग नाम से ज्ञात है, क्योंकि रूस के शाही घराने के बहुत से व्यक्तियों ने इस का कष्ट भोगा था। मालूम किया गया है कि रुधिर में जमने के गुणों के अभाव के कारण हीमोफिलिया होता है। अब दबोइये के विष के जमाने वाले गुण का इस रोग से लड़ने के लिए उपयोग किया जा रहा है। घावों से रक्त स्राव में और नक्सीर फूटने में भी यह रक्त स्राव बन्द करने के लिए इस्तैमाल होने लगा है। मृगी के दौरों को रोकने, क्षय और आन्त्र ज्वर टाइफाइड के रक्तस्रावों को रोकने के लिए इस की बहुत छोटी छोटी मात्राएं सूची बिद्ध की जा रही हैं।

स्वास्थ्य और सुख-समृद्धि बढ़ाने में—

आनन्द का स्थान

(लेखक—श्री कृष्णगोपाल माथुर)
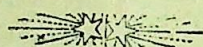
आनंद ही सब सुखों का मूल है। स्वास्थ्य के लिये आनंद बहुत अच्छी चीज है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में आनंद ही को स्वस्थता का लक्षण माना है। सुश्रुत संहिता के ६४ वें अध्याय में लिखा है कि जिस मनुष्य के वात पित्तादि दोष, जठराग्नि, सप्त धातुएँ और मल समान हों, जो अपने शरीर के अनुसार क्रिया करता हो, जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न हों, वही मनुष्य तन्दुरुस्त कहलाता है।*

ऐसे आरोग्य मनुष्यको अपनी आरोग्यता कायम रखने के लिये स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का देश, काल, पात्र, ऋतु और अपनी प्रकृति के अनुसार ठीक-ठीक पालन करना चाहिये। इसके लिये दिनचर्या, रात्रि चर्या, और ऋतुचर्या के नियमों पर बड़ी सावधानी से चलने की जरूरत है। हमें अपनी दिनचर्या का विभाग इस प्रकार कर लेना चाहिये, जिसका निर्वाह आनन्द पूर्वक हो जावे, उसमें निरानंद का तनिक भी लेश न आने पावे। एकान्त में बैठकर शान्ति के साथ सोच समझकर यदि हम यह काम करेंगे तो प्रत्येक काम को पूरा करने में एक अपूर्वही आनन्द की प्रतीति होगी। जिसकी तुलना किसी भी आराम की वस्तुओं से नहीं की जा सकती। हमारा जीवन थोड़ा है, उसमें हमको आनन्द की किरणें पूर्णरूपेण बिखेरना है।

चित्त प्रसन्न रखने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है और आनंद ही से इस जगत् की उत्पत्ति हुई है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि सदाचार युक्त आनंद से जीवन बितावे। प्रत्येक मनुष्य आनन्द की कामना करता है, और आनंद की कामना ही मनुष्य को नाना प्रकार के कामों में लगाती है। आनंद से सुखकी प्राप्ति होती है और दुःख का नाश होता है; इसलिये आनन्द से जीवन संग्राममें बड़ी भारी सहायता मिलती है। इसी से हमारे जीवन-निर्वाह में आनंद का बहुत ऊंचा स्थान है। आनंद से जीवन बढ़ता है और दुःख से जीवन का नाश होता है। जीवन की सेवा करना और उसे उन्नत बनाना नैतिकता का लक्ष्य है। जो वस्तु सत्य है, सुन्दर है, पवित्र है, निर्दोष है, वह आनन्द है। सदाचार का आनन्द के साथ गहरा सम्बन्ध है। सदाचार का उद्देश्य जीवों को सुखी बनाना है। इसलिये जिन कामों से जीवों को सुख और आनंद हो वह सदाचार कहलाता है और जिन कामों से जीवों को दुःख हो वह दुराचार में शामिल है यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सदाचार का यथावत् पालन करने में सदा आनन्द ही आनन्द है।

* सम दोषः समाग्निश्च समधातु मल क्रियः
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनाः सुस्थ इत्यभिधीयते।
(सुश्रुत संहिता, उ० त० ६४ वाँ अध्याय)

अशोक और उसके गुण

लेखक-रामनारायण शर्मा एम. ए. साहित्यायुर्वेद रत्न, शास्त्री, कोविद, M. D. H. S. (Calcutta)

जैसा अशोक का नाम है, वैसा ही इसका काम भी है। राजस्थानी एक कहावत प्रसिद्ध है कि "नाम मोटा दर्शन खोटा", परन्तु जब अशोक के गुणों पर दृष्टि पात किया जाता है तो निर्णय सर्वथा इसके विरुद्ध निकलता है। विशेष रूप से स्त्रियों के लिये तो यह शोक नाशक ही है। संभव है गुणों को देखते हुए ही इसे अशोक, शोक नाशन, अपशोक (रोगों से मुक्त कर शोक को नष्ट करने वाला), गत शोक, वीत शोक, विशोक (शोक रहित), सुभग (कल्याण कारी सुन्दर वृक्ष) दोष हारी स्मराधिवास (कामदेव का आश्रय) आदि कहा जाता है।

संस्कृत के नाम—

धन्वन्तरि निघंटु में इसके संस्कृत नामों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।

"अशोकः शोकनाशश्च, विचित्रः कर्णपूरकः।
विशोको रक्तको रागी चित्रः पट्पदमञ्जरी ॥
॥ ध० नि० अम्रादि ५, १५९ ॥

नरहरि पंडितने अशोक के २२ नाम इस प्रकार गिनाये हैं।

"अशोकः शोकनाशः स्याद्विशोको वञ्जुलद्रुमः।
मधुपुष्पोऽपशोकश्च कङ्केलिः कलिकस्तथा ॥
रक्तपल्लवकश्चित्रो विचित्रः कर्णपूरकः।
सुभगः स्मराधिवासो दोषहारी प्रपल्लवः ॥
रागी तरुर्हेमपुष्पो रामवामाङ्घ्रिघातकः।
पिण्डी पुष्पो नटश्चैव पल्लवद्रुर्द्विविंशतिः ॥"
॥रा० नि० करवीरादि १०, २७०, २७२ ॥

पंडित कैयदेवने इसके पंद्रह नाम इस प्रकार गिनाये हैं—

"गत शोको वीतशोको विशोकस्ताम्र पल्लवः।
पिण्ड पुष्पो शोण पुष्पो सुभगः कर्ण पूरकः ॥
विचित्रो रक्तको रागी रामस्तवक मञ्जरी।
चित्तशोकः शोकनाशः स्त्रीपादहृति दोहदः ॥"
।कै० दे० नि० औ० व, १०८४-८५॥

भाव मिश्र ने इसके आठ नाम इस प्रकार गिनाये हैं:-

"अशोको हेमपुष्पश्च वञ्जुलस्ताम्र पल्लवः।
कङ्केलिः पिण्डपुष्पश्च गन्ध पुष्पो नटस्तथा ॥
॥भा० प्र० पुष्पादि ४३-४४॥

इन सभी प्रकरणों पर दृष्टि पात करने के पश्चात् संक्षेप में इस के नामों का संकलन संस्कृत तथा अन्य भाषादि में इस तरह कर सकते हैं।

सं० अशोक, कर्णपूरक, विशोक (शोक रहित), मधुपुष्प (मधु मास में खिलने वाला फूल), रक्त पल्लव, रागी तरु, रक्तक, ताम्रपल्लव, शोण पुष्प, हेम पुष्प, पट्पद मंजरी, पिण्डपुष्प, गंध पुष्प, सुगन्धि (अच्छी गंध वाला) आदि। हिं० अशोक, अशोगी, बीगे। कोल० हुसनगिद्बा। बं० अशोक, अस्वाल। म० गु० क० अशोका। ता० अशोक पट्टै। ते० अशोका चेट्टु क० अशोक चेक्क। मल० अशोक पट्टै। अं० अशोक ट्री (Ashoka tree) कहते हैं। भारतीय काव्यों तथा धर्म ग्रंथों में किये गए इसके विस्तृत वर्णन को देखकर विलियम जोंस ने लैटिन नाम भी संस्कृत नाम अशोक ही रखना उपयुक्त समझा था। अतः तदनन्तर जोनेसिया अशोक (Jonesia Asoka) रखा गया। परंतु कुछ समय बाद यह नाम 'सरेका इण्डिका' (Sareca indica) से बदल गया लैटिन में आजतक भी यही नाम व्यवहार में है।

परिचय—

यह एक अत्यंत सुंदर वृक्ष है। विलियम जोंस तो इसकी सुंदरता पर इतने मुग्ध थे कि पूर्ण विकसित दशा में उन्हें इससे सुंदर और कोई वृक्ष नहीं प्रतीत होता था। हिंदू इसे पवित्र वृक्ष मानते हैं। इसके पत्तों की आम्र पल्लवों से तुलना की जा सकती है। यह मोटा, सीधा, सुन्दर, छायादार, सर्वदा हरा वृक्ष है। इसके पत्तों के गुच्छों में चार से छः जोड़ी, पत्ते आकार में लम्बे गोल नोकदार, ३ से ९ इंच लंबे, पहले श्वेताभ फिर रक्ताभ या नीलाभ फिर गहरे हरे हो जाते हैं। पुष्प पहले संतरेके रंगका फिर लाल, फली चपटी,

चौड़ी, सीधी, अर्ध गोल तथा ४ से १० इंच लम्बी होती है जिनमें बीज ४ से ८ तक पाये जाते हैं। तने की छाल बाहर से मटियाले रंग की और अंदर से लाल। छाल का काढा सुन्दर लाल रंग का बनता है।

भेद—

पौलिएहिथिया लौंगिफोलिया को भी प्रायः अशोक या नकली अशोक या बंगाली अशोक कह कर वैद्य जन प्रयोग में लाते हैं। इसका गुजराती नाम संस्कृत निघंटुओं की व्याख्याओं में आसोपालव पाया जाता है। वास्तव में आसोपालव अशोक नहीं है। आसोपालव के पत्ते लहरदार, वृत्त सीधा, लम्बा और घनी शीतल छाया वाला होता है। यह पथ वृत्त की तरह बहुधा लगाया जाता है। कुछ विद्वान् इसे देवदार भी कहते हैं परन्तु यह भ्रमात्मक प्रतीत होता है। आसोपालव के फूल सफेद पीले हरे से रंग के होते हैं। डल्हण ने अशोक की पहचान के विषय में एक स्थान पर लिखा-लोहित कुसुमः स्वनाम यातः।" अतः आसोपालव अशोक नहीं हो सकता।

गुणधर्म—

यह शीतल, रस में कड़वा होता है। सभी निघण्टुकार इसकी शीतलता से सहमत हैं। वे इसे कृमि नाशक भी बताते हैं। परन्तु राजनिघंटु (पूना १९२५) में इसे कृमि कारक बताया गया है। संभव है यह पाठ अशुद्ध हो। अधिकतम निघंटुकार इसे मधुर विपाकी मानते हैं परन्तु भाव मिश्र तथा कैयदेव ने ऐसे नहीं लिखा है। भावमिश्र, कैयदेव तथा निघंटुरत्नाकर इसमें ग्राही गुणका प्रतिपादन करते हैं। सभी विद्वान् इसे दाहनाशक मानते हैं। यह पित्त और श्रम का नाशक माना गया है। परन्तु धन्वन्तरि ने इसका प्रतिपादन नहीं किया है। पंडित नरहरि अशोक के श्रम नाशक गुण से पूर्णतः सहमत प्रतीत होते हैं। भावमिश्र ने इसे रंग को निखारकर शरीर की कांति को बढाने वाला माना है। धन्वन्तरि प्रभृति विद्वानों ने इसे शोक-शोथ शामक तथा सब प्रकार के व्रणों को भरने वाला माना है। कहीं कहीं तो इसे हड्डियों को जोड़ने वाला तक मान लिया गया है। यह अपची, गुल्म, अर्श, उदर कृमि, शूल, उदर रोग, आध्मान, ज्वर और रक्तरोगों को नष्ट करता है। कहीं कहीं इसे विषनाशक भी कहा गया है परन्तु धन्वन्तरि इससे सहमत नहीं। स्त्रियों के रोगों को नष्ट करने वाला, ज्वर नाशक केवल निघंटुरत्नाकर ने ही प्रतिपादित किया प्रतीत होता है। बहते हुए खून को बन्द करने वाले का समर्थन कैयदेव ने भी किया है। यहां विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि किसी भी निघंटुकार ने इसे प्रदरनाशक नहीं बताया है। परन्तु आजकल श्वेतप्रदर में इसका विशेष रूपसे प्रयोग होता है।

नव्य मतानुसार अशोक की छाल ग्राही, रक्तस्राव-रोधक और वेदना स्थापन है।

प्रयोग—

(१) चरक ने वेदना स्थापन औषध संग्रह में (सू० अ० ४-७३) अशोक का उल्लेख किया है।

(२) सुश्रुत ने रोध्रादिगण में अशोक का परिगणन किया है। इसका उल्लेख सुश्रुत ने वातव्याधि चिकित्सा के कल्याण लवण में, सर्प दंश चिकित्सा के ऋषभ अगद में, दुन्दुभि स्वनीय अध्याय में, ज्वर के महा कल्याण घृत में भी किया है।

(३) इसके फूल और छाल रक्त संग्राहक होने से रक्तार्श, रक्तप्रदर अत्यार्तव और रक्तातिसार में विशेष उपयोगी माने गए हैं।

(४) प्रदर में सर्व प्रथम अशोक का प्रयोग करने वाले सिद्ध योग के रचयिता वृन्द प्रतीत होते हैं। आज कल भी रक्त प्रदर में इसका प्रयोग होता है। डा० वेकरिंग के अनुसार रक्तज अर्बुदों में अशोक उपयोगी माना गया है।

(५) अशोक का प्रयोग गर्भाशय संबंधी रोगों में आज कल विशेष रूप से किया जाता है। अशोक के फूल का शाक, स्वरस और काढ़ा प्रदर में दिया जाता है। इसका काढ़ा अत्यार्तव में दिया जाता है। अशोक के सेवन से मासिक धर्म ठीक समय पर आता है। यह एक उत्तम गर्भाशयिक रसायन है। मासिक स्राव की अधिकता (Menorrhagia) में विशेषकर इसका प्रयोग किया जाता है।

(शेष पृष्ठ १७६ पर देखें)

मुलेहठी का प्रभाव

(लेखक:—पं० रामचन्द्र नागदा वैद्याचार्य, आयुर्वेदरत्न)

श्रीराम आयुर्वेद भवन, सुसनेर (मध्यप्रदेश) के अध्यक्ष पं० रामचन्द्र जी ने कई रोगियों पर परीक्षण के उपरान्त मुलेहठी के एक विशेष गुण की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है। —स०

मुलेहठी आयुर्वेद-संसार की एक सर्वविदित औषधि है। सभी वैद्य अनेक प्रयोगों में इसका उपयोग करते हैं। मैं इसका प्रारम्भिक वर्णन कर इस पर अपना विशिष्ट अनुभव लिख रहा हूँ।

मुलेहठी के विभिन्न भाषाओं के नामान्तर—

संस्कृत में-यष्टि मधु-यष्टिमधुक-क्लीतक

हिन्दी में-मुलहठी, मुलैठी, मीठी लकड़ी, बंगला-यष्टिमधु, गुजराती-जेठी मधनोमूल, जेठी मधु, फारसी-रब्बुलसर, बेखेमहक, अग्ल लिकोरसस्ट,

मुलेहठी का परिचय—

मुलेहठी दो प्रकार की होती है। एक तो क्षुप दूसरी लता। सितारी जिले के पहाड़ों पर इसका क्षुप बहुत होता है यह अधिकतर ३ से ६ फूट तक ऊँचा रहता है। इसकी जड़ बहुत लम्बी सीधी जमीन के अन्दर रहती है। इसके पत्ते कटसरैया के पत्तों के समान लम्बे-लम्बे अण्डाकार होते हैं। लगभग ५-५ अंगुल के अन्तर पर शाखाएं लगती हैं। गर्मी के दिनों में सूखे जैसे जान पड़ते हैं। वर्षा के पानी पड़ते ही हरे भरे हो जाते हैं। इसकी जड़ काट कर लम्बे-लम्बे टुकड़ों में बनाते हैं। जो गोल ऊपर से साफ पीत वर्ण युक्त भूरे रंग के होते हैं। तथा भीतर से रेशेदार पीले होते हैं। इस का गन्ध स्वतन्त्र प्रकार का और मीठा होता है। लता जाति की मुलैठी भारत वर्ष के अनेक प्रान्तों में पाई जाती है। इस के लिये पहाड़ी स्थान और तर भूमि तथा उष्ण वायु की आवश्यकता रहती है।

मुलैठी के गुण—

मधुर रस युक्त, नेत्रों के लिए हित कर, बलकारक वर्ण को उत्तम करने वाली, वीर्य वर्धक, सुस्निग्ध, बालों के लिए हितकारक, स्वर को उत्तम करने वाली, वात, पित्त, कफ तथा रक्त के प्रकोप को शान्त करने वाली, शोथ, विष, व्रण, तृष्णा, ग्लानि, कास, रक्त पित्त, क्षय आदि रोगों का नाश करने वाली है।

मेरा अनुभव—

एक दिन मैं अपने चिकित्सालय में बैठा था। तभी एक पुरुष आया। वह कहने लगा कि वैद्यराजजी आप को श्यामपुरा नामक ग्राम चलना होगा वहाँ के पटवारी साहब मोहनलाल शर्मा ने आप को बुलवाया है। उनकी पत्नी को एक माह से रक्तस्राव (अधोमार्ग) से हो रहा है। अतः आप शीघ्र ही चलें। तकलीफ ज्यादा है। वह ग्राम मेरे चिकित्सालय से ६ मील दूर था।

वहां मैंने देखा कि रोगिणी उम्र करीब २८ वर्ष की है। रोगिणी का निदान करने लगा मुझे स्मरण हुआ कि "विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादति मैथुनाच्च। यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयानाद्दिवा च" रोगिणी अति दुर्बल, त्वचा पाण्डुवर्ण, चक्कर आना, खड़ी हो नहीं सकती थी, रक्तस्राव निरन्तर होता रहता था, निद्रा नहीं आती थी, घबराहट बैचेनी निरन्तर बनी रहती। खड़ी दूसरे के साथ हो जाती तो बेहोश हो जाती थी। नाड़ी अति मन्द-मन्द चलती थी। रोगिणी उपद्रव युक्त थी।

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः॥

मेरे द्वारा वस्त्रपूत मधुयष्टि चूर्ण ३ माशा, शुद्ध सुवर्ण गैरिक चूर्ण १ माशा, दोनों की मिश्रण १ मात्रा चांवल के धोवन के साथ मध्यान्ह में दे दी गई। दूसरी मात्रा ५ बजे तीसरी रात्रि को १० बजे उक्त अनुपान द्वारा दी गई। अगले दिन प्रातः पुनः रोगिणी से पूछा गया उत्तर में प्रसन्न चित्त रोगिणी ने उत्तर दिया कि भगवान् आप का भला करे अब बिल्कुल रक्त का आना बंद है। फिर भी चिकित्साक्रम वही रखा। मधुयष्टि

चूर्ण ६ माशा शतधौत घृत मिलाकर उदर पेड़ू स्थान पर लगवाया गया। योनि प्रक्षालन के लिये स्फटिक ६ माशा दिया गया। रोगिणी के बलवर्द्धनार्थ प्रवाल-मौक्तिक, सुवर्ण वसन्त मालिती तीनों की एक-एक रत्ती आंवले के मुरब्बा के साथ दिया गया। पथ्य में चांवल दुग्ध दिया गया। उपरोक्त क्रम एक सप्ताह तक रहा।

रक्तस्राव तो तीन ही मात्रा ने बन्द कर दिया था। सप्ताह के बाद में परीक्षण किया गया तो रोगिणी पूर्ण स्वस्थ थी। पथ्य में गेहूँ की रोटी, चौलाई की शाक, चांवल, दुग्ध का आदेश देदिया गया। उष्ण और चरपरे पदार्थ, गुड़, तैल आदि से परहेज रखाया। केवल बलवर्द्धन के लिए सुवर्ण वसन्तमालती १-१ रत्ती की मात्रा से एक सप्ताह की और देदी। सप्ताहान्त में उक्त रोगिणी के पति प्रसन्न चित्त होते हुये मेरे चिकित्सालय में आये और कहा कि आप की औषधि ने मेरी पत्नी के प्राण बचाये इस औषधि का त्वरित चमत्कार देख मुझे भी हर्ष हुआ। इसी प्रकार एक दूसरे आदमी ने कहा कि मेरी पत्नी को कई दिनों से अधोमार्ग द्वारा अत्यधिक निरन्तर रक्तस्राव हो रहा है। मैंने उत्तर देते हुये कहा कि आपने अभी तक क्या-क्या चिकित्सा की ? उन्होंने कहा कि एक स्थानीय डाक्टर ने केल्शियम ग्लुकोनेट, रेडाक्सीन आदि इन्जेक्शन १२ लगाये कई ऐलोपेथिक दवाइयाँ दी गई किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मैंने उन को आश्वासन दिया कि आप को मैं औषधि देता हूँ। आप इस को चावल के धोवन में देना, पथ्य में केवल चांवल दूध देना। मैंने उक्त मधुयष्टि चूर्ण ३ माशा शुद्ध सुवर्ण गैरिक चूर्ण १ माशा मिश्रित तीन पुड़िया दीं।

अगले दिन प्रातः वे प्रसन्न चित्त मेरे चिकित्सालय में आये और कहा कि वैद्यराजजी आपकी दवाई की तीन पुड़िया ने जादू-सा असर किया। अब बिल्कुल रक्तस्राव बन्द है। पुनः मैंने उक्त औषधि ३ माशा बलवर्द्धनार्थ मौक्तिक सुवर्ण वसन्त मालती १-१ रत्ती आंवला के मुरब्बा के साथ दी। क्रमपूर्वोक्त ही रखा रोगिणी पूर्ण स्वस्थ हो गई।

इसी प्रकार स्थानीय पाश्चात्य चिकित्सालय की १५ वर्षीया कन्या और पशु चिकित्सालय की २८ वर्षीया पत्नी को भी पूर्वोक्त तरीके से मधुयष्टी का सेवन कराया और उसी प्रकार ३ मात्रा में ही आशातीत लाभ हुआ। यद्यपि यह प्रयोग बहुत सस्ता है, किन्तु सस्ते होने मात्र से ही अश्रद्धा न कर प्रत्येक चिकित्सक को इस से लाभ उठाना चाहिए।

— अशोक और उसके गुण —

(पृष्ट १७४ का शेष)

(६) दो छटांक छालको दो छटांक दूध और आठ छटांक पानी में जलीयांश रहित होने तक पकाकर दिन में दो तीन बार मासिक स्राव के चौथे दिन से रक्त बंद होने तक दिया करते हैं।

(७) अशोक ग्राही गुण संपन्न है। आयुर्वेद में इसी लिये गर्भपात रोकने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। गर्भाशय के अन्तःस्तर (Endometriam) और डिम्बाशय के तन्तुओं पर इसका उत्तेजना जनक तथा बलदायक प्रभाव होता है। यह गर्भाशय की मांसपेशियों के क्षोभ को शांत करता है। यह रक्तस्राव को बंद करता है। गर्भ स्राव या पात होने पर अशोक घृत का प्रयोग कर सकते हैं। गर्भ पात का भय हो तो अशोक और लोध्र की छाल तथा कमल गट्टे की गिरी का चूर्ण या दूध में बनाये कषाय से पर्याप्त लाभ होता है।

(८) डाक्टर लोग अशोक का सत्व (Extracl) निकालकर प्रयोग में लाते हैं। यह बीजाशय पर कुछ उत्तेजना दर्शाता है।

(९) यदि सामान्य मात्रा में इसका प्रयोग किया जावे तो हृदय, रक्त दबाव, श्वासोच्छवास पर इसका कुछ भी असर नहीं होता। अन्त्र की पेशियों पर भी इसका शामक प्रभाव होता है।

अशोक का उत्पत्ति स्थान विशेष रूप से कुमाऊँ, मध्य और पूर्व हिमालय, बंगाल, दक्षिण भारत तथा मध्य प्रांत माना गया है। इसके चमत्कारी गुणों से सारा संसार परिचित है। आशा है पाठकगण भी आवश्यक्तानुसार प्रयोग में लाकर लाभ उठायेंगे।

एरण्ड

(लेखक—सूर्यचिकित्सा विशारद नन्दकिशोर शर्मा)

एरण्ड, इस सर्व प्रसिद्ध उपयोगी वनस्पतिसे सभी लोग परिचित होंगे। हिन्दीमें अरण्ड, सफेद अरण्ड, लाल अरण्डादि कहते हैं। साधारणतः एरण्ड या अरण्ड भी कहते हैं। गुजराती में एरण्डो, बंगाली में भेराण्डा शादारेंडी, अंग्रेजी भाषामें Caster-oil-plant कास्टर ऑइल प्लान्ट कहते हैं।

एरण्ड वृक्षका उपयोग वात-विकारोंमें आश्चर्यकारी होता है। औषध कार्यमें इसकी जड़, पत्ते, बीज एवं बीजोंका तैल ही विशेषतः लिया जाता है। कतिपय अन्यर्थ प्रयोग 'स्वास्थ्य' लाभार्थ प्रस्तुत करते हैं:—

(१) वातविकार-जन्य चाहे मस्तिष्ककी व्याधि हो चाहे उदरव्याधि, आध्मानादि हो तो एरण्ड मूल प्रायः १ तो०, यवकुट करके ४० तोला जलमें मंदाग्नि द्वारा अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर छान लें। सुखोष्ण होजाने पर थोड़ा शहद मिलावें। प्रातः सायं सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। वातजन्य शोथ या सूजन पर भी यही क्वाथ लाभ कारी सिद्ध हुआ है।

ध्यान रहे लाल एरण्ड की अपेक्षा सफेद एरंड में वातनाशक शक्ति अधिक है, श्वेत एरंड, वृष्य और सारक होते हुए वायु उदावर्त, कफज्वर, उदररोग, कास, शोथ, शूल (विशेषतः मस्तिष्क, कटि और वस्तिका शूल) गुल्म, प्लीहा, वातरक्त, मेद, अंडवृद्धि आदि विकारों का शामक है। लाल एरंड रक्त दोष, पांडु, अर्श, बदरोग, श्वासादि विकारों का नाशक है, किन्तु श्वेत एरंड अभावे लाल एरंड ही उपयोग में लिया जा सकता है।

(२) प्लीहा वृद्धिपर—उक्त प्रकार से प्रातः सायं क्वाथ पिलावें तथा ऊपर से एरंड पत्र पुल्टिस बांधें।

(३) उदरशूल पर—उक्त क्वाथ में थोड़ा काला नमक और भुनी हुई हींग मिला पिलावें।

(४) कटि शूल, कुक्ष शूल, हृदयस्थानीय शूल, पर—उक्त क्वाथ में थोड़ा जवाखार मिलाकर पिलावें इससे तुरंत लाभ हुआ है।

(५) सुख प्रसव पर—एरंडमूल को पत्थर पर, चन्दनवत पीस लें और थोड़ा घृत मिलाकर गरम कर पिलादें। तथा इसी का योनि पर लेप करावें।

(६) योनी शूल पर—एरंडमूल का महीन चूर्ण १ भाग, सोंठ का महीन चूर्ण अर्ध भाग जल में मिला लेप करने से शीघ्र लाभ होते पाया है।

(७) मस्तिष्क शूल पर—एरंडमूल को भृंगराज (भांगरे) के स्वरस के साथ पीस और छान कर नस्य देने से छींके आकर शूल दूर होता है।

(८) धतूरे के विष पर—लाल एरंडमूल को जल में पीस छान कर ४ बार पिलावें, धतूरे का विष दूर होकर रोगी को शांति मिलती है।

(९) एरंड मूलके समान एरंड पत्र भी वातनाशक है साथ ही इसके पत्र कफघ्न, कृमिनाशक और मूत्रकृच्छ्रनाशक है। कोमलपत्तों में विशेष गुण होता है। ये गुल्म, वस्तिशूल तथा अण्डवृद्धि रोग को भी दूर करते हैं। आवृत्त वात पर इन पत्तों का एक प्रयोग लीजिये—

कफ रक्त, मलादि से आवृत्त वातशोथ, वेदना, आध्मानादि विकारों से युक्त रोग में रेंडी पत्रों (कोमल) को गर्म कर बांधने से तुरन्त लाभ होते पाया। पत्तों को पीस कर पुल्टिस भी बांधते हैं।

(१०) संधि-शोथ पर—संधिशोथ तथा स्त्रियों के स्तनों में दुग्ध के कारण आई हुई शोथपर पत्तों को पीसकर गरम कर पुल्टिस जैसी बांधने से शीघ्र लाभ होता है। साथ ही एरंडमूल क्वाथ भी विशेष हितावह होता है। ध्यान रहे यह उपचार उन्हीं स्त्रियों के स्तन शोथ पर करें जिन्हें दुग्ध की रुकावट से शोथ हुआ है (जिनके बच्चे होकर मर जाते हैं उन स्त्रियों को प्राय: कष्टदायक शोथ हो जाते हैं)। एरंडपत्तों की उक्त प्रकार से पुल्टिस बांधने से भी शोथ तथा वेदना दूर होगी। यदि स्तनों में दूध की कमी से तो एरंड पत्तोंको गरम कर दिन रात्रि में ८ या १० बार बांधने से दुग्ध प्रवृत्ति में वृद्धि हो जाती है।

(११) कामला पर—एरंड पत्र रस ६ माशे, १ तोला मिश्री के साथ मिश्रणकर प्रात: सायं पिलावें। तथा पत्ररस में छोटी पीपल चूर्ण मिला नित्य २ बार नस्य दें। ७ दिन में रोगी स्वस्थ हो।

(१२) बच्चों की तालू की विशेष फड़कन पर—एरंड पत्र पर घृत चुपड़ कर तालुस्थान पर बांधें।

(१३) वृश्चिक दंश पर—पत्र रस की कुछ ही बूंदें दंशित भाग के विरुद्ध के कान में टपकावें इस प्रकार २-४ बार करने से वेदना दूर हो।

(१४) सर्पदंश पर—एरंड पत्ररस २॥ तोला से ५ तोला तक में १ या २ तोले जल मिला आध आध घण्टे से इसी मात्रा में, प्रतिबार पिलावें तथा दंशस्थान पर पत्रों को पीस कर बांधें। वमन द्वारा विष निकल जावेगा। अनुभूत है।

(१५) ज्वर दाह शान्ति के लिये—तीव्र ज्वर की दाह से रोगी व्याकुल हो तो भूमि पर गायके गोबर से लीप कर उसपर एरंड पत्र बिछा दें फिर उन पत्तों को उठा २ कर रोगी के अंगों पर रखते जावें ऐसा कुछ देर तक करने से ही रोगी का दाह शान्त होवेगा।

(१६) एरंड बीज तथा तैल—गृध्रसी वातविकार पर एरंड बीज ८ या १० नग लेकर ऊपर का छिलका निकाल तथा थोड़ा कुचल कर १० तोला दूध में मिला मंद आंच पर पका दें,पकाते समय उसमे खांड २ तो० मिला लें, जब लपसी तैयार हो जावे तो रोगी को नित्य प्रात: खिलावें। इस प्रयोग से कोष्ठ साफ होकर ७ दिन में ही गृध्रसी दूर भाग जावेगी। आमवात पर भी यह प्रयोग गुणकारी है।

(१७) आम वात पर—बीजों का मगज, सोंठ का महीन चूर्ण और शक्कर तीनों सम भाग पीस कर बेर जैसी गोलियों को बनालें। एक गोली नित्य प्रति दूध में ले वें।

एवं उदर आध्मान पर-बीजों को पीस कर थोड़ा गरम करम उदर पर लेप करने से मल मूत्रोत्सर्जन ठीक ठीक होकर आध्मान दूर होता है।

(१९) रेचनार्थ—रेंडी उग्रदर्प के कारण उबकाई आती है, पिया नहीं जाता, ऐसी अवस्था में बीजों की खीर उपयुक्तानुसार बनाकर सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। १ या २ खुल कर दस्त होने से वातविकृति दूर हो जाती है।

रेंडी तेल—प्रसिद्ध सौम्य तथा रेचक है परन्तु हमलोग उस की उबकाई से डर कर क्षार युक्त रूक्ष रेचक औषधियाँ लेकर अपने कोष्ठ को विकृत कर लेते हैं इस की उग्रता से बचने के लिये कोई इसे मधुर

बनाते हैं। इसकी उग्रता में ही आंतों को उत्तेजित करने का गुण होने से शुद्ध रेंडी तैल ही प्रयोग करें। नवजात शिशु से लेकर अत्यंत क्षीण वृद्ध पुरुष भी इसका सेवन कर सकता है। इसके कुछ प्रयोग नीचे देखिये—

(१) मलावष्टंभ, आध्मान, उदरशूल, संधिवात आदि विकारों पर—बीजों से निकाला शुद्ध रेंडी तैल १ से ३ तोले तक (बच्चों को ३ से ६ माशे तक) गर्म दुग्ध के साथ दें। अथवा सोंठ के क्वाथ के साथ दें। सोंठ के क्वाथ में इसका पूर्ण लाभ मिलता है। वैसे ही रेंडी तैल पीना हो तो प्रथम तक्र (छाछ) को मुंह में भर कर थोड़ी देर कुल्ला करदें और तुरन्त रेंडी तैल पीलें, कुछ भी विदित नहीं होगा संधिवात के स्थान पर रेंडी तैल को गरम कर दोनों समय मालिश करें।

(२) वृषण वृद्धि पर—नित्य प्रातः रेंडी तैल दूध के साथ सेवन करावें और गोमूत्र में रेंडी तैल मिला कर आगपर गर्म कर के प्रातः सायं धीरे धीरे मालिश करें।

(३) बालकों के डब्बा रोग पर—पके हुए तांबूल पत्र (खाने का पान) पर रेंडी तैल चुपड़ आग पर गर्म करके सुहाता सुहाता पेट पर बाधें, इसी प्रकार दिन रात में १२ या १४ बार बाधें, शीघ्र लाभ होगा। हमने कई बार करके देखा है।

(४) भस्मक रोग पर—रेंडी तैल को घृत के साथ दिन में २ बार दें।

(५) वातजन्य श्वास पर—रेंडी तैल १॥ तो० तक और शहद २॥ तो०, मिश्रण कर प्रातः-सायं धीरे धीरे सेवन करने से लाभ होता है।

(६) दुष्ट प्रतिश्याय पीनस रोग पर—रेंडी तैल औटा कर शीशी में रखलें इसी की नस्य दिन में ६ बार लिया करें।

(७) जलाश्रित वायु पर—(उदर की नाड़ियों में वात पूर्ण होने से आध्मान व सूजन हो गई हो) तो रेंडी तैल २ तो० में काला नमक और सैंधा नमक ६-६ माशे और गौदुग्ध ३ तो० एकत्र कर प्रातः सेवन करावें ३ या ४ दिन में पूर्ण लाभ होता है।

(८) पित्त जन्य विकारों पर—रेंडी तैल को गौदुग्ध और थोड़ी शक्कर मिलाकर सेवन करें।

(९) कांच का चूर्ण यदि पेट में चला गया हो तो—रेंडी तैल ३ तो० तक दुग्ध के साथ पिलाने से यह सब मल द्वार से निकल जाता है।

(१०) गुल्म रोग पर—रेंडी तैल ३ तोला तक नित्य प्रातः काल गोके धारोष्ण दुग्ध (१ पाव तक) में मिला, पीने से २१ दिन में पूर्ण लाभ होता है।

(११) बालकों के कृमि रोग पर—रेंडी तैल को उष्णोदक के साथ रात्रि के समय ३ या ४ दिन तक पिलावें।

(१२) कटे स्थान से रक्त बंद करने के लिये—रेंडी तैल में रुई का फोहा भिगो कर रखने से तुरन्त लाभ होता है। रक्त गिरना शीघ्र बंद होवे।

(१३) बालापस्मार—(ओकड़ी पर) यह बालकों की कष्ट दायक भयंकर व्याधि है जो माता-पिता के अशुद्ध आचरणों से होती है। इस में प्रातः वातप्रकोप होता है। प्रथम मल शुद्धि के लिये रेंडी तैल पिलावें और रोग का दौरा निकल जाने के बाद एक छोटे से कपड़े की आठ तहें कर रेंडी तैल में भिगो और थोड़ा निचोड़ कर तालू पर बांध देवें। जबतक यह रेंडीतैल युक्त तर कपड़ा रहेगा रोग का दौरा नहीं होनेपावेगा।

(१४) लचक या मोच पर—रेंडी तैल को गरम कर हाथों से या फलालेन (गर्म) से मालिश करें फिर उसी फलालेन को जरा गर्म कर मोचके स्थान पर लपेट देवें प्रति दो घण्टे के बाद इसी प्रकार करते रहें।

(१५) मूत्राघात पर—किसी भी उपचार से यदि मूत्र न उतरता हो लग भग ५ तोला तक रेंडी तैल गर्म जल में मिला पिलाने से शर्तिया पेशाब खुल कर हो जाता है। कितना अच्छा प्रयोग है !!!

(१६) योनिशूल पर—रेंडी तैल में रुई की बत्ती को तर कर योनिमार्ग में रखने से शीघ्र लाभ होता है।

(१७) पित्तजशूल और पित्तज गुल्म पर—रेंडी तैल १ तोला को मुलहठी क्वाथ में मिला पिलावें। कहा है—"तैलं मेरण्डजं वापि मधुक क्वाथ संयुतम्।
शूलं पित्तोद्भवं हन्याद् गुल्मं पैत्तिकमेव च॥"
चक्रदत्त

(१८) वातशूल पर—रेंडी तैल १ से २ तोले तक अदरक रस २ तोले में मिला पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

(१९) बालकों के लिये नेत्र रक्षक कज्जल—रेंडी तैल का कज्जल पाड़कर रेंडी तैल में ही कुछ गीला करके डिबिया में सुरक्षित रखें। नित्य प्रातः बालकों की आंखों में अंजनवत आंजे इस से बालकों को कोई नेत्र विकार नहीं होने पाते। प्रत्येक गृहस्थ बना कर रखें बड़ा सरल परन्तु सिद्ध काजल है।

(२०) जीर्ण वात व्याधियों पर—रेंडी तैल १॥ तोला और गेहूं का आटा १० तोला एकत्र कर उसमें गर्म दूध या गरम जल, मिला १ घण्टे तक रखें, फिर खूब गूंधकर (मसलकर) हाथों पर ही पतली चपाती बना, कोयलों की आंच पर सेंक लें। अच्छी तरह पक जाने पर घृत और शक्कर के साथ प्रथम खाकर फिर अन्य पथ्यान्न भोजन करें। पानी गरम या पका कर ठंडा किया हुआ पीवें। दोनों समय इस प्रकार पथ्य सेवन से या केवल रात्रि में ही सेवन से शौच शुद्धि होकर परिणाम शूल, अम्लपित्त, उदरशूल, जीर्ण संविवत, अंडवृद्धि कण्डु आदि वातविकार और रक्त-विकार दूर होते हैं।

(२१) सुवासित रेंडी तैल प्रयोग—पाठकों के लाभार्थ हम अपना खास रेंडी तैल प्रयोग प्रकाशित कर देते हैं जो सुरुचिकर एवं महान लाभ कारी है—शुद्ध रेंडी तैल, गुलाब अर्क, पुदीना रस १-१ सेर नींबू रस और गूलर पत्र की पिसी हुई लुगदी १-१ पाव, साफ, सोंठ और चंदन का चूरा प्रत्येक की लुगदी ५-५ तोले, सौंफ अर्क १० तोले और कपूर १ तोला सब को एकत्र मिला, (लुगदियों को प्रथम रसों और अर्कों में मिलावें, फिर सब को तैल में मिलावें) जल दो सेर में तैल सिद्ध कर लेवें फिर छान कर बोतलें भर रखें।

मात्रा व गुण—बालकों के लिये १ माशा और बड़ों के लिये आधा तोला से २ तोला तक, दुग्ध के साथ सेवन करें। सभी प्रकार के उदर रोगों की राम-बाण सिद्धोषधि है बड़ा अच्छा अव्यर्थ प्रयोग है !!

एरण्ड तैल का विशेष विवरण—एरण्ड भारत की मुख्य उपज है ३८० वर्ष पूर्व यूरोप इस से अन-भिज्ञ था, हमारे देश से पाश्चात्य देश वासी इसका बीज विदेशों में ले गये और अपने मटोरिया मेडिका में यह महान औषध मानी गई। हमारे आयुर्वेदिक भिषग्वर इस से प्रथम ही अवगत थे।

वृक्ष भेद से बड़े एरण्ड बीजों की अपेक्षा छोटे बीजों का तैल विशेष गुण कारी होता है। तैल निकाल ने से पूर्व अच्छी प्रकार बीजों को भून लिया जावे, फिर ओंखली में कूटकर मिंगी निकाल कर जल में पकावें। (मिंगी निकालते समय जो पीली हो उसे फेंक दें अन्यथा तैल पीला हो जावेगा) ऐसा करने से मिंगी में से तैल ऊपर तिरने लगता है। इस तैल को ऊपर ही निकाल कर आंच पर पकाने से शुद्ध तैल मिलता है। कोल्हू से निकाला तैल अत्यन्त उष्ण एवं रुक्ष होता है जो दाहोत्पादक है। मशीनों द्वारा Cold drawn Caster oil उत्तम है।

रेंडी तैल के पृथक्करण से ज्ञात हुआ कि इसमें लोहा, केलशियम, मेगनेशियम, पोटाशियम, सोडियम, फास्फोरस, क्लोराइडस और कार्बोनेटस, ये द्रव्य रहते हैं इस लिये यह विशेष लाभप्रद है।

रेंडी तैल से पेन्क्रियाज में पाचक रस के साथ मिलने से आंत्र ग्रन्थियों में उत्तेजना होकर विरेचन कार्य होता है। इस में क्लोराइड्स और कार्बोनेट्स होने से यकृत पर इसका प्रभाव कुछ भी नहीं होता इसलिये विरेचन कार्य के पश्चात् आँतें शिथिल होती हैं और दूसरे दिन कोष्ठबद्धता होजाती है यह शिकायत न

होने पावे अत: रेंडी तैल में त्रिफला क्वाथ या त्रिफला चूर्ण मिश्रित किया जाता है। आधुनिक डाक्टर लोग इसमें ग्लिसरीन मिलाते हैं। परन्तु हमारे बताये हुए पूर्वोक्त प्रयोग नं० २० सुवासित सिद्ध रेंडी तैल लेने पर उसमें कोई इस प्रकार की शिकायत नहीं होने पाती।

उदर में आम संचय होने पर आंतों में ऐंठन, कतरने जैसी पीड़ा हो ऐसी अवस्था में उक्त सुवासित रेंडी तैल गर्म दूध में देने से बहुत लाभ होता है। अथवा शुद्ध रेंडी तैल भी दे दें। यह सुवासित तैल गर्भवती को भी ५ वें मास से प्रति मास बलानुसार २ तोले तक देने से (प्रति सप्ताह) गर्भ सम्बन्धी कोई विकार नहीं होने पाता। प्रसवोपरान्त भी यह तैल, अन्त्रावरण-दाह Peritonitise, Typhoid fever (मंथरज्वर), निमोनिया आदि भयंकर रोगों में सुविधानुसार बड़े आनन्द से दिया जावे आंतों में जो जंतु पड़ गये हों (कृमिविकार) तो उन के निस्सारार्थ इसे सेवन करावें उक्त रेंडी तैल (सुवासित) को नेत्रों में लगाने से नेत्रों की लाली, जलन, दृष्टिमांद्य आदि विकार दूर होते हैं। अग्निदग्ध व्रण या चोट आदि के व्रणों पर लगाने से भी शीघ्र लाभ होगा। रेंडी तैल के साथ शुद्ध गूगल का सेवन शरीर कम्प तथा अन्य वात-पीड़ा पर परम लाभप्रद है।

उक्त सिद्ध तैल की मालिश, संधिवात, शोथ, चोट पीड़ा में परम लाभ कारी है। बालों पर लगाने से बालों की वृद्धि होती है। हाथ पैरों की जलन शीघ्र दूर होती है। प्रात: सायं नेत्रोंमें आंजने से रतौंधी से पीछा छूटता है कहाँ तक कहें यह तैल बड़ा उपयोगी है। यदि दर्द के मारे उठा-बैठा न जाता हो, घुटनों में टीस हो, जंघो में पीड़ा हो, कमर अकड़ गई हो, तो उक्त सिद्ध तैल अथवा शुद्ध रेंडी तैल में समभाग गोमूत्र मिलाकर पिलावें।

मात्रा:—१ या २ तोले तक, १ मास के अन्दर पूर्ण लाभ होगा। हमने कईयों को प्रयोग कराया बड़ा लाभ मिला कहा भी है—

तैलमेरण्डजं वापि गौमूत्रेण पिबेन्नर: ।
मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुपहापहं: ।। चक्रदत्त

अब एरण्ड वृक्ष विषयक अन्य चमत्कारी प्रयोग लिखकर इस निबन्ध को पूर्ण करें।

(१) सुख पूर्वक प्रसवार्थ—यदि सब उपाय निष्फल हो रहे हों तो एरण्ड पत्रों का क्वाथ बना एक बड़ी टब में भर लें उसमें थोड़ा पुनर्नवा मूल का रस या क्वाथ भी मिलावें और आसन्न प्रसवा को उसमें बैठाकर पेशाब करने को कहें इससे शीघ्र प्रसव हो जावेगा।

(२) उग्र वात रक्तज नेत्र विकारों पर—कोमल रेंडी पत्र और मूल छाल को अजा दुग्ध में पीसें और गरमकर पोटली में रख नेत्रों में कुछ बूंदें निचोदें, शीघ्र शांति मिलेगी।

(३) ज्वर में सिर दर्द निवारणार्थ—रेंडी के कोमल पत्रों को सिर पर बांध देने से ५ मिनट में पसीना आकर पीड़ा शान्त हो जाती है।

(४) प्लीहापर—यदि सब उपाय निष्फल रहे हों तो एरण्डी के कमल पत्रों को तथा मूलको किसी मटकी में भर मुखमुद्राकर तथा अच्छी तरह कपड़ मिट्टी कर गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होनेपर अंदर की भस्म को पीस छान कर रखें। १-१।। माशे प्रात: सायं सेवन करावें।

(५) कामला रोग पर—लाल एरण्ड के कोमल पत्र १ से २ तोला तक लेकर गोदुग्ध में खूब महीन पीसकर उसमें मिश्री ६ माशे मिला पिलावें। नित्य प्रात: ३ दिन तक पथ्य में दूध व भात, प्यास लगने पर भी दूध दें। पानी न दें। तीन दिन में पूर्ण लाभ होजाता है।

(६) बच्चों के कृमि विकार पर—एरण्ड कोंपल नर्म नर्म हाथ से मलकर गुदापर बांधें।

(७) मृज्जन्य उदर शोथपर—मिट्टी खाने से बालकों को इन्द्रियदौर्बल्य, क्रांतिनाश होकर पेट बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में रेंडी पत्र महीन पीसकर इस रस्क का लोंदा बालक के उदर पर ठीक तरह

रख कर उस पर एरण्ड का ही एक पत्र रख कर पट्टी बांध दें। प्रातः बांध कर शाम को खोलें और पुनः बांध प्रातः खोलें। दो दिन में ही सब मिट्टी निकल जावेगी। ध्यान रहे इस प्रयोग के समय बालक जमीन स्पर्श न करें एतदर्थ उसके हाथों में और पैरों में मौजे पहिनाना आवश्यक है।

(८) कर्णशूल पर—किसी भी प्रयोग से कर्णशूल ठीक न हो रहा हो तो ताजे एरण्ड पत्र पीस लें और गोला-सा बना उसपर एरण्ड पत्र लपेट लें फिर मिट्टी लपेट कर कंडों की आंच में रख दें। ऊपर की मिट्टी लाल होने पर अंदर से लुगदी निकाल उसका वस्त्र से रस निचोड़ लें, फिर उसमें अदरख रस और शहद समभाग मिला लें और सबका अर्ध भाग रेंडी तैल शुद्ध और सेंधा नमक थोड़ा-सा मिलाकर तैल सिद्धकर रख लें इस तेल की कुछ बूंदें डालते ही कर्ण पीड़ा, घोर कर्ण शूल दूर होगा। यह शास्त्रीय प्रयोग है।

(९) नेत्राभिष्यंदपर—आखें आई हो तो एरण्ड पत्र रस निकाल थोड़ा सेंधानमक मिला सलाई से अंदर लगावें और ऊपर इसी का लेप करें।

(१०) स्तनों में दुग्ध संचारार्थ—स्त्रियों के अथवा गौ, भैंस आदि पशुओं के स्तनों में यदि दुग्ध संचार रुका हो तो एरण्ड पत्र ८ या १० नग लेकर २ सेर जल में पकावें, अर्धावशिष्ट रहने पर स्तनों को सुखोष्ण क्वाथ से धोकर उनके ऊपर इसी क्वाथ के उबले पत्तों को कुछ देर रखें या बाधें। ऐसा करने से शीघ्र दुग्ध संचार होगा।

(११) जीर्ण कास श्वास पर—एरण्ड पत्रों को तथा मूल छाल को उक्त योग नं० ४ की विधि से भस्म बनाकर उसमें सोंठ, कालीमिर्च, पीपल का महीन चूर्ण, प्रत्येक भस्म का चौथाई भाग तथा पुराना गुड़ दुगना और थोड़ा तिल तैल मिला १-१ माशे की गोलियां बना सेवन करावें।

(१२) बालकों के दन्तोद्गम विकार पर अव्यर्थ-एरण्ड पत्र डंठल के छोटे-छोटे टुकड़े कर एक धागे में पिरोवें माला की तरह इसे गले में पहिना दें। बड़ा-सरल और अच्छा नुस्खा है।

(१३) सर्ववात, पित्त, कफ रोगोंपर प्रसिद्ध एरण्ड पाक—४ सेर गौदुग्ध को औटाइये। २ सेर रहने पर छीले हुए रेंडी बीज की आध सेर लुगदी मिला खूब घुटाई करें खोवा जैसा बनने पर १ पाव घृत में भून लीजिये फिर २ सेर मिश्री या चीनी की चाशनी बनावें। उसमें उक्त भूने खोवा को मिलालें। कड़ाई उतार कर सौंफ, पीपल, लौंग, इलायची, दालचीनी, सोंठ, हर्र, जावित्री, तेजपात, नागकेशर, असगंध, रास्ना और पित्तपापड़ा प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला लोह भस्म ६ माशे, आर्द्रकरस १ तोला। बादाम गिरी कतरी हुई आधसेर, बीज निकले मुनक्का आधसेर और किशमिश आधसेर मिला ५-५ तोले के मोदक बना डालें।

गुण—सब प्रकार की दोषज व्याधियां पर और वैसे ही भयंकर प्रमेह, पांडु, क्षय, श्वासादि पर परम लाभकारी है। साथ ही बल वर्धक और वीर्यवर्धक भी है।

एरण्ड वृक्ष किसी किस्म के कीटाणुओं को अपने पास नहीं आने देता, बकरी इसके पत्ते नहीं खाती, टीडी इसे नष्ट नहीं करती, मच्छरादि दूर से ही पलायन करते हैं। एक अंग्रेज डॉक्टर के कथनानुसार जिसघर के पास एरण्ड हों वहां कभी रोग नहीं आते कि उक्ति कितनी सार्थक लगती है। आयुर्वेदीय महर्षियों ने इस की बहुत प्रशंसा लिखी है पर भारत वासी पाश्चात्य औषधियों के चक्कर में कितना धन व धर्म गंवाते हैं बड़े आश्चर्य की बात है ??

अब एक सिद्धांजन (सप्त पातालदर्शन कल्प) लिखकर इस निबंध को पूर्ण करते हैं—

विधि—श्वेत एरण्डमूल को पुष्य नक्षत्र में रविवार के दिन प्रातः लाकर, श्वेत एरण्ड बीज तैल और कपूर के साथ खूब खरल करें। इस अंजन को प्रातः सायं दोनों नेत्रों में लगाने से दिव्य दृष्टि होती है। ऐसा "औषधि सिद्ध कल्पलता" में उल्लेख है।

कृष्णगोपाल औषधालय की अनुभूत कृति—

पारद भस्म

वर्तमान में पारद भस्म अनेक चिकित्सक और सब फार्मसीवाले बनाते हैं। वे सब हिंगुलोत्थ पारद की भस्म प्राय: एसिड योग से बनाते हैं एवं कोई कोई वनस्पति योग से भी तैयार करते हैं। इनमें से किसी भी प्रकार की भस्म निर्धूम नहीं बनी है। विशेष अग्नि देने पर पारद उड़ जाता है। अत: वह रोगनाशक होने पर भी रसायन क्रियोपयोगी नहीं मानी जाती है।

कारण, स्वर्ण-अभ्रक ग्रास कराये हुए पारद की निर्जीव भस्म बनायी जायगी, तो वांछित लाभ दे सकती है। अभ्रक के ग्रास से पारद पक्षच्छिन्न बनता है। और सुवर्ण के ग्रास से बुभुक्षित बनता है। पक्षच्छिन्न पारद होने पर ही भस्म निर्धूम बनती है और बुभुक्षित होने पर पारद में दिव्य शक्ति का संचार होता है और जरावस्था को दूर कर नवयौवन देने की शक्ति आजाती है।

इस सम्बन्ध में रसेन्द्रचिंतामणि के प्रथम अध्याय में स्पष्ट कहा है कि:—

यावन्न शक्तिपातस्तु न यावत् पाशकृन्तनम्।
तावत्तस्य कुत: शुद्धि जीयते मृतसूतके॥

अर्थात् जब तक पारद के गर्भ में शक्तिपात (सुवर्ण और अभ्रक रूप शक्तिका प्रवेश) नहीं कराया जायगा तथा जब तक पाश (नाग वंग आदि मल) का छेदन (नाश) नहीं किया जायगा, तब तक शक्तिहीन पारद की भस्म में शुद्धि (जीवन दान देने की शक्ति) किस तरह उत्पन्न हो सकेगी?

उक्त श्लोक रसार्णव से उद्धृत हुआ है। रसार्णव उक्त श्लोक के उत्तरार्ध में 'शुद्धि' शब्द के स्थानपर बुद्धि शब्द है। बुद्धि का अर्थ पारमार्थिक विवेक ज्ञान और समाधि की सिद्धि है। यह तात्पर्यार्थ रसार्णव के प्रसंग का मनन करने पर स्पष्ट विदित हो जाता है। उक्त श्लोक में ऊपर निम्न वचन लिखे हैं:—

अचिराज्जायते देवि! शरीरमजरामरम्।
मनसश्च यथा ध्यानं रसयोगादवाप्यते॥
सत्यं स लभते देवि! ज्ञानं विज्ञानपूर्वकम्।
तस्य मन्त्राश्च सिध्यन्ति योऽश्नाति मृतसूतकम्॥

शक्तिपात शब्द का अर्थ कई विद्वानों के मतानुसार पारद की चंचलता का नाश होता है। यह अर्थ व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से उचित है। किन्तु यह शब्द वेदान्त और योग शास्त्र का पारिभाषिक सदृश प्रचलित है। एवं प्रसंग भी ज्ञान, ध्यान, विज्ञान और समाधि का है।

संन्यास ग्रहण करने के समय सद्गुरु शिष्य के हृदय में शक्तिपात करते हैं अर्थात् अपने मानसिक संकल्प शक्ति और विद्युत् शक्ति का प्रवेश कराते हैं। जिससे तत्काल शिष्यकी मनोवृत्ति अन्तर्मुख होजाती है। फिर वह बार बार उस वृत्तिको सुदृढ बना कर समाधि प्राप्ति का प्रयत्न करता रहता है। उस शक्तिपात के अनुरूप ग्रन्थकार का उद्देश्य पारद के गर्भ में स्वर्ण अभ्रक रूप शक्ति का संचार कराने का है।

उक्त वचन के आगे रसार्णव के (प्रथम पटल) में निम्न वचन मिलता है:—

गोमांसं भक्षयेद्यस्तु पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये रसज्ञमपरे ऽधमा:॥

अर्थात् जो साधक गोमांस का भक्षण करता रहता है अर्थात् जिह्वा को कपाल कुहर में प्रवेश कराकर खेचरी मुद्राका अभ्यास करता रहता है। उसका जिह्वा की सिवनी का मांस शनैः शनैः गलता जाता है और आमाशय में जाता रहता है। इसी तरह अमर

वारुणी का पान जो करता रहता है अर्थात् जिह्वा खेचरी लगाने पर मुंहमें मांसयुक्त रस (थूंक) जो संगृहीत होता रहता है, उसे जो साधक पीता रहता है। उसे मैं कुलीन मानता हूं। इतर उपासकों को अधम कोटि का रसज्ञ (रसरूप चेतन और पारद के प्रभाव को स्वरूप जानने वाले) मानता हूं। रसज्ञ शब्द का तात्पर्य "रसो वै स: । रस ् ह्यवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।" इस श्रुति के मनन से विदित हो सकेगा उक्त श्लोक हठयोग प्रदीपिका में उद्‌धृत हुआ है। एवं वहाँ स्पष्टी करणार्थ "गो शब्देन नोदिता जिह्वा तत्प्रवेशोहि तालुनि" एक अन्य श्लोक लिखा गया है।

रसायन रूप से पारद का सेवन करने वालों को रस विद्या के आचार्यों ने पारद पक्षच्छेदित और बुभुक्षित अथवा मात्र पक्षच्छेदित लेने की आज्ञा की है। इस विषय का स्पष्टी करण रसेन्द्रचिन्तामणि के द्वितीय अध्याय में निम्नानुसार प्रतीत होता है:—

रसगुण बलि जारणं विनाऽयं,
न खलु रुजाहरण क्षमो रसेन्द्रः ।
न जलदकलधौत पाकहीन:,
स्पृशति रसायनतामिति प्रसिद्धिः ॥

अर्थात् (षड्‌गुण) गन्धक जारण रहित पारद रोगोंको दूर करने में पूर्ण रूपसे सबल नहीं हो सकता है, एवं यह भी स्पष्ट है कि जलद (अभ्रक) और कलधौत (सवर्ण) के ग्रासहीन(और षोडशगुण गन्धक जारण) हीन पारद वांछित रसायनगुण भी नहीं दर्शा सकता है।

पारद की दिव्य भस्म बनाने वालों को चाहिए कि पारद के शास्त्रोक्त अष्ट संस्कार करें; अथवा द्विगुण गन्धकाम्ल में पाचन करा सब नाग, वंग आदि मल को नि: शेष करें। फिर षड्‌गुण गन्धक जारण करें। पश्चात सुवर्णमाक्षिक सत्व युक्त सुवर्णबीज तथा अभ्रक सत्व का क्रमश: विधिपूर्वक ग्रास देवें। तदनन्तर पुन: १० या १२ गुने गन्धक का जारण नलिका डमरूयन्त्र से कराकर पारद की भस्म बनावें।

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की स्वाण रसायनशाला में इस प्रकार की स्वर्ण, अभ्रक ग्रासयुक्त पारद की भस्म बनी है उसे हेमाभ्र रसभस्म संज्ञा दी है।

अब अभ्रक ग्रासयुक्त पारद की भस्म बनाने की क्रिया हो रही है। यह भस्म २० नवम्बर तक तैयार हो जायगी ऐसा अनुमान है जिन चिकित्सकों को यह देखना या अधिक जानना हो वे कालेड़ा पधार कर अनुभव कर सकते हैं।

पारद की भस्म बनाने के लिए रसग्रन्थों में रसमारकगण की अनेक औषधियां दर्शायी हैं। इनमें देवदाली, इन्द्रवारुणी, कुमारी, कृष्णकनक, श्वेतार्क, कर्कोटी, कारवल्लिका, यवचिञ्चा (इमली के कच्चे फल), गोजिह्वा, काकजङ्घा, बिल्व, ताम्बूली, लाङ्गली, व्याघ्री, बृहती, श्वेतगुञ्जा आदि अनेक प्रसिद्ध औषधियां हैं। पारद को पक्षच्छेद किये विना मारण करने में कई विघ्न आते हैं। किन्तु पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित पारद के लिए किसी भी औषधि की सहायता से मारण हो सकता है।

सबसे सरल विधि यह है कि निम्न विधि से पारद की पहले पर्पटी बना लेवें। विदेश से दो बार उड़ाया हुआ आता है, उस बोतल का पारद उत्तम जाति का, नीलाथोथा और सैंधानमक तीनों १-१ सेर लेवें। पहले नीलाथोथा और सैन्धव को कूटकर चूर्ण कर लेवें। आधा चूर्ण कड़ाही में डालें। ऊपर पारद रखें और उस पर शेष आधा चूर्ण डाल देवें। ऊपर लोहे का कटोरा ढक देवें। फिर उस पर २ मन जल डाल देवें। तत्पश्चात् सम्हाल पूर्वक कटोरे को उठा लेवें। पहले कटोरे ढकने का उद्देश्य पारद के अणु ऊपर न आ जाय, इस लिए रक्षा की आवश्यकता थी।

उस कड़ाही को चूल्हे पर रख कर अग्नि देवें। जल मात्र १-२ सेर शेष रहे, तब अग्नि देना बन्द करें। फिर ऊपर से जल निकाल डाले और नया-नया पानी डाल डाल कर पारद को धोवें। ५-७ बार धोने पर पारद उज्वल बन जाता है। भली भांति पारद स्वच्छ होजाने पर उसे लोहे की परात में फैला देवें। दूसरे दिन जम जाने पर चूर्ण कर नीबू के

(शेष पृष्ठ १८६ पर देखें)

कल्पवृक्ष

(वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह रसायनाचार्य)

भारत के पौराणिक साहित्य में कल्पवृक्ष स्वर्ग की एक महत्त्वपूर्ण देन है। सब देवता उसकी छाया में जाकर मनोकामना पूर्ण करते थे। उसी वृक्ष की शाखा का भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमती रुक्मिणीजी पटरानी के मनोविनोदार्थ स्वर्ग से लाकर रोपण किया था। किन्तु यह रोपण किस स्थल पर हुआ और किस तरह से हुआ—इसका कोई प्रामाणिक कथानक नहीं मिलता।

अभी अपनी राजस्थान की यात्रा में मुझे डायरेक्टर, आयुर्वेद विभाग से ज्ञात हुआ कि अजमेर से १६ मील दूर 'मंगलीयावास' नामक ग्राम के समीप दो वृक्ष हैं, जिनकी राजस्थान के लोग कल्पवृक्ष के नाम से पूजा करते हैं। सावन मास में वहाँ इस काम के लिये एक बड़ा मेला लगता है और कार्तिक मास में विशेषकर स्त्रियाँ वहां एकत्रित होकर पूजा, मनोकामना-पूर्ति के लिए प्रार्थना एवं व्रतोपवास करती हैं। और वहाँ के लोगों में यह विश्वास है कि जो सच्चे हृदय से प्रार्थना करता है उसकी मनोरथ-सिद्धि अवश्य होती है। मैंने इसकी जांच करने के लिए श्री उदयसिंहजी राव एम० ए० को लिखा और श्री स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज को भी। उनके पत्रों से यह सिद्ध है कि ये दोनों वृक्ष कल्पवृक्ष के नाम से पूजे जाते हैं। एक वृक्ष में पत्ते बड़े और दूसरे में छोटे होते हैं। बड़े पत्तेवाले वृक्ष को मादा और छोटे पत्तेवाले वृक्ष को नर कहते हैं। इसका तना ३४ फीट से अधिक मोटा और ऊँचाई ५७ फीट से भी ऊँची होती है। इसका पुष्प कमल के जैसा होता है। मेरे पास जो नमूना आया है वह मुकुलित पुष्प जैसा है। और इसके पत्ते सदासुहागन के पत्ते जैसे होते हैं। पत्तों में समानान्तर रेखायें होती हैं और रंग गहरा हरा होता है। पत्ता बड़ा सुदृढ़ होता है। वहां के लोगों का विश्वास है कि इसमें १२ साल के बाद एक बार एक ही फल आता है। फल का आकार बैंगन से कुछ बड़ा होता है। उसके रंग का पता न लग सका। एक सज्जन इसके लिए छः मास से उपासना कर रहे हैं। सम्भव है कि किसी समय फल आ जाये तो उन्हें उसकी प्राप्ति हो जाय। स्थानीय वैद्यों का मत है कि यह औषध में भी काम आता है। किन्तु किस औषध में काम आता है इसका ज्ञान उनको नहीं है। अतः मैं राजस्थान के वैद्यों को विशेषकर वनस्पति शास्त्रतत्वज्ञों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इन दोनों वृक्षों की जांच कर पता लगावें कि ये वनस्पति-शास्त्र को किस जाति के वृक्ष हैं। और क्या भारत में ये दो ही वृक्ष हैं या इस जाति के वृक्ष अन्यत्र भी उपलब्ध हैं।

मुझे खेद है कि हजार बरस से भी अधिक समय से यह वृक्ष वहां फलता-फूलता रहा है पर इस विषय में किसी ने आज तक जांच-पड़ताल नहीं की। केवल धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुषों ने ही इसकी रक्षा कर रखी है। आशा है कि मेरी प्रार्थना पर राजस्थान के स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी इसकी पूरी जांच-पड़ताल कर जनता-जनार्दन की सेवा के लिए तथ्य का प्रकाशन करेंगे। यदि वास्तव में ये कल्पवृक्ष हैं तो भारतीय संस्कृति के अनुसार बड़े महत्त्व के पूजनीय पादप हैं और उनकी उपासना से मनोकामना की पूर्ति कर क्यों न मनुष्य अपने जीवन को सुख दायी बनायें।

वक्तव्य—दि० २४-१०-५७ को पूज्य स्वामीजी महाराज इस वृक्ष को देखने के लिये कालेड़ा से अजमेर होते हुये मांगलियावास पधारे थे साथ में वैद्य रमेशचंद्र जी व्यास अजमेर वाले ठा० साहिब नाथूसिंह जी भी थे। पूज्य स्वामीजी महाराज का यह मत है कि यह वृक्ष कल्पतरु नहीं होकर गोरख इमली है यह आस्ट्रेलियन जाति की इमली नहीं होकर अफ्रेकियन

जाति की है इसका इस समय हमें फल नहीं मिला था इसका फल मिलने पर इसके विषय में विशेष उल्लेख करेंगें। पेड़, पत्ते, पुष्प इत्यादि का मिलान हमारे यहां से प्रकाशित गांवों में औषधरत्न प्र० खं० पृ० सं० १७५ पर लिखे हुये के अनुसार मिलते हैं। वहाँ पर दो वृत्त हैं जिनको जगत नर और मादा मानते हैं परन्तु दोनों पर पुष्प आते हैं एक-से पुष्प होते हैं ऐसी स्थिती में यह नर और मादा कैसे हो सकते हैं। सम्पादक

— पारद भस्म —

(पृष्ठ १८४ का शेष)

रस में (चीनी मिट्टी के पात्र के भीतर) डाल देवें। ३ दिन होने पर रस के भीतर अधिकांश में नीलाथोथा आकर्षित हो जायगा। फिर उस रस को निकाल लेवें। नया रस भरें। इस तरह ३ बार करने पर नीलाथोथा आकर्षित हो जाता है; तथापि पारद पर्पटी रूप में रह जाता है।

उक्त पर्पटी के साथ षड् गुण (६ सेर) गन्धक मिला कर कज्जली करें। फिर नलिका डमरू यन्त्र से जारण करनेपर पारद मुलायम भस्म रूप बन जाता है।

उक्त भस्म के साथ विधि पूर्वक (१६ वां हिस्सा कम ६४ वां हिस्सा) सुवर्ण तथा सुवर्ण से दूना माक्षिक सत्त्व मिला १/२-१/२ नीचे ऊपर बिड देकर अति खट्टी काञ्जीमें १ दिन खरल करें। फिर भूर्ज पत्र पर लेप कर चौलड कपड़े की थैली में भर यथा विधि ३ दिन तक दौला यन्त्र में खट्टी काञ्जी मिला मिला स्वेदन कराने पर ग्रास पचन हो जाता है। फिर सुवर्ण का दूसरा ग्रास दे दिया जाय तो विशेष अच्छा।

तत्पश्चात् अभ्रक सत्व १/६४ वां हिस्सा और १/६ स्वर्णमाक्षिक सत्व का ग्रास देकर उपर्युक्त विधि से मर्दन और दौलायन्त्र से जारण करें फिर अभ्रक सत्व का इसका ग्रा[illegible] वें [illegible] का देवें। इस तरह [illegible] दो बार षड् गुण गन्धक जारण [illegible] है।

ग्रास [illegible] या [illegible], इस बात के निर्णयार्थ आचार्यों ने दर्शाया है; [illegible] दौलायन्त्र में से निकालने के समय पारद को [illegible] में डाल गरम काञ्जी में ४-६ बार डुबोकर धोवें। जिससे उसमें रहा हुआ मल (बिड, काञ्जी का किट्ट भाग) पृथक् हो जायगा फिर और गरम काञ्जी से धो पोंछ कर पारद को गरम कड़ाही में डाल कर मर्दन करें। इस मर्दन का उद्देश्य पारद मेंसे काञ्जी की आर्द्रता को दूर करना है। पारद सूख जाने पर फिर वजन करें। जो पारद का मूल वजन प्रतीत हो तो ग्रास को पचन हुआ मान लेवें। यदि पारद का वजन अधिक हो तो फिर से मर्दन और दौलायन्त्र में जारण करके ग्रास को पचन करा देवें।

इस प्रकार पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित अथवा केवल पक्षच्छिन्न पारद जो १६ या १८ गुने गन्धक से जारित है, उसकी भस्म बनाने के लिए हुलहुल के स्वरस में १ दिन खरल कर छोटी छोटी टिकिया बनावें। ५-५ तोले के पृथक् पृथक् संपुट बनावें उसे २ सेर गोबरी की अग्नि देवें। इस तरह ७ पुट देवें।

तत्पश्चात् पारद को घी कुंवार के रस में १ दिन खरल कर १ सेर पारद का एक ही संपुट बनाकर गजपुट अग्नि देवें। इस तरह ७ पुट देने के पश्चात् रंग सुधारने और गुणवृद्धि कराने के लिए मेंहदी के रसमें खरल कर ४ या ६ गज पुट देवें। इसका रंग सुन्दर लाल आ जायगा और अति मुलायम बन जायगी, ऐसा अनुमान है।

(इस समय अभ्रक ग्रास युक्त पारद का अन्तिम षड् गुण गन्धक जारण हो रहा है। फिर हम पुट देने का प्रारम्भ करेंगे)।

पारद संशोधित को ग्रास देकर जारण करने पर वजन का सच्चा निर्णय होजाता है। इस निर्णय की सुविधा पारद पिष्टी बना कर फिर षड् गुण गन्धक जारण कराने (भस्म बन जाने पर नहीं मिलती) तथा सुवर्ण और अभ्रक सत्व का ग्रास देने पर उनमें रही विद्युत् पारद भस्म में आकर्षित होजाती है। भस्म सुवर्ण और अभ्रक को पचन कर लेता है। यह निश्चित किया गया है। इसके लिये शास्त्राधार भी है।
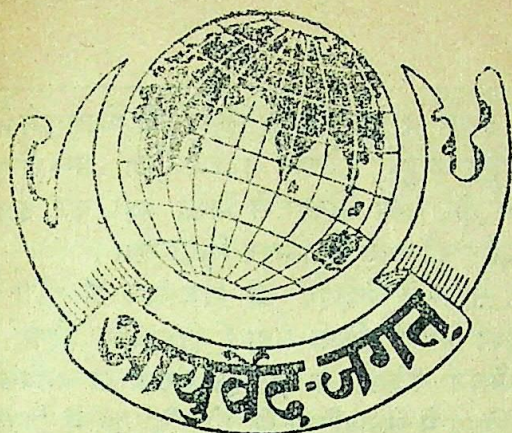
धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

दिनांक २१-१०-५७ को कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन के समस्त कर्मचारियों व जनता ने मिलकर यहाँ पर प्रभात फेरी निकाली व दिन को १०॥ बजे आतुरालय भवन में श्री भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन श्रीमान् ठा० नाथूसिंह जी के करकमलों द्वारा हुआ। पश्चात् संस्था के मंत्री श्री कुं० जसवन्तसिंह जी व वैद्य पुरुषोत्तम जी के " धन्वन्तरि जयन्ती क्यों मनाते हैं,, पर धारावाहिक भाषण हुये पश्चात् प्रसाद वितरण करके सारी कार्यवाही समाप्त की गई।

नसीराबाद में धन्वन्तरी जयन्ती समारोह

आज सांयकाल स्थानीय वैद्य सभा की ओर से धन्वन्तरी जयन्ती उत्सव पर राजस्थान आयुर्वेदिक प्रान्त सेवा मण्डल अजमेर के अध्यक्ष वैद्यराज श्री ओम प्रकाश जी ने प्रधान पद से भाषण देते हुये कहा कि जिस प्रकार हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है उसी प्रकार आयुर्वेद ही राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली हो सकता है। आयुर्वेद भारतीय संस्कृति और विलात का प्रतीक है, आज सरकार विदेशी चिकित्सा के अनुसंधान पर करोड़ों रुपया खर्च कर रही है, परन्तु आयुर्वेद पर उसका दसवां भाग भी नहीं करती। आपने जनता तथा वैद्यसमाज से अपील की कि वह सरकार को आयुर्वेद की ओर ध्यान देने के लिये मजबूर करें।

धन्वन्तरी जयन्ती की प्रान्तव्यापी तैयारियाः—

उदयपुर डाक से—

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के उदयपुर स्थित कार्यालय द्वारा प्रचारित एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि इस बार धन्वन्तरी जयन्ती का पवित्र पर्व सारे राजस्थान में प्रान्तव्यापी स्तर पर मनाया जा रहा है। भगवान धन्वन्तरि को वैद्य गण आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक के रूप में मानते आये हैं, अनेक पुराणों में भी धन्वन्तरि का वर्णन समुद्र मंथन से उत्पन्न चौदह रत्नों में पाया जाता है जिनके हाथ में अमृत कलश और वनस्पतियां हैं, इसी प्रकार आयुर्वेद के मूल ग्रन्थ सुश्रुत में भी धन्वन्तरि का काशीराज दिवोदास के रूप में वर्णन उपलब्ध होता है। कुछ भी हो भारत में यह पर्व धन तेरस श्री कि धन्वन्तरि त्रयोदशी का अपभ्रंश है हजारों वर्षों से मनाया जा रहा है, स्वास्थ्य की दिशा से यह पर्व अपना एक विशेष महत्व रखता है ? इसी लिए हमारे देश में इस अवसर पर मकानों की शहरों की सफाई का कार्य आयोजित किया जाता है।

प्रचारित विज्ञप्ति के अनुसार इस अवसर पर स्वास्थ्य सप्ताह, सफाई आन्दोलन, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, स्वास्थ्य परीक्षक, प्रतिज्ञा समारोह अभिनय, आदि के कार्य क्रमों का आयोजन है जिनमें विशेष कर उदयपुर डिविजन में यह समारोह सर्वोदय तरीके से मनाया जा रहा है डिविजन में इस अवसर पर ही करीब करीब जिला सभाएं ७ तहसील सभाओं के स्थापना का प्रारम्भ है। पिलानी में आचार्य नित्यानन्दजी इस समारोह को अच्छे तरीके से आयोजित कर रहे हैं साथ ही इस के सन्दार सहर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर में भी जोरदार तैयारियों के समाचार मिल रहे हैं।

राजस्थान सरकार से भी इस अवसर पर सार्वजनिक छुट्टी तथा राज्य के स्तर पर इस समारोह को आयोजित करने की अपील की गई है। जिसके अनुसार राज्य के चलने वाले ६०० औषधालयों में इस समारोह को आयोजित करता है राज्य सरकार के आयुर्वेद विभाग संचालक महोदय भी इस ओर काफी सतर्क एवं प्रयत्नशील हैं।

श्री हलवाई समिति के धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय का उद्घाटन।

जयपुर (डाक से) यहां राजस्थान के गृहमंत्री श्री रामकिशोरजी व्यास ने हलवाई समिति के धर्मार्थ

आयुर्वेदिक चिकित्सालय का उद्घाटन किया। आप ने बताया कि आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली ही एक ऐसी प्रणाली है, जो भारत के लिए परम उपयोगी सिद्ध हो सकती है तथा जिसका प्रचार देश के प्रत्येक गांव में बड़ी सुगमता से हो सकता है।

प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्यसमिति के तृतीयाधिवेशन में महत्त्वपूर्ण निर्णय

जोधपुर डाक से—

दिनाङ्क ६-१०-५७ की रात्रि में ८ बजे माधव चिकित्सालय चौपासनी रोड़ पर स्थित में राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्यसमिति का तृतीयाधिवेशन प्रारम्भ हुआ। जिसकी अध्यक्षता कविराज माधवप्रसादजी शास्त्री ने की। सर्वप्रथम प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति श्री गोवर्धनजी छांगाणी के असामायिक निधनपर शोक प्रस्ताव पास हुआ तथा २ मिनट तक सभी सदस्य खड़े होकर दिवंगतात्मा के प्रति चिर शान्ति की प्रार्थना की।

इसके पश्चात स्नायुक शोथ योजना पर विचार आरंभ हुआ। स्मरण होगा कि केन्द्रीय सरकार से बाला की रोक थाम के लिये सम्मेलन ने ५ लाख की मांग की थी और केन्द्रीय सरकार के योजना मांगने पर योजना बनाने एक उपसमिति ने १३ पृष्ठों की एक सर्वाङ्गीण योजना बना कर प्रस्तुत की थी। योजना के हर अङ्गों को अच्छी तरह छान बीन करना आवश्यक समझ निम्न लिखित महानुभावों का चुनाव इसकी छान बीन कर राजस्थान सरकार के द्वारा केन्द्रीय सरकार को भिजवाने हेतु निर्णय किया गया।

१. कविराज माधवप्रसाद जी शास्त्री जोधपुर।
२. जसराज जी जोशी भिषगाचार्य जोधपुर।
३. कविराज नित्यानन्द जी वैद्य वाचस्पति बून्दी।
४. स्वामी रामप्रकाश जी भिषगाचार्य जयपुर।
५. मिश्रीप्रसादजी शास्त्री उदयपुर।
६. बाबूलालजी जोशी जालोर जिला वैद्य सभा।
७. प्रधान मंत्री राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन जोधपुर।

इसके पश्चात आयुर्वेद लेखकों को प्रोत्साहन मिले इस हेतु आयुर्वेद एकेडमी राजस्थान का प्रस्ताव पास हुआ और राज्य सरकार से लिखा पढ़ी कर इसकी स्थापना की जाने का निर्णय किया गया।

सभापति महोदय का राजस्थान में दौरा हो इसका निर्णय किया गया। राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन पत्रिका के सम्पादक मंडल के अधिकारों के विषय में सभापतिजी के कोटाधिवेशन में वितरित अध्यक्षीय भाषण के रुपयों का हल ढूंढा गया चूंकि स्वागतकारिणी ने वे रुपये अभी तक चुकाये नहीं।

उपस्थिति खूब रही तथा सदस्यों में भारी उत्साह पाया गया। जो जो सदस्य समय पर कार्यवश नहीं पहुँच सके उनके तार तथा पत्र बहुत परिमाण में इस अधिवेशन में आये जिनको पढ़ कर सुनाया गया। सम्मेलन का यह अधिवेशन महत्त्वपूर्ण रहा चूंकि एक बड़ी योजना जिसका असर समस्त राजस्थान की भयानक व्याधि बाला से लोगों को रोग मुक्त कराने का रहेगी उस योजना पर अन्तिम निर्णय किया गया।

कृष्ण गोपाल धर्मार्थ चिकित्सालय

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा संचालित कृष्ण गोपाल धर्मार्थ चिकित्सालय एवं आतुरालय में १ सितम्बर १९५७ से ३१ सितम्बर १९५७ तक १ मास में ३३७० रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई उनमें नूतन रोगी १२०९ पुरातन रोगी २१६१ आये। नवागन्तुक रुग्णों का रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार है।

व्रण १७४, पूयमेह १, ज्वर ५६, कास १२३, प्रतिश्याय ७४, गुल्म ५, विषमज्वर ५४, वातश्लैष्मिक ज्वर ७८, श्वास ३७, राजयक्ष्मा २०, नेत्र १२६, चर्मरोग १४, निर्बलता ७, वातरोग ६९, विबन्ध ३०, धनुर्वात १, आन्त्रिकज्वर ११, प्रमेह १६, प्रदर ३३, अतिसार २७, प्रवाहिका ४०, अग्निमांद्य ३. सोमरोग १ अर्श ३, रक्तपित्त २, अम्लपित्त १०, पित्तप्रकोप १०, कर्णरोग ६३, मुखपाक १६, पामा ५, उदरामय २७, कामला ३, दन्तरोग २१, सन्निपात २, दद्रु ८, कुष्ठ ५, रक्तविकार ७, उपदंश १ श्वसनकज्वर १, आमवात ३, यकृद्वृद्धि ५, शिरोरोग ११।

भारतवर्ष और आयुर्वेद चिकित्सा योग्यता सम्बन्धि विवाद

(लेखकः-श्री वैद्य रमेशचन्द्र जी भिषगाचार्य धन्वन्तरि)

भारतवर्ष के इतिहास पर सिंहावलोकन करने पर यह विदित होता है कि संसार का सर्व प्रथम चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद के रूप में ही अवतरित हुआ है, यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा, कि संसार के सब प्राचीन साहित्य वेदों में आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान का मूल स्रोत निहित हैं। अथर्ववेद और ऋग्वेद में अधिकांश रूप में आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान की चर्चा मिलती है। वैदिक काल से ब्राह्मण ग्रन्थों के रचनाकाल तक आयुर्वेदिक सिद्धान्तों में काफी प्रगति हुई और परिणाम स्वरूप संहिताकाल तक आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के ८ अंगों में चरम सीमा उन्नत हुई है। विभिन्न देशों के विद्वानों की परिषद् भारत में हुई और चिकित्सा विज्ञान के अनेक सिद्धान्तों पर वादविवाद के बाद जो निर्णय हुए अब तक भी सिद्धान्त रूप से माने जा रहे हैं।

इस से यह विदित होता है कि विज्ञान के विकास में कभी भी प्राचीन आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के विद्वानों को दुराग्रह नहीं रहा है।

देश के विभिन्न स्थलों में जहां भी सत्य पाया गया है उसको लेने की उदारता प्राचीन महर्षियों ने की है। चरक, सुश्रुत, कश्यपसंहिता आदि महान् ग्रन्थ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। आज जब कि सारे विश्व में चिकित्सा विज्ञान स्तर का प्रश्न उठता है तो कौनसा चिकित्सा विज्ञान कितना महत्वपूर्ण है और सर्वाङ्गपूर्ण न भी हो तथापि जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिये अधिक उपयोगी है इसकी खोज में देश के बड़े से बड़े वैज्ञानिक अपने जीवन की बलि लगाकर भी प्रयत्नशील है।

ऐसी परिस्थिति में शल्य शालाक्य, प्रसूति कौमार्य भृत्य आदि चिकित्सांगों के परिशिष्ट से विभूषित एलोपैथि चिकित्सा विज्ञान आज समस्त देश के साम्राज्य सिंहासन पर आरूढ़ है। इसकी तुलना में आज आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिये हमारा प्रयत्न नितान्त वांछनीय है। यद्यपि आज भारतवर्ष में कुछ विश्वविद्यालय एवं अन्यान्य माननीय आयुर्वेदिक शिक्षा प्रतिष्ठानों में आयुर्वेद की उपाधि परीक्षाएँ प्रचलित हैं और आवश्यकतानुसार आधुनिक विषयों का समावेश कर लिया गया है। प्रश्न यह है कि आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान का सही प्रतिनिधित्व करनेवाला आज देश में कौनसा पाठ्यक्रम सफल हो रहा है। इसमें दो मत नहीं है कि सभी पाठ्यक्रमों के निर्माण में समस्त भारतवर्ष के चोटी के विद्वानों का अभिमत रहा है। भाषा माध्यम के सम्बन्ध का प्रश्न अधिक विवादास्पद नहीं होना चाहिये। यहां तो उच्चस्तर के विभिन्न विषयों के ग्रन्थ हिन्दी में तैयार हो जावेंगे तो शनैः-शनैः यह प्रश्न हल हो जावेगा। महत्त्वपूर्ण प्रश्न पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में जो आज विवाद का स्वरूप बना हुआ है वह आयुर्वेद के साथ सैद्धान्तिक विषयों के साथ-साथ कार्याभ्यास के शिक्षण का भी समुचित प्रबन्ध (प्रेक्टिकल) को एक आयुर्वेद महाविद्यालय के साथ साधन सम्पन्न आरोग्यशाला, प्रयोगशाला, शवच्छेदनालय, प्रदर्शनालय, पुस्तकालय, वनस्पति उद्यान, रसायनशालाएं, बहिद्रंगों के चिकित्सालय की सुव्यवस्था हो जिससे कि शिक्षार्थियों को सैद्धान्तिक विषयों के अध्ययन के साथ-साथ ही उक्त विभागों में नियमित उपस्थित होकर प्रायोगिक ज्ञान को प्राप्त करने में जागरूकता आवश्यक है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि प्रशिक्षार्थि प्रत्यक्ष कर्माभ्यास में अधिक दिलचस्पी न लें या प्राशक्षकोंके अध्यव्यवसाय की कमी से शिक्षार्थियों में चिकित्सा विज्ञान की प्रोढता न आये यह आन्तरिक व्यवस्था का प्रश्न है, परन्तु जिन परीक्षाओं का स्वतन्त्र महाविद्यालय नहीं ह, और एक मात्र बोर्ड द्वारा केवल परीक्षा लेने की पद्धति चालू हो तो प्रायोगिक कर्माभ्यास के प्रति आज के युग के शिक्षार्थियों के ज्ञान साधनों में ऐसी परीक्षा

व्यवस्था कितनी प्रौढता ला सकती है। यह एक गम्भीर विचार का विषय है।

जब कि आज साधन सम्पन्न महाविद्यालयों के भी प्रशिक्षार्थि योग्यता से वंचित रह सकते हैं ऐसी स्थिति में केवल सैद्धान्तिक विषयों की प्रधानतावाले पाठ्यक्रम की तुलना प्रायोगिक साधन सम्पन्न महाविद्यालयों की तुलना में समानता मानने का आग्रह कितना विवेक पूर्ण है, यह ठण्डे दिमाग से सोचने का विषय है। इस प्रसंग पर यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि राजस्थान सरकार ने उच्चस्तरीय पंच वर्षीय पाठ्यक्रम का निर्माण भारतवर्ष के प्रख्यात विद्वानों की उपस्थिति में किया है। लेखक स्वयं भी उस पाठ्यक्रम परिषद में एक आमन्त्रित सदस्य के रूप में उपस्थित हुआ है, जहां तक अनुभव किया है इस पंचवर्षीय पाठ्यक्रम में आधुनिक विषयों के समावेश के साथ इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पाठ्यक्रम के उत्तीर्ण स्नातक अधिकांश में आयुर्वेद का प्रातिनिध्य कर सकें।

ऐसा विदित हुआ है कि यह पाठ्यक्रम राजस्थान सरकार ने आयुर्वेद महाविद्यालय जयपुर व उदयपुर एवं इस पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अन्य महाविद्यालयों में प्रारम्भ कर दिया है।

पंचवर्षीय योजना में आशा की जाती है कि राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम के अनुसार साधन सम्पन्न बन जावेंगे। यह आज नहीं कहा जा सकता कि राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय सर्वाङ्गपूर्ण है और पंचवर्षीय पाठ्यक्रम सर्वथा निर्दोष है परन्तु यह एक अच्छा प्रयोग है जिसके प्रारम्भ होने पर उचित संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन किया जाकर उच्चस्तरीय निर्दोष पाठ्यक्रम स्थिर करने की ओर प्रगति का कदम बढ़ाया जा सकता है। इस दौड़ में अन्य पाठ्यक्रम जिनमें वर्षों से प्रगति नहीं हुई है और न आपसी राग द्वेष में प्रगति की संभावना है। ऐसे पाठ्यक्रम के साथ प्रगति के क्रम पर जाने वाले पाठ्यक्रम को मानना आयुर्वेद विज्ञान के लिये किसी भी हालत में श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता।

मुझे आयुर्वेद पत्रिका में राजस्थान में योग्यता सम्बन्धित विवाद शीर्षक का एक लेख जिम्मेदार सम्पादक की लेखनी से लिखा हुआ पढ़ने का अवसर मिला। आदि से अन्त तक इस लेख के अध्ययन के बाद यह प्रतीत होता है कि सम्पादक महोदय के सामने एक बहुत बड़े ऐसे दल के हित की समस्या का प्रश्न जो केवल सैद्धान्तिक विषयों की परीक्षा में उत्तीर्ण वैद्य है। जहां तक एक वैद्य के वेतन का प्रश्न है कम से कम १००)रू० से कम किसी वैद्य का वेतन नहीं होना चाहिये। परन्तु जहांतक उच्चस्तरीय योग्यता का प्रश्न है योग्यतानुसार वैद्य का सम्मान अवश्य करना चाहिये।

अत: राजस्थान महाविद्यालयों की परीक्षाओं में उत्तीर्ण स्नातकों को अधिक वेतन देना सरकार की कृतज्ञता का परिचायक है। परन्तु ९०)रू० मासिक मात्र ऐसे योग्यतम वैद्यों को वेतन अवश्य उपहासास्पद है।

मेरी स्पष्ट राय यह है कि ५ वर्ष के उच्चस्तरीय पाठ्यक्रम उत्तीर्ण स्नातकों को वेतन, एम० बी०बी०एस डाक्टरों से किसी भी तरह कम नहीं होना चाहिये जब कि वैद्यों की सेवायें अधिकाधिक सहानुभूति पूर्ण और लोक प्रिय है। सरकार ने यदि भिषगाचार्य एवं तत्सम योग्यता के विद्वानों को ९० रू० मासिक वेतन आरम्भ में देने का कदम बढ़ाया है तो योग्यता को दृष्टि से कम से कम १५०)रू० मासिक प्रारम्भिक वेतन देना विवेक पूर्ण होगा। यदि इस प्रकार वेतन स्तर की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है तो योग्यतम प्रशिक्षार्थी महाविद्यालयों में आवेंगे और यही देश की सच्ची सेवा कर सकेंगे।

मैं इस विचार धारा से सर्वथा असहमत हूं कि विभिन्न परीक्षाओं के विवाद को लेकर एक बहुत बड़ा मत भेद खड़ा किया जावे। अच्छा यह हो कि उच्चस्तरीय पाठ्यक्रम की समाप्ति के बाद प्रारम्भिक वेतन वैद्य को १५०)रू० और अन्य प्रचलित परीक्षाओं में उत्तीर्ण वैद्यों का प्रारम्भिक वेतन १००)रू० मासिक होना चाहिये, जिससे वैद्यों की रोटी का प्रश्न हल तो होगा ही, साथ ही उनको उच्चस्तरीय पाठ्यक्रम परिपूर्ण करने का प्रोत्साहन मिलेगा। जिससे आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान की समृद्धि उत्तरोत्तर होगी।

—: नागार्जुन उद्घाटन समारोह पर संक्षिप्त उद्घाटन भाषण :—

SUMMARY OF THE INAUGURAL ADDRESS

केन्द्रीय व्यापार और उद्योग मंत्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा एशियाटिक सभा भवन में 'नागार्जुन' के उद्घाटन समारोह पर दिया हुआ, दिनांक २४ सितम्बर १९५७, मंगलवार।

By Sri Morarji Desai, Union Minister for Commerce and Industry, at the Udghatan Ceremony of 'Nagarjun' at the Asiatic Society Hall on Tuesday, September the 24th, 1957.

केन्द्रीय व्यापार और उद्योग मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने इस बात पर जोर दिया कि आजकल स्वार्थ-रहित आयुर्वेद का प्रचार किया जाय और जीवन के इस प्राचीन राष्ट्रीय विज्ञान का परिश्रम से अनुसन्धान किया जाय।

Sri Morarji Desai, Uuion Minister for Commerce & Industry stressed here today the need for selfless propagation of Ayurveda and studious research on the ancient national science of life.

The Minister, wishing Nagarjun all success in its endeavours to spread the message of Ayurveda in the national and international spheres, said, it was imperative that Ayurveda should be accepted in this country itself as the national system of medicine and treatment on the widest possible scale.

Outlining the role that lovers of Ayurveda in general, and Nagarjun in particular, could play in this missionary task, Sri Desai said that mere denunciation of other systems of medicine would not help Ayurveda to re-establish itself in the country and the outside world. What was needed was ceaseless work in the vigourous propagation of the science of Ayurveda by research, by correct methods of education and practice and providing quick economic relief for humanity in general. People who doubted the efficacy of Ayurveda required to be gradually convinced by a process of persuasive education and treatment.

मंत्री महोदय ने नागार्जुन की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में आयुर्वेद के सन्देश को फैलाने के उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने की कामना करते हुए, इस बात की नितान्त आवश्यकता बताई कि स्वयं आयुर्वेद ही इस देश में हो सके उतने व्यापक परिमाण में राष्ट्रीय औषधि एवं चिकित्सा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

साधारणतः आयुर्वेद और विशेषतः 'नागार्जुन' के प्रेमी जो कि इस पवित्र कार्य में भाग ले सकते हैं, उन के कार्य की व्याख्या करते हुए श्री देसाई ने कहा कि केवल दूसरी प्रणालियों की उपेक्षा करना मात्र ही आयुर्वेद को ही देश में और बाह्य संसार में पुनः स्थापना में सहयोग नहीं देगा। आवश्यकता इस बात की है, कि शिक्षण के सच्चे तरीके और अभ्यास के द्वारा एवं अनुसन्धान के द्वारा आयुर्वेद विज्ञान के उत्साह पूर्ण प्रचार के लिये अविश्रान्त कार्य किया जाय और साधारणतः मानवता के लिए त्वरित आर्थिक सहायता दी जाय। जो लोग आयुर्वेद की प्रभावशीलता पर संदेह करते हैं, उनका शनैः शनैः अनुकूल शिक्षा एवं व्यवहार द्वारा समाधान किया जाना आवश्यक है।

Modern science existed on the axiom that nothing could be rejected without a test. Ayurveda literally meant the knowledge of the science of life. If people dealt with it as a science they ought to give it a trial as all scientific knowledge must be subject to a test before rejection. Its mere summary rejection would be meaningless, he said.

"Such rejection exhibits only ignorance and suspicion born out of an incorrect approach. The sooner we adopt a correct scientific and methodical approach to Ayurveda the better it is for all" he said.

The healing procees of nature and Ayurveda went hand in hand, to combat human Dailments; Vayu, Pitha, Kapha-the tridosha theory of Ayurveda was based on nature itself.

Sri Desai said, he had great respect for the natural remedies which Ayurveda provided. Ayurveda did not merely provide a treatment to the ailing people but also dealt with the emotions and tendencies of those who sought its aid. The scope of Ayurveda was unlimited but it was indeed unfortunate that it had lagged behind the modern systems of medicine. Whatever the historic facts that might have led to the decline of Ayurveda, he said, the primary fault lay with the people themselves.

"If we want to bring Ayurveda to its original place of pride and eminence we have to accept it as our own heritage; we aught to exhibit greater love for its practice, propagation and scientific study".

आधुनिक विज्ञान का अस्तित्व इस बात पर आधारित है कि बिना परीक्षण के कुछ भी न रहे। आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ है जीवन के विज्ञान का ज्ञान। यदि लोग इसे विज्ञान के रूप में ग्रहण करते हैं, तो उन्हें इसकी परीक्षा का अवसर दिया जाना चाहिए जैसे सभी वैज्ञानिक ज्ञान त्यागने से पूर्व परीक्षित होते हैं। उन्होंने कहा-इसका केवल संक्षिप्त त्याग अर्थ हीन होगा।

उन्होंने कहा कि "अयोग्य प्रयास से उत्पन्न ऐसा त्याग मात्र अज्ञान एवं सन्देह का प्रदर्शन करता है। जितनी जल्दी हम सही वैज्ञानिक और विधि पूर्ण प्रयत्न आयुर्वेद के लिए अपनावें उतना ही यह सर्व साधारण के लिए उत्तम है।"

मानव व्याधियों के उपचार का प्राकृतिक तरीका एवं आयुर्वेद साथ साथ चलते थे। वायु, पित्त, कफ-त्रिदोष सिद्धान्त स्वयं प्रकृति पर आधारित था।

श्री देसाई ने कहा, कि मैं आयुर्वेद के प्राकृतिक उपचार के लिए बड़ा सम्मान रखता हूँ। आयुर्वेद केवल रोगी मनुष्य की चिकित्सा ही नहीं करता बल्कि इसकी सहायता चाहने वालों की भावनाओं और प्रवृत्तियों के साथ सम्बन्ध रखता है। आयुर्वेद का क्षेत्र असीम था पर वास्तव में यह दुर्भाग्य की बात रही कि वह आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों से पिछड़ गया। आयुर्वेद के पतन का चाहे कोई भी ऐतिहासिक कारण हो, मूल दोष लोगों का ही है ऐसा उन्होंने कहा।

"यदि हम आयुर्वेद को उसके गौरवशाली एवं लोक प्रिय मौलिक स्तर पर लाना चाहते हैं तो हमें इसे अपनी परंपरागत प्रणाली के रूप में अंगीकार करना पड़ेगा। हमें इसके अभ्यास, प्रसार एवं वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अधिकाधिक प्रेम प्रदर्शित करना चाहिए।

आयुर्वेद जगत् में ख्याति प्राप्त कुछ

—: अपूर्व गुणकारी औषधियां :—

मात्र वैद्यक व्यवसाय वालों के लिए—

अम्बर कस्तूर्यादि वटी (विशेष)

इस वटी में कस्तूरी, अम्बर, चन्द्रोदय नं० १, सुवर्णभस्म, मुक्तापिष्टी, माणिक्यपिष्टी आदि मूल्यवान औषधियां मिलायी हैं। भस्म जो विशेष पुटवाली हैं, वे ही मिलाई गई हैं।

उपयोग—यह समशीतोष्ण, बल्य और ओज वर्द्धक श्रेष्ठ औषधि है। मांसक्षय, राजयक्ष्मा, मधुमेह, हृदयरोग, पाण्डु, श्वासरोग, वातरोग, जीर्णज्वर, विष विकार आदि रोगोंमें आई हुई कमजोरी, मानसिक शिथिलता, वृद्धावस्था जनित निर्बलता आदिसे पीड़ितों और शुक्रकी न्यूनता वाले रोगियोंको सेवन करायी जाती है।

मात्रा—१-१ गोली सुबह रात्रिको दूधके साथ। अन्य पौष्टिक पाकका सेवन साथमें करना हो, तो कर सकते हैं।

मूल्य—३ माशे का १५) रु०।

चन्द्रोदय वटी (विशेष)

यह वटी सप्त उपविषों से शोधित पारद से तैयार किये हुये पूर्ण चन्द्रोदय, सुवर्ण भस्म, वंगभस्म, लोहभस्म, कस्तूरी, अम्बर, केशर आदि बहुमूल्य औषधियां मिलाकर बनायी है। यह वटी उत्तम हृदयपौष्टिक, वाजीकर, बलवर्द्धक और क्षयहर है। यह गृहस्थाश्रम में रहने वाले असीरों के लिए है। इसके सेवन से रस, रक्त आदि सब धातु बलवान बनती हैं, स्मरणशक्ति बढ़ती है, विचारशक्ति सूक्ष्म होती है और कार्य करने में उत्साह की वृद्धि होती है।

अधिक स्त्री सहवास, मानसिक परिश्रम, रक्तस्राव, मानसिक आघात, दीर्घकाल स्थायी ज्वर और प्रतिकूल वायुमण्डल में निवास आदि कारणों से शारीरिक धातुओं का क्षय हो जाता है। उस समय शारीरिक निर्बलता, कृशता, मस्तिष्क में भारीपन, चेहरे पर उदासीनता, अग्निमांद्य, व्याकुलता, हृदय क्रिया की शिथिलता और मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में वातप्रकृति और कफ प्रकृति के रोगियों को इस वटी का सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में देह सबल बन जाती है और मानसिक स्फूर्ति भी आ जाती है।

शीतकाल और शीतल देश में यह अधिक लाभ पहुँचाती है। यदि यकृत् अच्छा कार्य करता हो, तो इस वटी के सेवन काल में घृत अधिक लेना चाहिये।

मात्रा—१-१ रत्ती दिन में २ बार सुबह-रात्रि को मिश्री मिले दूध के साथ।

मूल्य—३ माशे का १२-५० न० पै०।

मात्र वैद्यक व्यवसाय वालों के लिये—

याकूती

यह याकूती मुक्ता, माणिक्य, पन्ना, चन्द्रोदय, सुवर्ण, अम्बर और कस्तूरी आदि बहु मूल्य द्रव्यों को मिला कर यथाविधि बनाई जाती है। यह मस्तिष्क और हृदय के लिए पौष्टिक, वातपित्त शामक और शीत वीर्य श्रेष्ठ औषधि है। इस याकूती का उपयोग सन्निपात ज्वर, मुद्दती ज्वर आदि प्रबल विकारों में नाड़ी की क्षीणता, देह का शीतल होजाना, स्वेदाधिक्य आदि शक्तिपात के लक्षण उपस्थित होने तथा हृदय निर्बल होजाने पर सेवन कराया जाता है। इसके सेवन से थोड़े ही समय में नाड़ी सबल बनती है। घबराहट दूर होती है एवं तन्द्रा, प्रलाप, मानसिक विकृति आदि उपद्रवोंका दमन होता है।

इसके अतिरिक्त हृदय पेशी की शिथिलता से उत्पन्न विकार, थोड़ा चलनेपर श्वास भर जाना, हृदयावरण प्रदाह (Pericarditis), हृदय पेशी शोथ (Myocarditis) आदि एवं हृदय क्रिया विकृति (Neurosis) से उत्पन्न रोग, हृदयस्पन्दन विकृति, हृदयमें वेदना (Cardiodynia), हृत्स्पंदनवृद्धि (Palpitation), हृद्वेपन (Fibrillation) और उदर में गेस बढनेपर हृदय शूल चलना आदि एवं मस्तिष्क बल और स्मरण शक्ति का ह्रास होना, इन सब विकारों से मस्तिष्क और हृदयका संरक्षण करने और हृदयेन्द्रिय को शक्ति प्रदान करने के लिये याकूती का प्रयोग सफलता सह होता है।

मात्रा—१ से २ गोली शहद के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

मूल्य—३ माशे का १५)।

—: बृहद् वातचिंतामणि रस :—

यह स्वर्ण, मुक्ताप्रधान उत्तम वातहर औषधि है। शास्त्र में इसके गुणधर्म वातनाशक, अग्निप्रदीपक, आमदोषघ्न, जीवनीय, रसायन, योगवाही, हृद्य, मस्तिष्क पोषक, एवं धातु पौष्टिक दर्शाये हैं। इस रस का सेवन गृध्रसीवात, आमवात, पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात आदि सब प्रकार के जीर्ण वात रोग पीड़ित रोगियों को शक्ति संरक्षणार्थ सेवन कराया जाता है।

जब वात रोग में तीक्ष्ण औषधियों के सेवन से अथवा प्रकृति भेद से दाह, हृदय में घबराहट, बेचैनी, मस्तिष्क में उष्णता, तथा मुखपाक आदि हो जाते हैं उस समय उष्ण औषधियां लाभ नहीं पहुँचा सकती हैं, ऐसी अवस्था में इस बृहद् वातचिन्तामणि रस का सेवन उपकारक माना जाता है।

ग्रीष्म ऋतु तथा उष्ण देशों में पित्त प्रधान प्रकृति वालों को वात प्रकोप होकर मस्तिष्क में पीड़ा होना, बेचैनी, हाथ पैरों में झनझनाहट होना, कभी कभी मन्द मन्द शूल चलना, कमर में दर्द होना, बार बार खट्टी डकार आना, मुखपाक होना, अन्त्र में वायुकी गुड़गुड़ाहट होना, मलावरोध रहना, यकृत का पित्तस्राव कम होने से मलमें दुर्गन्ध आना आदि लक्षण वाले रोगियों को इस रस के सेवन से लाभ मिल जाता है।

मात्रा—एकसे दो गोली नागरवेलके पानके साथ दिनमें दो बार।

मूल्य—३ माशे का १२) रु०।

हेमाभ्ररस भस्म
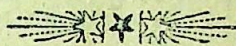
यह भस्म रसायन, अग्नि प्रदीपक, मस्तिष्क बलवर्धक, कीटाणु नाशक और त्रिदोष शामक है। विविध रोग और वृद्धावस्था से जर्जरित देह सुदृढ़ और स्फूर्ति वाला बनाती है।

नवरत्न कल्पामृत

* वृद्धावस्था की कमजोरी
* धातु क्षीणता

* दिल दिमाग की कमजोरी
* रक्त चाप का घटना

इन सब पर

जादू का काम करता है।

— योगेन्द्र रस —

यह स्वर्णभस्म, मुक्ताभस्म, वंगभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म आदि बहुमूल्य औषधियाँ मिलाकर तैयार किया जाता है। यह आयुर्वेदिक औषधियों में एक उत्कृष्ट और वीर्यवान्, वातशामक तथा पौष्टिक औषधि है। यह हृदय, मस्तिष्क, वातसंस्थान और रक्तसंस्थान पर अपना प्रभाव विशेषांश में दर्शाता है।

सब प्रकार के जीर्ण वातरोगों में शक्ति बढ़ाने और वातनाड़ियों को बल देने के लिए यह सफलता सह व्यवहृत होता है। कई रोगियों को जीर्ण वातरोग में वात प्रकोप के साथ पित्त प्रकोप होने पर उत्पन्न दाह, निद्रानाश, व्याकुलता, नाड़ियों का खिंचाव आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनके लिए यह आशीर्वाद के समान कार्य करता है।

वातरोग के अतिरिक्त मानसिक विकृति जन्य उन्माद, अपस्मार और जीर्ण आमवातज, हृदय की निर्बलता आदि पर भी यह अपना प्रभाव दर्शाता है। पित्तप्रकोपज जीर्ण उन्माद पीड़ित कई रोगियों को इसके सेवन से आशातीत लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

इस रसमें हृद्य गुण होने से यह हृदय को बलवान बनाता है और हृदय की संकोच विकास क्रिया को नियमित करके स्पंदन संख्या को कम करता है। तथा रक्त में रहे विष और कीटाणुओं का नाश करके रक्ताणुओं की वृद्धि करता है। इस हेतुसे यह रस हृदय रोग के विभिन्न विकारों में मुख्य रोग में रक्षण और शारीरिक शक्ति की वृद्धि कराने के लिए भी व्यवहृत होता है।

मात्रा—½ से २ रत्ती तक शहद, अथवा च्यवन प्राशावलेह के साथ देवें।

मूल्य—३ माशे का १७) रु०।

प्राप्ति स्थान—कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा (अजमेर)

लहसुन-प्याज

लेखक—श्री रमेश बेदी

वानस्पतिक औषधियों में लहसुन सबसे अधिक प्रभावकारी दवा है जो तपेदिक (क्षय) की विभिन्न दुःसाध्य तथा असाध्य अवस्थाओं में सफलता के साथ प्रयोग किया जा सकता है। श्री बेदी ने डबलिन हॉस्पिटल से निराश लौटे हुए हड्डियों के क्षय के कुछ ऐसे उदाहरण दिये हैं जिन में हड्डियां गल जाने से हाथ और टांग कटवानेकी नौबत पहुँच गई थी, परन्तु लहसुन के लगातार प्रयोग ने अंगों को काटे जाने से बचालिया था। कई शहरों में जहां बहुत अधिक घनी तथा गन्दी बस्तियों में भी क्षय से मृत्यु-संख्या अधिक नहीं होती वहां लोगों को लहसुन खाने की आदत उन्हें इस भयङ्कर रोग से बचाये रखती है।

श्रीयुत बेदी ने दो हजार साल पहले के एक बूढ़े का उदाहरण दिया है जिसकी लहसुन के सेवन से कायापलट गई थी और कुछ बांझ स्त्रियों ने भी मनोवाञ्छित सन्तान प्राप्त की थी पुरुषों और स्त्रियों के दोनों ही के उत्पादक अंगों के रोगों को दूर करने की क्षमता इसमें है। निमोनियाँ, डिफ्थीरिया, गठिया, वायु के रोग, पेट तथा आंतों के रोग आदि अनेक रोगों में इस सस्ते पदार्थ से लाभ उठाने के लिए हम इस पुस्तक को अवश्य पढ़ने की सिफारिश करेंगे। अपने देश के क्षय सम्बन्धी आंकड़ों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इस भयङ्कर रोग से लड़ने के लिए सस्ते और अत्यन्त प्रभावकारी हथियार लहसुन का अधिकाधिक प्रयोग जनता को बताने के लिए इस पुस्तक का प्रचार खूब होना चाहिए।

मिलने का पता—हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

शीतकाल में सेवन योग्य लोक प्रिय उत्तम

-:पौष्टिक औषधियां:-

१. **च्यवन प्राशावलेह:**- यह दिव्य रसायन शरीर में रस धातु से लेकर रक्त, मांस, मेद, मज्जा, वीर्य, ओज को अधिक मात्रा में बनाकर मनुष्य को सुदृढ तथा निरोग बनाता है। वक्षःस्थल (छाती), फेंफड़े व हृदय सम्बन्धी रोगों में बहुत ही अच्छा लाभ करता है। वातज शुष्क काम एवं श्वास में यह आशीर्वाद के समान लाभ पहुँचाता है। मूल्य-१० तोले का २-५० पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

२. **चन्द्रोदय तलस्थ वटी**- सिद्ध तलस्थ मकरध्वज, सुवर्ण, अभ्रक १००० पुटी, लोह भस्म, कस्तूरी आदि के मिश्रण से यह रस तैयार किया गया है। यह सब प्रकार की निर्बलता दूर करने में रामबाण है, विधि पूर्वक सेवन करने से नपुंसकता और निर्बलता को नष्ट कर थोड़े ही दिनों में शरीर को सुदृढ तथा बलवान बना देता है। मूल्य-३ माशे का २५-० पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

३. **बृ० सुवर्ण मालिनी वसन्त**- यह रसायन सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, बंग भस्म, नाग भस्म, रस सिन्दूर, कस्तूरी आदि भस्में उत्तम प्रकार एवं विशेष परिश्रम से तैयार की हुई मिलाकर तैयार किया गया है। ताकत देने वाली औषधियों में यह प्रसिद्ध औषधि है। शीतकाल में शक्ति वर्धक गुण के लिये इसका सेवन सर्वत्र होता रहता है। मात्रा-१ से २ रत्ती तक दिन में २ समय शहद से व दूध से मूल्य-तीन माशे का ८) पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

४. **बृ० वंगेश्वर रस**- यह रसायन वातवाहिनियों को सुदृढ बनाता है तथा शुक्रक्षय जन्य हृदय की निर्बलता को दूर कर हृदय को पुष्ट बनाता है शरीर को बलवान बनाता है। बल, ओज, तेज वर्ण और रुचि उत्पन्न करता है। वीर्योत्पत्ति और वृद्धि के लिये अति लाभदायक है। मात्रा-१ से २ रत्ती तक शहद से मूल्य-३ माशे का ५-२५ पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

५. **सत शिलाजीत**- शिलाजीत को आयुर्वेद में श्रेष्ठ औषधि मानी है। शिलाजीत को भिन्न अनुपानों के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह, मधुमेह, बहुमूत्र, अश्मरी आदि रोग दूर होते हैं। मात्रा२-२ रत्ती सुबह शाम दूध के साथ। मूल्य-१ तोले की शीशी १) पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

६. **चन्द्रप्रभावटी विशेष**- शिलाजीत, गुग्गलु, लोह भस्म, आदि से यह गोलियां तैयार की गई है इसके सेवन से प्रमेह, स्वप्नदोष, अश्मरी, कफ, शूल, रक्त की कमी, शारीरिक निर्बलता आदि रोग दूर होते हैं। मात्रा २-२ गोली सुबह शाम दूध के साथ। मूल्य १ तोले की शीशी का ३) पैकिंग पोस्टेज पृथक्।

प्रकाशक—ठाकुर नाथूसिंह मुद्रक तथा प्रकाशक ... गोपाल मुद्रणालय" कालेड़ा में मुद्रित।